

भारतीय तथ्य जो आधुनिक विज्ञान से परे (ज्ञान धारा—15)

## समग्र विकास के उपाय : स्वाध्याय

(स्वाध्याय से तन—मन—आत्मा के स्वास्थ्य एवं विकास)

॥ लौकिक ज्ञान से परे है  
आध्यात्मिक ज्ञान॥



श्रमणी दीक्षा के अवसर पर डॉ. प्रो. सेठी को 'जैन दर्शन मनीषी'  
उपाधि अभिनन्दन पत्र प्रदान करते हुए प्रो. सुशील, प्रो. प्रभात कुमार जैन।

आप आ. कनकनन्दी के साहित्यों के ऊपर होने वाले  
शोध—कार्य के निर्देशक हैं।

आचार्य कनकनन्दी

दृढ़तापूर्वक  
व-प्रचार-  
द्वात्मा ही  
ध-बोध-  
न-शिक्षा-  
सके द्वारा  
जिज्ञासा-  
है। केवल  
गन, श्रवण  
रिशोधन-  
न (वाचन  
गे वह भी  
द्र-सम्पन्न  
ग्रन्थों या  
शुभारंभ  
ध्यात्मिक  
विद्या या  
नहिजानेन  
-विज्ञान-  
श-विदेश  
र, सत्ता-  
ञ्छ, हेय,  
स्वाध्याय  
। अतएव  
विश्वास,  
-सहज-  
याण करे



आ. कनकनन्दी द्वारा रचित ग्रन्थ का विमोचन करते हुए आ. कनकनन्दी  
के भक्तगण तथा श्री मुनि सेवा समिति, श्री दि. जैन सेनगण मन्दिर,  
लाडपुरा इतवारी, नागपुर। सानिध्य मुनि  
श्री तरुण सागरजी (नागपुर, महाराष्ट्र)



गणतंत्र दिवस के उपलक्ष्य में मुख्य अतिथि एवं मुख्य वक्ता के रूप में  
उद्बोधन के अन्त में सब को राष्ट्रद्रोही कार्य नहीं करने के नियम देते  
हुए आ. कनकनन्दी (रा.उ.मा.वि., रामगढ़)

भारतीय तथ्य जो (स्वाध्याय परम तपः) आधुनिक विज्ञान से परे ! (ज्ञानधारा-15)

## समग्र विकास के उपायः स्वाध्याय

(स्वाध्याय से तन-मन-आत्मा के स्वास्थ्य एवं विकास)

(लौकिक ज्ञान से परे है आध्यात्मिक ज्ञान !)

### -: पुण्य स्मरण:-

विश्व धर्म सभा, मेलबोर्न में आचार्य श्री कनकनन्दीजी के शिष्य डॉ.  
नारायणलाल कछारा का “जैन कर्म सिद्धान्त एवं विश्वशान्ति” विषय  
पर उद्बोधन एवं प्रतिभागी; उपकुलपति प्रो. डॉ. सोहनराजजी तातेड़  
के प्रयास से 10 प्रदेश के 23 विश्वविद्यालयों में आचार्य कनकनन्दी  
साहित्य कक्ष की स्थापना तथा शोधकार्य; एवं 32वाँ शिविर, विदेश  
की अन्तर्राष्ट्रीय संस्था ‘पीस नेक्स्ट’ में आ. श्रीकनकनन्दीजी के सदस्य  
(1466) बनने के उपलक्ष्य में.....

ग्रन्थांक -	186	प्रथम संस्करण -	2010
प्रतियाँ -	1000	मूल्य -	101.00

### द्रव्यदाता :

- (1) जयन्तीलाल रोडजी तोरावत जैन, रामगढ़
- (2) श्री मुनि सेवा समिति, श्री दि. जैन सेनगणमन्दिर लाडपुरा, इतवारी नागपुर
- (3) S.K. Jain, (Retd.) Executive Engineer I.I.T., Kanpur (U.P.)

### -: प्राप्ति स्थान :-

धर्म दर्शन सेवा संस्थान, द्वारा श्री छोटूलाल जी चित्तौड़ा  
चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,

उदयपुर (राज.)-313 001

फोन नं. (0294) 2413565, 6941114

### -: सम्पर्क सूत्र :-

डॉ. नारायणलाल कछारा (सचिव)

55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313 001

फोन नं. (0294) 2491422, मो. 9214460622

ई-मेल : nlkachhara@yahoo.com

### -: लेखक :-

आचार्य कनकनन्दीजी गुरुदेव

## विदेश की अन्तर्राष्ट्रीय संस्था में आ. श्री कनकनन्दी की सदस्यता

Jainacharya Kanaknandiji's Page  
Profile Information is now a member of Peace Next  
Religion / Faith

Jain

I have attended the Parliament of Religions :

Never

Local Religious Community / Interfaith Affiliation :

Digamber Jain Society of India

Website :

<http://acharyakanaknandi.org>

I have come to peace next looking for :

interreligious exploration

I am inspired by :

Good Motto of World Religion Parliament.

My favourite spiritual places :

Jain Digamber Temples around Globe.

Interreligious causes I care about :

Respect to all religions of Globe and trying to bring them all on one platform.

Changes I am working toward in my community :

Preaching humanity to be honest, moral living, not to harm any creature of nature.

About me :

I was born on 5th July 1954 at Utkalbrahampuri (Orrisa). Right beginning from my childhood I was leading non attached life for the service to mankind. After getting higher education. I was adopted by my Guru as "Kshulak" (Trainer for initiation) in the year 1978. My Guru blessed me to learn Jainagam (Holy Jaina Scriptures) by heart from 1978 to 1981. I was initiated as Digamber Jaina Monk by my Guru on 5 february 1981. Due to my keen interest in spirituality and science I was upgraded as Upadhyay (Reader Academic Rank) on 25 November 1982. Again I was upgraded as Acharya (Professor Rank) by my Digamber Jain Samaj on 23 April 1996. Uptil now I have written more than 200 research books on spirituality, religion, Science, Moral values and human values for the betterment of mankind. I taught and initiated so many monks and nuns in my Digamber sect. My whole life is devoted for the upliftment of Humanity around the Globe, leading as a Jaina Monk's self controlled life.

The member, No. of Jainacharya Kanaknandiji's 1466 E-mail - [bhupesh.icpl@yahoo.co.in](mailto:bhupesh.icpl@yahoo.co.in) Pass word - jain bhupesh

## प्रस्तुत कृति का आत्म परिचय

प्रस्तुत शोधपूर्ण समीक्षात्मक कृति में सनग्र सत्यग्राही दृष्टि से दृढ़तापूर्वक प्राचीन भारतीय आध्यात्मिक महापुरुषों के द्वारा शोध-बोध-अनुभव-प्रचार-प्रसारित-लिखित तथा मेरे द्वारा भी तदनुकूल यथायोग्य अनुभूत शुद्धात्मा ही विश्व का सार्वभौम-शाश्वतिक-परमसत्य-तथ्य है। इसका शोध-बोध-अध्ययन-अध्यापन-लेखन-प्रवचन-अनुभव-उपलब्धि ही परम विज्ञान-शिक्षा-संस्कृति-धर्म-नीति-राजनीति-संविधान, इतिहास-पुराण है। जिसके द्वारा शुद्धात्मा स्वरूप स्व-आध्यात्मिक तत्व का अध्ययन (मनन-चिंतन-जिज्ञासा-स्मरण-अनुभव-ध्यान-प्रवचन) होता है वह ही यथार्थ से स्वाध्याय है। केवल धार्मिक या आध्यात्मिक ग्रन्थों का तोता समान (जैसा) वाचन, कथन, श्रवण आदि स्वाध्याय नहीं है यदि उससे स्वात्मा का शोध-बोध-खोज-परिशोधन-अनुभव नहीं होता है। यदि कोई बिना धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन (वाचन पाठ) से भी स्वात्मा का शोध-बोध-परिशोधन अनुभव करता है तो वह भी उनके लिये वह स्वाध्याय है। यथा-तीर्थकर, मुनि, गणधरादि कृद्धि-सम्पन्न आचार्यादि। परन्तु सामान्य व्यक्ति तो प्राथमिक स्तर पर आध्यात्मिक ग्रन्थों या आध्यात्मिक महापुरुषों के वचन, निर्देश, प्रवचन से ही स्वाध्याय का शुभारंभ करता है भले उच्चस्तर पर यह आलम्बन नहीं रहता है। ऐसा आध्यात्मिक ज्ञान को ही वीतराग विज्ञान, परम-विज्ञान, आत्मविद्या सा विद्या या विमुक्तये, ब्रह्मविद्या, सर्वविद्या प्रतिष्ठाम्, यः आत्मविद् सः सर्वविद्, नहिज्ञानेन सदृश्य पवित्रमिह विद्यते, विद्ययामृतमश्नुते कहते हैं। ऐसे ज्ञान-विज्ञान-संस्कृति-धर्म-नीति-संविधान के सामने तथा इससे रहित समस्त देश-विदेश के ज्ञान-विज्ञान-शिक्षा-राजनीति-कानून-संविधान, खोज, अविष्कार, सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि-उपलब्धि आदि सब भौतिक, जड़, पिछड़ापन, तुच्छ, हेय, नश्वर, मिथ्या विषमतापूर्ण, दुःखादीयी, विनाशकारी है, इसलिये स्वाध्याय समग्र स्वास्थ्य एवं विकास है तो इससे रहित अस्वास्थ्य-विनाश है। अतएव स्वास्थ्य से रहित कोई भी व्यक्ति भले देश-विदेश के (आत्मविश्वास, आत्मचिन्तन, आत्मविश्लेषण, आत्मशोधन-आत्मानुभव) करके सरल-सहज-सुलभ से स्वास्थ्य विकास को प्राप्त करता हुआ स्व-पर-विश्व कल्याण करे इस महती पवित्र भावना के साथ इस कृति की रचना की गई है।

आ. कनकनन्दी

13-2-2010 (महाशिवरात्रि, रात्रि 12.55)

## गुरु एवं शास्त्र की सेवा साक्षात् भगवान् की सेवा-

सम्प्रत्यस्ति न केवली किल किलौ त्रैलोक्यचूडामणि-

स्तद्वाचः परमास्तेऽत्र भरतक्षेत्रे जगद्द्योतिका।

सदरत्नत्रयधारिणो यतिवराँस्तेषा समालम्बनं।

तत्पूजा जिनवाचिपूजनमतः साक्षाजिनः पूजितः॥ पद्म.पंच.

वर्तमान में इस कलिकाल में तीन लोक के पूज्य केवली भगवान् इस भरतक्षेत्र में नहीं है तथापि समस्त भरतक्षेत्र में जगत्प्रकाशिनी केवली भगवान् की वाणी मौजूद है तथा उस वाणी के आधार स्तम्भ श्रेष्ठ रत्नत्रयधारी मुनि भी हैं। इसलिये उन मुनियों की पूजन तो सरस्वती की पूजन है तथा सरस्वती पूजन साक्षात् केवली भगवान् की पूजन है।

केवली (अरिहंत, तीर्थकर, सिद्ध) हमारे सर्वोच्च आदर्श-पूजनीय होने पर भा उनकी साक्षात् उपलब्धि-संगति-पूजा-उपासना-देशना वर्तमान पंचमकाल में भरत-क्षेत्र में संभव नहीं है किन्तु उनके द्वारा सच्चा-अच्छा मार्गदर्शक उपदेश प्राचीन आर्ष-आगम में लिपिबद्ध है और उस मार्ग में यथाशक्ति यथायोग्य गमन करने वाले साधक-साधु हैं। अतः ऐसे जीवन्त-साधुओं की उपासना (सेवा, संगति, उपदेश ग्रहण, आहारादि 4 प्रकार के दान देना आदि) करना साक्षात् सरस्वती (आगम-आध्यात्मिक ग्रन्थ) की पूजा है और सरस्वती की पूजा साक्षात् सर्वज्ञ भगवान् की पूजा है, परन्तु खेद का विषय यह है कि भगवान् के प्रतीक स्वरूप मूर्ति-मन्दिर-तीर्थक्षेत्र आदि के लिये जितना समय-श्रम-धन-मन साधनों का उपयोग करते हैं उसके अनुपात से साधु एवं सरस्वती के लिये कम उपयोग करते हैं जिससे स्वास्थ्य एवं विकास अनुपात से कम हो रहा है।

## शास्त्राध्ययन के उद्देश्य एवं फल

बोधिः समाधिः परिणाम शुद्धिः स्वात्मोपलब्धि शिवसौख्य सिद्धिः।  
चिन्तामणिं चिन्तित वस्तु दाने, त्वां वन्द्यमानस्य ममास्तु देवी॥  
है माँ सरस्वती देवी! आपको वन्दन करने वाले मुझे ज्ञान, समाधि, परिणामों  
में विशुद्धि, स्वात्मा की उपलब्धि, मोक्ष सुख की सिद्धि होवे।

(भावना द्वार्तिंशतिका)

ये यजन्ते श्रुतं भक्त्या ते यजन्ते नन्तसा जिनम्,  
नहिं किंचिदन्तरं प्राहुराप्ता हि श्रुतदेवयो (44) आशा.साग.धर्मा.

जो भक्तिपूर्वक श्रुताराधना करते हैं वे प्रकारान्तर से जिनेन्द्र देव की अर्चना ही कर रहे हैं। जिनेन्द्र देव की भक्ति और श्रुत की आराधना में कोई अन्तर नहीं है।  
(पं. आशाधर जी सा.ध. 44)

## उत्तरोत्तर दुर्लभ : बोधि (आत्म-ज्ञान)

देशजातिकु लरुपकल्पताजीवितव्यबलवीर्यसम्पदः।

देशनाग्रहणबुद्धिधारणाः सन्तिदेहिनिवहस्य दुर्लभाः॥ (69) अमित.श्रावका.

धर्म धारण करने के याग्य देश-जाति-कुल-रूप-सौन्दर्य-दीर्घायु-बल-वीर्य-सम्पदा, जिनवाणी का उपदेश, उसके ग्रहण करने की बुद्धि और उसे धारण करने की शक्ति इतनी विशेषताओं का मिलना जीव-समुदाय को उत्तरोत्तर दुर्लभ है।

हन्त तासु सुखदान सुखदानकोविदा ज्ञानदर्शनचरित्र सङ्गतिः।

लभ्यते तनुभूताऽतिकृच्छतः कामिनीष्विव कृतज्ञता सती॥ (70)

आचार्य खेद प्रकट करते हुए कहते हैं कि उपर्युक्त सामग्री में भी सुख देने में प्रवीण ऐसी 'सम्यज्ञान' दर्शन और चरित्र की सङ्गति यह प्राणी अति कष्ट से प्राप्त करता है, जैसे कि स्त्रियों में सुन्दर कृतज्ञता अति कष्ट से पायी जाती है।

साधुलोक महिता प्रमादतो बोधिरत्र यदि जातु नश्यति।

प्राप्यते न भविना तदा पुनर्नीरधाविव मनोरमो मणिः॥ (71)

इस लोक में साधुजनों से पूजित रत्नत्रय की प्राप्तिरूप यह बोधि यदि कदाचित् प्रमाद से नष्ट हो जाती है, तो वह किर संसारी जीव को नहीं प्राप्त होती है। जैसे कि समुद्र में गिरा हुआ मनोहर मणि पुनः नहीं प्राप्त होता है।

हन्त बोधिमपहाय शर्मणो योऽधमो वितनुते धनार्जनम्।

जीविताय विषवल्लर्णि स्फुटं सेवते ऽमृतलतामपास्य सः॥ (72)

यह बड़े दुःख का विषय है कि ऐसी अतिदुर्लभ बोधि को पाकर के भी जो अधम पुरुष उसे छोड़कर सुख के लिए धन का उपार्जन करता है, वह अमृतलता को छोड़कर जीवित रहने के लिए नियम से विषवेलि का सेवन करता है।

योऽत्र धर्मसुपलभ्य मुञ्चते क्लेषमेष लभतेऽतिदारणम्।  
यो निदानमनधं व्यपोहते खिद्यते स नितरां किमद्भूतम्॥ (73)

जो मनुष्य इस भव में ऐसे उत्तम धर्म को पाकर के छोड़ता है, वह अति दारण क्लेश को पाता है। जो निर्दोष धन के भण्डार को छोड़ता है, वह अत्यन्त खेदित होता ही है, इसमें क्या आशर्चय है।

मुञ्चता जनन मृत्युयातनां गृह्णता च शिवतातिमुत्तमाम्।  
शाश्वतीं मतिमता विधीयते बोधिरद्विपतिचूलिकास्थिरा॥(74)

जो मतिमान् पुरुष जन्म-मरण की यातना को छोड़ता है और उत्तम कल्याण-परम्परा को ग्रहण करता है, वह सुमेरु की स्थिर चूलिका के समान रत्नत्रय की प्राप्तिरूप बोधि को शाश्वत नित्य बनाता है।

### महावीर को रूढ़ न बनाएं

हम स्वयं रूढ़ बनकर महावीर को रूढ़ बनाएं, हम स्वयं सीमित बनकर महावीर को सीमित बनाएं, यह सर्वथा आवच्छनीय है। हम आगमों को इस दृष्टि से मानते हैं कि सत्य की शोध हमारे लिए शेष नहीं है तो वह दृष्टीकोण सही नहीं होगा। इससे हमारा विचार, का प्रवाह रुका है और ज्ञान की धारा कुण्ठित हुई है। हम उतने नवीन नहीं रहे हैं जितने कि होने चाहिए थे। हमारे ज्ञान में वह क्षमता नहीं है जिससे हम युग को प्रभावित कर सकें। हम प्राप्त पूँजी की सुरक्षा में व्यस्त हैं। उसे बढ़ाने के लिए कोई चिन्तन नहीं है। आज वनस्पति-विज्ञान, जीव-विज्ञान आदि विभिन्न वैज्ञानिक शाखाओं में नित्य नए अनुसंधान हो रहे हैं, नए-नए तथ्यों की उपलब्धियाँ हो रही हैं। उस जगत् में हम कोरी शाब्दिक दुहार्द देकर, रटी रटाई बातों को पढ़कर क्या महावीर की वाणी को नित्य नवीन रख सकेंगे? हम उसे अनुसंधान के क्षेत्र में लाकर ही ऐसा कर सकते हैं। अपनी बहुत बड़ी साहित्य-निधि जो आज जीर्ण-सी हो रही है, को नवीन दृष्टियों से परखकर ही नवीन रख सकते हैं। जो सत्य उन्होंने दिया, उसे विकसित करने के लिए हमें अपने प्राणों का अर्ध्य दें। वैज्ञानिक युग की कसौटियों को समझें और उनके द्वारा परख-परख कर सत्य को प्रसारित करें। महावीर का प्रवचन तभी सार्थक होगा।

(आ. महाप्रज्ञ)

### विषयानुक्रमणिका

विषय	पृ.सं.
प्रस्तुत कृति का आत्म परिचय, गुरु एवं शास्त्र की सेवा, स्वाध्यायस्य-अध्ययनम् श्रुतज्ञान का महात्म्य, मति और श्रुत ज्ञान का विषय, विज्ञान एवं व्यवहार के प्रत्यक्ष-ज्ञान आध्यात्मिक दृष्टि से परोक्ष ज्ञान, संकीर्ण धर्म आधुनिकता-शिक्षा-विज्ञान के परे है आध्यात्मिक अध्याय-1	1-37
प्राचीन ग्रन्थों के अध्ययन की आवश्यकता क्यों? विज्ञान पूर्णतः मानने योग्य क्यों नहीं? (है भी, नहीं भी) विज्ञान पूर्णतः मानने योग्य भी है विज्ञान एवं वैज्ञानिक उपकरणों से हानियाँ जैनधर्म की कुछ विशेषताएँ/मौलिकताएँ भारतीय (जैन-हिन्दू-बौद्ध) संस्कृति की विशेषताएँ अध्याय-2	38-55
परम विकास की शिक्षा से रहित प्रायःशिक्षा-शिक्षित व्यक्ति तथा धार्मिकजन भौतिकवादी, स्वार्थी, नीरस, अगुणग्राही मानव भारतीयों के स्व-आध्यात्मिक संस्कृति से विपरीत प्रवृत्ति अध्याय-3	56-67
स्वाध्यायर्थे शास्त्राध्ययन, प्रार्थना, भावनादि यथार्थ श्रुतज्ञान एवं उसका फल अध्याय-4	68-78
शास्त्राध्ययन की सही पद्धति आठ प्रकार के अस्वाध्याय काल ज्ञान विनय का लक्षण अध्याय-5	79-91
स्वाध्याय से तन-मन आध्यात्मिक स्वास्थ्य एवं विकास सतत अध्ययनशीलता से लाभ स्वास्थ्य एवं विकास के नियम	92-111

विषय	पृ.सं.
स्वाध्याय से सांसारिक एवं मोक्ष-सुख आध्यात्मिक विहीनता से विविध रोग-टुःख आध्यात्मिकता से स्व-पर विश्व कल्याण अध्याय-6	112-144
उपदेशदाता वत्त का स्वरूप (धार्मिक अध्यापक का स्वरूप) रागादि छोड़ने की प्रेरणा (कुज्ञानादि एवं सुज्ञानादि के फल) स्वाध्याय के मूल से फल तक शास्त्राभ्यास की प्रेरणा लाभ और पूजादि की कामना का निषेध ग्रन्थ रचना एवं स्वाध्याय का फल (अविद्यानाशक तथा आनन्द दायक) मोक्ष के ज्ञाता-गुरु से आत्मज्ञान बुद्धिमानों के उपदेश शिक्षा सभायां प्रौढ़ता श्रोताओं का निर्णय अध्याय-7	145-157
स्वाध्याय तप के पाँच (5) भेद स्वाध्याय के भेद तथा उद्देश्य श्रुतज्ञान के भेद और पठनविधि शास्त्र सुनने की विधि बुद्धि अयोग्य-शिष्य-श्रोता अध्याय-8	158-166
यथार्थ से शास्त्राध्ययन-स्वाध्यायी तथा उसका फल आगमानुसार आचरण करने वाला मुनि श्रेष्ठ है आगमहीन श्रमण का कर्मक्षय नहीं होता है विभिन्न जीव की विभिन्न चक्षु	
आगम चक्षु से श्रमण सर्व अर्थ को जानता है आगमज्ञ मूर्च्छावान् भी मोक्ष प्राप्त नहीं करता है अध्याय-9	167-197
सा विद्या या विमुक्तये ब्रह्मज्ञान के लिए बारह (12) ब्रत ब्रह्मज्ञान के लिए छः (6) प्रकार के त्याग अप्रमाद के आठ (8) गुण प्रमाद के आठ (8) दोष ज्ञान रूपी प्रकाश मोक्षमार्ग में सम्यग्ज्ञान की भूमिका सा विद्या या विमुक्तये आत्मज्ञान ही वरणीय आत्म तत्व की दुर्लभता अध्याय -10	198-217
ज्ञानी-योगी का लक्षण: अनासक्ति आत्मा का स्वरूप-अनन्तज्ञानान्द अनुभवात्मक ज्ञान अध्याय-11	218-229
शास्त्राध्ययन का दुरुपयोग प्रसिद्धि रूपी रोग दूर करने के उपाय मति-श्रुत और अवधिज्ञान में मिथ्यापन ज्ञान-मद के कारण अबहुश्रुत का स्वरूप दस (10) साल कम जीते हैं डॉक्टर पर्यावरणविद् के प्रदूषित कार्य	
अध्याय-12 ज्ञानामृतम्-बिन्दु	230-249

अध्ययन, अध्यात्म, अनुभव, उपदेश, जिज्ञासा, ज्ञान, तत्व और तत्वज्ञानी, पुस्तक, प्रतिभा और प्रतिभावान्, विज्ञान, विद्या, शिक्षक, शिक्षा, संस्कार, संस्कृति, सच्चरित्रता, सदाचार, साहित्य, सिद्धान्त, लेखक और लेखन, शास्त्र, शिक्षा या अवहेलना, ज्ञान एवं अज्ञान

परिप्रेक्ष्य -

250-276

वि.वि. मैं आ, कनकनन्दी साहित्य कथ की स्थापना एवं शोधकार्य आजकल भी बगड़ेली शिक्षा, साक्षरता-ज्ञान एवं सच्चा ज्ञान की उपलब्धियाँ आचार्य कनकनन्दी के अध्ययन-अध्यापन के कुछ विषय, क्या साक्षर अन्धभक्त नहीं होते हैं?

आचार्य श्री के साहित्य सम्बन्धी जैन वर्ल्ड का ई मेल, धर्म प्रभावना हेतु ज्ञान-उपकरण का उपयोग

विश्वविद्यालय के उपयोग  
विज्ञान

विश्वविद्यालय  
विज्ञान के निर्णय  
विषयालय - 7

विश्वविद्यालय के गोपनीय (1) विज्ञान  
विश्वविद्यालय में सदा विज्ञान

विश्वविद्यालय के भेद और विवरण  
विश्वविद्यालय के विभिन्न विज्ञान

विश्वविद्यालय - 8  
विश्वविद्यालय - 9

विश्वविद्यालय - 10  
विश्वविद्यालय - 11  
विश्वविद्यालय - 12

विश्वविद्यालय - 13  
विश्वविद्यालय - 14  
विश्वविद्यालय - 15

विश्वविद्यालय - 16  
विश्वविद्यालय - 17  
विश्वविद्यालय - 18

## प्राककथनम्

### स्वाध्यायस्य-अध्ययनम्

उपलब्ध ज्ञात पृथ्वी में जितने भी ज्ञान-विज्ञान-सभ्यता-संस्कृति-भाषा-परम्परा-रीति-रिवाज-शोध-खोज-आविष्कार-निर्माण से लेकर विकास हुए हैं तथा इससे विपरीत अन्याय-अत्याचार-पापाचार-भ्रष्टाचार-आतङ्कवाद-युद्ध-महायुद्ध से लेकर विनाश हुए हैं इन सब में मानव का योगदान-उत्तरदायित्व सर्वोपरी है। अतः इन सब सच्चे-अच्छे, छोटे-खोटे कार्यों को सम्पादन करने वाला मानव का अध्ययन परिज्ञान करना भी मानव का सर्वोपरी कर्तव्य है। मानव के शरीर इन्द्रियाँ-मस्तिष्क-मन-बुद्धि-प्रज्ञा-प्रतिभा-मेधा-सम्यक् श्रद्धा/विश्वास-सम्यक् ज्ञान (शुद्ध चेतना)-शुद्धात्मानुभूति-स्वशुद्धचेतनानुरूप परिणाम उत्तरोत्तर श्रेष्ठ-ज्येष्ठ के साथ-साथ उसके बोध-शोध-उपलब्धि उत्तरोत्तर सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा क्लिष्ट से क्लिष्ट है। इसलिए परमाणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक के अध्ययन शोध-बोध-उपलब्धि से भी महान् है स्व.आत्मा के शोध-बोध-उपलब्धि।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर से भारतीय आध्यात्मिक-विद्या के बारे में सुनने के बाद महान् वैज्ञानिक आइंस्टीन ने अपना भावोद्धार करते हुए कहा था “जिसके द्वारा (स्व.आत्मा/चेतना/ज्ञान) मैं परमाणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक को जानने के लिए प्रयासरत हूँ, खेद है मैं उस जानने वाला को ही जानने के लिए कुछ भी प्रयास नहीं किया। मेरी भावना है यदि मेरा पुर्जन्म हो तो भारत में हो और मैं स्व-आत्म तत्त्व को जानने के लिए पुरुषार्थ करूँ।” भारत के इतिहास-पुराणादि के अध्ययन से यह स्पष्ट परिज्ञान हो जाता है कि जैन धर्म के 24 तीर्थঙ्कर जन्मतः 3 ज्ञान के धारी थे तथा राजकुमार से लेकर चक्रवर्ती थे, महात्मा बुद्ध भी राजकुमार, बुद्धिमान् थे तथा वैदिक धर्म के अनेक राजा, महाराजा, चक्रवर्ती भी थे जो सत्ता-सम्पत्ति-विभूति से युक्त थे वे भी आत्मकल्याण के लिए सम्पूर्ण वैभव छोड़कर साधु बन कर के स्व-आत्म-अध्ययन-मनन-शोधन के माध्यम से स्व-पर विश्व कल्याण करने में संलग्न रहे। उपर्युक्त उदाहरण से सिद्ध होता है कि आत्मा के शोध-बोध-उपलब्धि ही महान् उपलब्धि है। क्योंकि-

सब दब्बाणं उत्तम दब्ब सब तत्ताणं उत्तम तत्तं।

सब धम्माणं उत्तम धम्म तं जीव विहाणय॥

अर्थात् सम्पूर्ण द्रव्य में उत्तम द्रव्य, सम्पूर्ण तत्त्वों में उत्तम तत्त्व एवं सम्पूर्ण धर्म में उत्तम धर्म जीव को जानना चाहिए; इसलिए कहा है जो स्व आत्म द्रव्य को सम्पूर्णतः जानता है वह सम्पूर्ण ब्रह्मण्ड को पूर्णतः जानता है, जो स्व-आत्मा की उपलब्धि कर लेता है, वह सम्पूर्ण उपलब्धि कर लेता है, जो स्व-आत्मा का अनुभव करता है वह अक्षय-अनन्त सुख, शान्ति, आनन्द का अनुभव करता है।

जो एग जाणई सो सब्ब जाणई।

जो सब्ब जाणई सो एग जाणई॥ (श्वे. शास्त्र)

जो स्वयं की आत्मा को जानता है, वह सब को जानता है। जो सबको जानता है, वह सम्पूर्ण द्रव्य को जानता है। जो सम्पूर्ण द्रव्य को जानता है, वह अपनी आत्मा को भी जानता है।

एक भाव सर्वतो एन दृष्टा, सर्वभाव सर्वतो तेन दृष्टा। सर्वभाव सर्वतो एन दृष्टा, एकभाव सर्वतो तेन दृष्टा॥ (प्रव.सार)

जिसने एक भाव को सम्पूर्ण रूप से देख लिया है, उसने सम्पूर्ण द्रव्य को भी देख लिया है। जिसने सम्पूर्ण द्रव्यों को सम्पूर्ण रूप से देख लिया, उसने एक द्रव्य के सम्पूर्ण रूप को देख लिया। कहने का तात्पर्य यह है कि स्वात्म द्रव्य अनन्त-गुण-पर्यायात्मक है। उस अनन्त गुण पर्यायात्मक द्रव्य को जानने के लिए अनन्त ज्ञान-दर्शन होना चाहिए। अनन्त ज्ञान से वह अखिल विश्व में स्थित सम्पूर्ण द्रव्य को जान लेता है। कहा भी है-

एकोभावः सर्वभाव स्वभावः, सर्वेभावा एक भावा स्वभावः।  
एकोभावस्तत्त्वतो येन बुध्दाः, सर्वेभावस्तत्त्वतःतेन बुध्दाः॥(प्रव.सार)

भाव यह है कि एक भाव सर्वभावों का स्वभाव है और सर्वभाव एक भाव का स्वभाव है। जिसने निश्चय से यथार्थ रूप से एक भाव को जाना, उसने यथार्थ रूप से सर्वभावों को जाना है। यहाँ ज्ञाता और ज्ञेय सम्बन्ध लेना चाहिए। जिसने ज्ञाता को जाना, उसने सब ज्ञेयों को जाना है।

णां णरस्स सारो सारो वि णरस्स होइ सम्मतं ।

सम्मताओ चरणं चरणाओ होइ णिव्वाणं ॥ (31) अष्ट पाहुड

सर्वप्रथम मनुष्य के लिए ज्ञान सार है और ज्ञान से भी अधिक सार सम्यक् दर्शन है क्योंकि सम्यग्दर्शन से सम्यक् चारित्र होता है और सम्यक्

चारित्र से निर्वाण प्राप्त होता है।

सम्मत्ताणदंसणबलवीरियवद्विमाण जे सब्बे।

कलिकलुसपावरहिया बरणाणी होंति अद्वेण॥ (6)दर्शन पाहुड

जो पुरुष सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, बल और वीर्य से वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं तथा कलिकाल सम्बन्धी मलिन पाप से रहित हैं वे सब शीघ्र ही उत्कृष्ट ज्ञानी हो जाते हैं।

जिनवयणमोसहमिणं विसयसुह विरेयणं अमिदभूयं।

जरमरणवाहिहरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणं॥ (17)दर्शन पाहुड

यह जिनवचन रूपी औषधि विषय सुख को दूर करने वाली है, अमृतरूप है, बुद्धापा, मरण आदि की पीड़ा को हरने वाली है तथा समस्त दुःखों का क्षय करने वाली है।

चिंतामणि परंतुटे चिंतिसदने, कोडुव पेययुं टघुदरि।

चिंतिसु निजात्मनं चिच्छिंतामणि ताने कुञ्जुमक्षय सुखमं॥(48)योगामृत कल्नड

अपनी आत्मा में जिस वस्तु का चिन्तन करते हैं उसको देने में समर्थ चिन्तामणि के समान आत्मा ही चिन्तामणि है। ऐसे अपने अन्दर रहने वाले आत्म स्वरूप को छोड़कर क्या और कोई चिंतामणि है? अतः योगी! निज आत्मा का ध्यान करो वही चित्-चिन्तामणि तुझे अक्षय सुख को प्राप्त कराने वाली है।

अजरामवत् प्राज्ञो विद्यामर्थे च चिन्तयेत्।

गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्माचरेत्॥(3) हितो.पृ.1

बुद्धिमान् मनुष्य अपने को कभी बूढ़ा न होऊँगा और कभी न मरूँगा ऐसा जानकर विद्या और धनसंचय का विचार करे, मृत्यु ने चोटी को आ पकड़ा है ऐसा सोच कर धर्म करे।

सर्वद्रव्येषु विधैव द्रव्यमाहुसुत्तमम्।

अद्वार्यत्वादनर्थत्वादक्षयत्वाश्र सर्वदा॥ (4)

पण्डित लोग सब काल में (कभी) चौरादि की से नहीं चुराये जाने से, अनमोल होने से और कभी क्षय न होते, सब पदार्थों में से उत्तम पदार्थ विद्याकोटी कहते हैं।

संयोजयति विद्यैव नीचगापि नरं सरित्।  
समुद्रमिव दुर्धर्षं नृपं भाग्यमतः परम्॥15॥

जैसे नीच अर्थात् तुच्छ तुणादि से मिलने वाली नदी उस तुणादिक को अथाह समुद्र से जा मिलाती है, उसी प्रकार विद्या भी नीच पुरुष को प्राप्त (वश) होकर राजा से जा मिलाती है, फिर सौभाग्य का उदय कराती है।  
विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।  
पात्रत्वाद्धनं माप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्॥16॥

विद्या मनुष्य को नम्रता देती है और नम्रता से योग्यता, योग्यता से धन, धन से, फिर धर्म से सुख पाता है।

यत्रवे भाजवे तस्मः संस्कारो नान्यथा भवेत्।  
कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते॥17॥

जैसे मृत्तिका के कोरे बर्तन में जिस वस्तु का संस्कार पहले हो जाता है और पीछे वह उसमें से नहीं जाता है : उसी प्रकार मैं इस हितोपदेश ग्रन्थ में कथा के बहाने से बालकों के लिये नीति कहता हूँ।

विद्या शस्त्रस्य शास्त्रस्य द्वे विद्ये प्रतिपत्तये।  
आद्या हास्याय वृद्धत्वे द्वितियाद्रियते सदा॥18॥

शस्त्रविद्या और शास्त्रविद्या ये दोनों आदर करने वाली है परन्तु पहली अर्थात् शस्त्रविद्या बुद्धापे में “पुरुषार्थं न होने से” हंसी कराती है और दूसरी अर्थात् शास्त्रविद्या सदैव आदर कराती है।

“अनेकसंशयोच्छेदि परोक्षार्थस्थ दर्शकिम्।  
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्धं एव सः॥10॥

“अनेक सन्देहों को दूर करने वाला और छिपे हुए अर्थ को दिखाने वाला शास्त्र, सबका नेत्र है, ज्ञान रूपी जिसके पास वह शास्त्र नेत्र नहीं है वह अन्धा है।

‘कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान्न धार्मिकः।  
काणेन चक्षुषा किं वा, चक्षुः पीडैव केवलम्॥12॥

जो न पण्डित है और न धर्मशील है ऐसा पुत्र उत्पन्न हुआ किस काम का जैसे काणी आंख से क्या सारता है ? केवल आंख को ही पीड़ा है।

अज्ञात-मृत-मूर्खाणां वर माघौ न चान्तियः।  
सकृटः खकरावाद्यावन्ति मस्तु पदे पदे॥13॥

उत्पन्न नहीं हुआ, तथा होकर मर गया और मूर्ख, इन तीनों में से पहले दो अच्छे हैं और अन्तिम (मूर्ख) अच्छा नहीं क्योंकि पहले दोनों एक ही वार दुःख के करने वाले हैं, अंतिम क्षण-क्षण में (हमेशा) दुःख देता है।  
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्।  
परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ?॥15॥

और जिस पुत्र के उत्पन्न होने से वंश की बड़ाई हो, वह जानो उत्पन्न हुआ नहीं तो इस असार संसार में मरकर कौन मनुष्य उत्पन्न नहीं होता है अर्थात् बहुत से होते हैं और बहुत से मरते हैं।  
दाने तमसि शौर्ये च यस्य न प्रथितं मनः।  
विद्यायामर्थलामे च मातुरुच्चर एव सः॥17॥

और भी कहा है कि - दान में, शूरता में, विद्या के पढ़ने में और धन के लाभ में जिसका मन नहीं लगा वह पुत्र अपनी माता के मल मूत्र के समान वृथा है।

अनभ्यासे विषं विद्या अजीर्णे भोजनं विषम्।  
विषं सभा दरिद्रस्य वृद्धस्य तरुणी विषम्॥123॥

अभ्यास न करने से विद्या, अजीर्ण होने पर भोजन, दरिद्री को सभा और बूढ़े को तरुण स्त्री, विष के समान है।

तत्कथभिदानीमेते मम पुत्रा गुणवन्तः कियन्ताम्।  
आहार-निद्रा-भय-मैथुनं च  
सामान्यमेतत्पशुभिन्नराणाम्।  
धर्मो ही तेषामधिको विशेषो  
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥125॥

इसलिये अब किसी प्रकार से, इन मेरे पुत्रों को गुणवान् कीजिये आहार, निद्रा, भय और मैथुन ये पशुओं और मनुष्यों में समान हैं। केवल मनुष्यों में धर्म ही अधिक हैं और धर्महीन मनुष्य पशु के समान है।  
धर्मर्थकामोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते।  
अजाग्रजस्तनस्येवं तस्त जन्म निर्यकम्॥126॥

क्योंकि-जिस मनुष्य में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इनमें से एक भी न हों, उसका जन्म बकरी के गले के थन के समान वृथा (निकम्मा) है।

‘काव्यशास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।  
व्यसनेन च मूर्खणां निद्रया कलहेन वा’॥ (1) (पृ.12)

‘काव्य शास्त्र के विनोद से बुद्धिमानों का और धूत आदि, दुर्वसन नींद अथवा कलह से मूर्खों का समय कटता है।

### ग्रहणीय सार तत्त्व-

अनन्तपारं किल शब्द शास्त्र स्वल्पं तथाऽऽयुबहवश्च विघ्नाः॥  
सारं ततो ग्राह्यमपास्य फल्गु हंसैर्यथा क्षीरभिवाम्बुमध्यात्॥ (9)

शब्द शास्त्र (व्याकरण) का निश्चित कहीं पार नहीं, अवस्था थोड़ी और विध्न अत्यधिक है। इसलिए सार (तत्त्व) को ग्रहण कर, असार (निस्तत्त्व) का वैसे ही परित्याग कर देना चाहिए जैसे हंस जल से दूध निकाल लेते और जल त्याग देते हैं। (पंचतंत्र. पृ.4)

तीन भुवन में सार वीतराग विज्ञानता।  
शिव स्वरूप शिवकार नमहूं त्रियोग सम्हारिके॥

भौतिक विज्ञान लौकिक ज्ञान से अधिक से अधिक जीविका निर्वाह ही संभव है परन्तु जीवन निर्माण से लेकर परिनिर्वाण (मोक्ष, मुक्ति) के लिये वीतराग विज्ञान (आध्यात्मिक ज्ञान) की अनिवार्यता है। भौतिक विज्ञान तो शब्दस्वरूप (जड़-स्वरूप) है तो आध्यात्मिक विज्ञान शिव स्वरूप (मंगलभूत शाश्वतिक) तथा उसके निर्माता है। इसलिये कहा गया है- ‘सा विद्या या विमुक्तये’ अर्थात् जो मुक्ति के कारण है वह ही यथार्थ से विद्या है। इसलिये दुर्लभ-महान् मानव जन्म में लौकिक ज्ञान, सत्ता, सम्पत्ति, प्रसिद्धि, राग-द्वेष, मोह, शत्रुता, लड़ाई-झगड़ा आदि को त्यागकर के स्वाध्याय, आत्मचिन्तन, ध्यान, आत्म परिशोधन, आत्मनिर्माण, परिनिर्माण में यथायोग्य समय, शक्ति, बुद्धि लगाना चाहिये।

### श्रुतज्ञान का माहात्म्य

सुदकेवलं च णाणं दोषिणवि सरिसाणि हौंति बोहादो।  
सुदणाणं तु परोकरवं पञ्चकरवं केवलं णाणं ॥ (369)

बोध अर्थात् ज्ञान की अपेक्षा श्रुतज्ञान तथा केवल ज्ञान दोनों ही सदृश हैं। श्रुतज्ञान परोक्ष है और केवलज्ञान प्रत्यक्ष है।

‘अक्ष’ अर्थात् आत्मा से पर (भिन्न) इन्द्रिय व प्रकाश आदि के द्वारा जो ज्ञान उत्पन्न हो वह परोक्ष है। इन्द्रिय, मन व प्रकाश आदि की सहायता के बिना आत्मा के द्वारा जो ज्ञान पदार्थों के विषय में उत्पन्न होता है। वह प्रत्यक्ष है। इसका विशद कथन पूर्व में किया जा चुका है।

स्याद्वाद केवल ज्ञाने सर्व तत्त्वप्रकाश ने भेदः साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत्। (105)

सम्पूर्ण तत्त्वों के प्रकाशक स्याद्वाद और केवलज्ञान में प्रत्यक्ष और परोक्ष का भेद है। जो वस्तु दोनों ज्ञानों में से किसी भी ज्ञान का विषय नहीं होती है। वह अवस्तु है। यहाँ पर स्याद्वाद श्रुतज्ञान का पर्यायवाची है। श्रुतज्ञान और केवलज्ञान दोनों सम्पूर्ण अर्थों को जानते हैं। उनमें अन्तर यही है कि श्रुतज्ञान परोक्ष रूप से अर्थों को जानता है और केवल ज्ञान प्रत्यक्ष रूप से जानता है। जो सम्पूर्ण श्रुत का ज्ञाता हो जाता है, वह श्रुत केवली है। श्रुत केवली श्रुतज्ञान के द्वारा सम्पूर्ण पदार्थों को जानता है। श्रुतकेवली में और केवली में ज्ञान की अपेक्षा कोई भेद नहीं है। भेद केवल प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से जानने का है। गाथा में पहले श्रुत शब्द का प्रयोग किया है और बाद में केवल ज्ञान शब्द है। इससे प्रतीत होता है कि दोनों में से कोई एक ही पूज्य नहीं है। इसका कारण यह है कि दोनों परस्पर हेतुक हैं। केवल ज्ञान से श्रुत की उत्पत्ति होती है और श्रुत से केवल ज्ञान की, बीज वृक्ष के समान।

शंङ्का-श्रुतज्ञान सर्व तत्त्वों का प्रकाशक कैसे हो सकता है, क्योंकि सर्व पर्यायों को नहीं जानता है।

समाधान-श्रुतज्ञान द्रव्य की अपेक्षा सर्वतत्त्व प्रकाशक कहा गया है, पर्याय की अपेक्षा नहीं। जीव आदि सप्ततत्त्वों का प्रकाशन केवलज्ञान के समान श्रुतज्ञान भी करता है। केवली दूसरों के लिये जीवादि तत्त्वों का प्रतिपादन करते हैं उसी प्रकार आगम भी करता है। उनमें इतनी विशेषता है कि केवली अर्थों को प्रत्यक्ष जानता है और श्रुतज्ञान परोक्ष रूप से जानता है। केवली त्रैकालिक द्रव्य की एक समय में होने वाली अनन्त पर्यायों को जानता है। और श्रुतज्ञानी उनमें से कुछ पर्यायों को जानता है। केवली भी दिव्यध्वनि के द्वारा सर्व पर्यायों का प्रतिपादन नहीं कर सकते। क्योंकि सर्व पर्याय वचनों के अगोचर हैं। इसी प्रकार आगम में भी कुछ पर्यायों का कथन है। जो इन दोनों ज्ञानों का विषय नहीं हो वह अवस्तु है। (गो.जी.पृ.464)

## विश्व चक्षुः आगम

लोक त्रयैक नेत्रं, निरूप्य परमागमं प्रयत्नेन।

अस्माभिरुपोधिष्ठते, विदुषां पुरुषार्थ सिद्ध्युपायोज्यम् (३)(पु.सिद्ध्युपाय पृ.12)

After having carefully studied the highest scripture, which affords a matchless vision of the three words I proceed to expound for the sake of scholars, this (treatise) purushartha siddhy upaya.

यह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि का उपायभूत पुरुषार्थ-सिद्ध्युपायः मेरे द्वारा अर्थात् ग्रन्थकर्ता श्रीमद्भूतचन्द्रसूरी द्वारा विद्वानों के लिये उद्घृत किया जाता है अर्थात् प्रणयन किया जा रहा है। भगवान् के वचन के अनुसार अत्यन्त प्रयत्न सहित मेरे द्वारा इस ग्रन्थ की रचना की जा रही है। यह ग्रन्थ तीन लोक के लोचन स्वरूप है। इस परमागम के द्वारा तीन लोक का स्वरूप जाना जाता है। इसलिए इसे तीन लोक का एक मेव लोचन कहा जाता है। इसलिये ज्ञान ही सुन्दर नेत्र है। स्वयं ग्रन्थकर्ता भी अन्य ग्रन्थों के आधार पर इस ग्रन्थ की रचना कर रहे हैं न कि स्वयं की बुद्धि से। अर्थात् भगवान् के वचन को सम्यक् रूप से समीक्षा करके इस ग्रन्थ की रचना कर रहे हैं।

समीक्षा - इस श्लोक में आचार्य श्री ने आगम को “तीनलोक” का एक नेत्र कहा है। यथा-

सब्वे आगमसिद्धा अत्था गुणपञ्जएहिं चत्तेहि।  
जाणांति आगमेण हि पेच्छिता ते वि ते समाणा (२३५)

विशुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभावधारी परमात्म पदार्थ को लेकर सर्व ही पदार्थ तथा उनके सर्वगुण और पर्याय परमागम के द्वारा जाने जाते हैं, क्योंकि परोक्ष रूप आगम केवल ज्ञान के समान है। आगम द्वारा पदार्थों को जान लेने पर जब स्वसंवेदन ज्ञान पैदा हो जाता है तब उस संवेदन के बल से जब केवलज्ञान पैदा होता है तब वे ही सर्व पदार्थ प्रत्यक्ष हो जाते हैं। इसलिये आगम चक्षु के द्वारा परम्परा से सर्व ही प्रत्यक्ष दिख जाता है। इसलिये आगम में प्रतिपादित सम्पूर्ण विषय सत्य है, सिद्धान्त है। अतः सर्वज्ञ का वचन ही प्रवचन है, क्योंकि इनका ही वचन अज्ञानता से, राग-द्वेष से, विपरीतता से, संशय से, अनध्यवसाय से, पक्षपात से रहित होने के कारण प्रवचन है।

(प्र+वचन) अर्थात् प्रकृष्ट वचन है, इनकी कथन प्रणाली अनेकान्तात्मक, स्याद्वाद से युक्त होने के कारण उनके वचन या आगम को ‘स्याद्वाद’ भी कहते हैं। अतः केवलज्ञान में जो प्रत्यक्ष भूत सत्य है वही परोक्षरूप में आगम है।

कुन्दकुन्द देव ने नियमसार में भी कहा है कि सर्वज्ञ द्वारा जो प्रतिपादित वचन ही आगम है और आगम के द्वारा ही वस्तु स्वरूप का यथार्थ ज्ञान होने के कारण उसके द्वारा प्रतिपादित विषय तत्त्वार्थ है। यथा तस्स मुहगगदवयणं, पुव्वावरदोसविरहियं सुद्धं।

आगममिदि परिकहियं, तेण दु कहिया हवंति वच्चात्या ॥ ८

उन आप्त परमेश्वर के मुखारविदं से निकले हुए कुशल वचन की रचना का विस्तार है। वह पूर्वापर दोष से रहित है, उन भगवान् के राग का अभाव होने से पापसूत्र के समान हिंसादि पाप क्रियाओं का अभाव होने से जो शुद्ध है। वह ‘परमागम’ इस नाम से कहा जाता है। वह परमागम भव्यों के द्वारा कर्ण रूपी अंजलि पुट से पीने योग्य अमृत है। मुक्ति सुन्दरी के मुख को देखने का दर्पण है, संसार रूपी महासमुद्र के महांभवर में फँसे हुये सम्पूर्ण भव्य जीवों के हाथ का अवलम्बन देने वाला है, सहज-स्वाभाविक वैराग्य-रूपी महल के शिखर का चूडामणि रत्न है, अक्षुण्ण जो कभी नष्ट नहीं होगा ऐसा मोक्षरूपी उत्तम भवन में पहुंचने के लिये पहली सीढ़ी है और कामभोग से उत्पन्न हुए जो अप्रशस्त राग रूपी अंगारे उनसे झुलसते हुए दीन-प्राणियों के महान् क्लेश को जड़मूल से नष्ट करने में समर्थ ऐसा सजल मेघ है। इन विशेषणों से विशिष्ट ऐसे इस परमागम के द्वारा निश्चित रूप से सात तत्त्व और नव पदार्थ कहे गये हैं। इसलिये इस गाथा में आचार्य श्री ने कहा कि अनेक प्रकार गुण और पर्यायों से युक्त सम्पूर्ण पदार्थों को श्रमण आगम के माध्यम से देखकर जानते हैं क्योंकि छव्वस्थ अवस्था में समस्त रूपी-अरूपी द्रव्यों का ज्ञान साधुओं को इन्द्रिय ज्ञान एवं मतिज्ञान से भी नहीं हो सकता है।

## मति और श्रुतज्ञान का विषय

मतिश्रुतयोनिर्बन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्ययेषु ॥ २६ स्व सू.९५

The - Subject matter of sensitive and scripture knowledge is all the six substances but not in all their modifications.

मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की प्रवृत्ति कुछ पर्यायों से युक्त द्रव्यों में होती है। मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञान की प्रवृत्ति जीव, पुदगल, धर्म, अर्धर्म, आकाश व

कालादि सर्व द्रव्यों में होती है परन्तु उसकी सब पर्यायों में नहीं होती। परन्तु कुछ पर्यायों में होती है। इन दोनों ज्ञान का विषय सर्वद्रव्य की अनन्तपर्ययिन्हीं परन्तु कुछ पर्यायों होती है। क्योंकि मतिज्ञान चक्षु आदि इन्द्रियों के अवलम्बनभूत है। इसलिये जिस द्रव्य में रूपादि है उसी को जानते हैं सर्व पर्यायों को नहीं जान सकते। अर्थात् मतिज्ञान चक्षुकादि इन्द्रियों से उत्पन्न होता है और रूपादि को विषय करता है। अतः स्वभावतः वह रूपी द्रव्यों को जानकर भी उनकी कुछ पर्यायों को ही जानेगा श्रुतज्ञान भी प्रायः शब्दनिमित्तक होता है और द्रव्य पर्यायिं संख्यात असंख्यात अनंत भेदरूप है-अतः वे असंख्यात शब्द पर्यायों को ही कह सकते हैं। कहा भी है-

‘पणवणिज्जा भावा अणंत भागो दु अणभिलप्पाणां।  
पणवणिज्जाणं पुण अणंत भागो सुदणिबद्धो’॥

शब्दों के प्रज्ञापनीय पदार्थों से वचनातीत पदार्थ अनंत गुने है अर्थात् अनन्तवाँ भाग पदार्थ प्रज्ञापनीय है। और जितने प्रज्ञापनीय पदार्थ हैं उसके अनन्तवें भाग पदार्थ श्रुत में निबद्ध होते हैं। अतीन्द्रिय पदार्थों में मतिज्ञान की प्रवृत्ति का अभाव होने से ‘सर्वद्रव्य पर्याय’ शब्द युक्त नहीं है। ऐसा नहीं कहना क्योंकि मन का विषय सर्वद्रव्य हो सकता है।

प्रश्न-अतीन्द्रिय होने से धर्मास्तिकायादि द्रव्यों को मतिज्ञान नहीं जान सकता अतः मतिश्रुत का विषय सर्वद्रव्य निवन्ध है, ऐसा कहना उचित नहीं है- उत्तर-यद्यपि धर्म, अधर्म, आकाशदि, अरूपी पदार्थ अतीन्द्रिय होने से इन्द्रियका विषय नहीं है तथापि मानस मतिज्ञान का विषय होते हैं-नो इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशमलब्धि की अपेक्षा मतिज्ञान का धर्मादि द्रव्यों में व्यापार होता है अर्थात् मतिज्ञान धर्मादि द्रव्यों को जानते हैं यदि मानसज्ञान से अतीन्द्रिय पदार्थों को नहीं जानते तो अवधिज्ञान के साथ मतिज्ञान का निर्दोष करते कि रूपी पदार्थों को ही मतिज्ञान जानता है।

## विज्ञान एवं व्यवहार के प्रत्यक्षज्ञान आध्यात्मिक दृष्टि से परोक्षज्ञान आद्ये परोक्षम्। (11)

The first two kinds of knowledge, i.e. मति Sensitive and श्रुत Scriptural knowledge, are परोक्ष Paroksha i.e. Indirect or mediate.

प्रथम दो ज्ञान परोक्ष प्रमाण है।

आद्य के दो ज्ञान अर्थात् मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्ष प्रमाण है। जो ज्ञान परावलम्बन से होता है एवं अस्पष्ट होता है उसे परोक्षज्ञान कहते हैं। मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञान इन्द्रिय, मन एवं प्रकाश आदि के आवलम्बन से होता है एवं अस्पष्ट होता है। इसलिए इसे परोक्षज्ञान कहते हैं। कुन्द-कुन्द स्वामी ने कहा भी है-

जं परदो विणाणं तं तु परोक्खं त्ति भणिदमत्थेसु। (58)

पर के द्वारा होने वाला जो पदार्थ सम्बन्धी विज्ञान है वह तो परोक्ष इस नाम से कहा गया है।

परद्वं ते अक्खा णेव सहावो त्ति अप्पणो भणिदा।  
अवलद्धं तेहि कघं पच्चक्खं अप्पणो होदि॥

(पवयणसारो पृ.स.132 श्लो.57)

वे प्रसिद्ध पाँचों इन्द्रियों को आत्मा कि अर्थात् विशुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभावधारी आत्मा की स्वभाव रूप निश्चय से नहीं कही गई है। क्योंकि, उनकी उत्पत्ति भिन्न पदार्थ से हुई है इसलिये वे परद्रव्य अर्थात् पुदगल् द्रव्यमयी हैं उन इन्द्रियों के द्वारा जाना हुआ उन्हीं के विषय योग्य पदार्थ सो आत्मा के प्रत्यक्ष किस तरह हो सकता है? अर्थात् किसी भी तरह नहीं हो सकता है। जैसे पाँचों इन्द्रियाँ आत्मा के स्वरूप नहीं हैं ऐसे ही नाना मनोरथों के करने में ‘यह बात कहने योग्य है। मैं कहने वाला हूँ इस तरह नाना विकल्पों के जाल को बनाने वाला जो मन है वह इन्द्रियज्ञान की तरह निश्चय से परोक्ष ही है।

प्रत्यक्षमन्यत् १ (12)

The remaining three, i.e. अवधि visual, direct material knowledge, मनःपर्यय mental, direct mental knowledge and केवल perfect knowledge are प्रत्यक्ष i.e. directly known by the soul itself, without any external help.

शेष सब ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण है।

अवधिज्ञान, मनः पर्यय ज्ञान एवं केवलज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण है।

जो ज्ञान परावलम्बन के बिना जानता है। उसे प्रत्यक्षज्ञान कहते हैं। इस दृष्टि से केवलज्ञान ही पूर्ण (सकल) प्रत्यक्ष है। अवधिज्ञान एवं मनः पर्यज्ञान क्षयोपशम से उत्पन्न होने के कारण तथा सीमा सहित होने के कारण परोक्ष होते हुए भी ये दोनों ज्ञान मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञान के समान पूर्ण परतन्त्र नहीं हैं। इसलिए इन दोनों ज्ञान को प्रत्यक्ष में ग्रहण किया गया है। तथापि केवल ज्ञान के समान पूर्ण प्रत्यक्ष नहीं होने के कारण इसे देश प्रत्यक्ष भी कहते हैं। प्रत्यक्ष की परिभाषा कुन्द कुन्द देव ने निम्न प्रकार से की है-

जंदि केवलेण णांद हवदि हि जीवेण पच्चक्खं॥ (58 प्रब. पु. 134)  
जो मात्र जीव के द्वारा ही जाना जाता है वह ज्ञान वास्तव में प्रत्यक्ष है।

### मतिज्ञान के दूसरे नाम (अवस्था भेद)

**मतिःस्मृतिःसंज्ञाचिन्ताभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्। (13)**

**स्मृतिः**: Sensitive knowledge (connotes) the same things as:  
**स्मृतिः**:(Rememberance of a thing known before, but out of sight now):

संज्ञा also called प्रत्यभिज्ञान recognition (rememberance of a thing known before when the thing itself or somethings similer or markedly dissimilar to it, is present to the senses now):

चिन्ता Chanta or Tarka induction (reasoning or argument based upon observation. If a thing is put in fire, its temperature would rise.)

अभिनिबोध Abhinibodh or Anumana (Deduction, reasoning by inference; e.g. any thing put in fire become sheated this thing is in fire; therefore is must be heated.

मति, स्मृति संज्ञा, चिन्ता और अभिनिबोध इत्यादि अन्य पदार्थ नहीं हैं अर्थात् मतिज्ञान के ही नामान्तर है।

मतिज्ञानावरण कर्म क्षयोपशम रूप अन्तरंग निमित्त से उत्पन्न हुए उपयोग को विषय करने के कारण मतिज्ञान एक है तथापि कुछ विशेष कारणों से उसमें उपरोक्त भेद हो जाते हैं।

**1. मति - “मननमतिः”** जो मनन किया जाता है उसे मति कहते हैं। मन और इन्द्रियों से वर्तमान काल के पदार्थों का ज्ञान होना मति है।

**2. स्मृति - “स्मरणं स्मृतिः”** स्मरण करना स्मृति है। पहले जाने हुए पदार्थ का वर्तमान में स्मरण आने को स्मृति कहते हैं।

**3. संज्ञा - “सज्जानं संज्ञा”** वर्तमान में किसी वस्तु को देखकर यह वही है इस प्रकार स्मरण और प्रत्यक्ष के जोड़ रूप ज्ञान को संज्ञा या प्रत्यभिज्ञान कहते हैं।

**4. चिन्ता -** किन्हीं दो पदार्थों के कार्य-कारण आदि सम्बन्ध के ज्ञान को चिन्ता कहते हैं। इसको तर्क भी कहते हैं। जैसे- अग्नि के बिना धूम नहीं होता है, आत्मा के बिना शरीर व्यापार, वचन व्यापार नहीं हो सकते हैं’ पुद्गल के बिना स्पर्श, रस, गंध, वर्ण नहीं हो सकते हैं। इस प्रकार कार्य कारण सम्बन्ध का विचार करना ‘चिन्ता’ है। संक्षिप्ततः व्याप्ति के ज्ञान को चिन्ता कहते हैं।

**अभिनिबोध-** एक प्रत्यक्ष पदार्थ को देखकर उससे सम्बन्ध रखनेवाले अप्रत्यक्ष का बोध-ज्ञान होना अभिनिबोध (अनुमान) है। जैसे - पर्वत पर प्रत्यक्ष धूम को देखकर उससे सम्बन्ध रखने वाली अप्रत्यक्ष अग्नि का ज्ञान होना।

‘इति’ शब्द से प्रतिभा, बुद्धि, मेधा आदि को ग्रहण करना चाहिए दिन और रात्रि में कारण के बिना ही जो स्वतः प्रतिभास हो जाता है वह प्रतिभा है। जैसे प्रातः मुझे इष्ट वस्तु की प्राप्ति होगी या कल मेरा कोई इष्ट सम्बन्धी आयेगा आदि।

अर्थग्रहण करने की शक्ति को ‘बुद्धि’ कहते हैं।

पाठग्रहण करने की शक्ति का नाम ‘मेधा’ है।

कहा भी है- आगमाश्रित ज्ञान मति है। बुद्धि तत्कालीन पदार्थ का साक्षात्कार करती है। प्रज्ञा अतीत को तथा मेधा त्रिकालवर्ती पदार्थों का परिज्ञान करती है। नवीन-नवीन उन्मेषशालिनी प्रतिभा है।

**-लौकिक प्रत्यक्ष यथार्थ से परोक्ष होने के**

**सोदाहरण कारण-**

इन्द्रियाँ, मन विभिन्न वैज्ञानिक यंत्रों के माध्यम से जो ज्ञान प्राप्त होता है भले उसे सामान्यतः तथा विज्ञानातुसार भी प्रत्यक्षज्ञान कहा जाता है, माना जाता है तथापि वह ज्ञान यथार्थ से परोक्षज्ञान है। आधुनिक भौतिक

विज्ञान तो इसे ही यथार्थ, प्रमाणिक, सच्चा ज्ञान मानता है, अभौतिक, अमूर्तिक, चेतनात्मक द्रव्य के बारे में विशेष जिज्ञासा, शोध-बोध-खोज-अविष्कार या विश्वास तक नहीं है। यदि विश्वास ही नहीं है तो उस सम्बन्धी शोध-बोध की प्रवृत्ति ही कैसे संभव है? भौतिक विज्ञान तो अभी तक केवल भौतिक तत्त्व की संकीर्ण सीमा में ही सिमटा हुआ है, आबद्ध है, कैद है। ऐसी परिस्थिति में विज्ञान की जितनी भी उपलब्धियाँ हैं, वह सब भौतिक, परोक्ष, अपूर्ण है तथापि लौकिक मर्यादा, व्यवहार, व्यवस्था, सुविधा, सहास्त्रित्व, परस्पर सहयोग, उपकार आदि के योग्य विज्ञान, नियम, कानून आदि मान्य हैं। इसलिए सम्यक् मतिज्ञान, सम्यक् श्रुतज्ञान को भी साम्यवहारिक प्रत्यक्ष रूप से मान्य है।

इन्द्रियों से लेकर वैज्ञानिक यंत्र तक भौतिक एवं सीमित क्षमता वाले होने से उनके द्वारा ज्ञात विषयों में भी पूर्णता नहीं होती है तथा संशय, विपरीत आदि भी होते हैं। जैसा कि आकाश को कोई रङ्ग नहीं होने पर नीला दिखाई देना, दूर की रेल की पटरी की चौड़ाई कम दिखाई देना' सूर्य चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, पर्वत आदि का छोटा दिखाई देना, ऊँचाई में उड़ते हुए वायुयान का छोटा दिखाई देना तथा पीछे से दूर से उसकी आवाज सुनाई देना आदि। इसी प्रकार मानवकृत राज्य, देश, महादेश की सीमा, भौतिक वस्तुओं का मूल्य, पशु-पक्षी वनस्पति, पर्यावरण आदि की उपेक्षा करके केवल मानवों के हित में बनाये गये नियम कानून या किसी विशेष समुदाय के संकीर्ण स्वार्थ के लिए बनाये गये नियम-कानून आदि भी अपूर्ण, गलत, विपरीत भी हो सकते हैं, बहुधा होते भी हैं। ऐसा ही मन के संकल्प-विकल्प-विचार-अनुमान-परिकल्पना आदि के बारे में जान लेना चाहिए क्योंकि मन में सीमित क्षमता होने से तथा मन में राग-द्वेष, मोह, संकीर्णता, पूर्वग्रिह, स्वार्थपरता, लालसा, तृष्णा, भय, आशंका, कामुकता, अन्धश्रद्धा-अन्धविश्वास, पक्षपात आदि होने के कारण। द्रव्यमन तो भौतिक है ही, इसके साथ-साथ भाव मन भी सूक्ष्म रूप से पौद्वलिक-भौतिक-कर्मजनित है। इसलिए तो दुःख, तनाव, भय, आशंका आदि से प्रभावित होता है। इसलिए मानव को सनप्रसत्यग्राही, उदार, प्रगतिशील, सहिष्णु, समताधारी होकर महान् आध्यात्म पुरुषों के अनुभूत सत्य को स्वीकार करना चाहिए, आध्यात्मिक ग्रन्थों का अध्ययन भी करना चाहिए। तथा आध्यात्मिक सत्य तथ्य के अनुसार विचार एवं व्यवहार करना चाहिए।

रागद्वेषादिकल्लोलैरलोलं यन्मनोजलम्।

स पश्यत्मास्तत्त्वं तत्तत्वं नैतरो जनः॥ (35) समाधितंत्र

जिस पुरुष का मन रूपी जल, राग-द्वेष, मद, क्रोध, लोभ, माया आदि की लहरों से चञ्चल नहीं है, वह मनुष्य अपने आत्मा के वास्तविक स्वरूप को अपने निर्मल मन में देख लेता है। अन्य मनुष्य उस आत्मा के स्वरूप को नहीं देख पाता।

अविक्षिप्तं मनस्तत्त्वं विक्षिप्तं भ्रान्तिरात्मनः।  
धारयेत्तदविक्षिप्तं विक्षिप्तं नाश्रेत्ततः॥ (36)

मोह-मिथ्यात्व और राग-द्वेष आदि के क्षोभ से रहित मन आत्मा का स्वभाव है और मोह तथा राग-द्वेष से व्याकुल मन आत्मा की भ्रान्ति अर्थात् भ्रम है। इसलिए राग-द्वेष, मोह से रहित शुद्ध मन बनाना चाहिए। राग, द्वेष, मोह आदि दुर्भावों से मन को मलीन नहीं करना चाहिए।

अविद्याभ्यास संस्कारैरवशं क्षिप्तते मनः।  
तदैव ज्ञान संस्कारै स्वतस्तत्वेऽवतिष्ठते॥ (137)

मन अज्ञान के अभ्यास से संस्कारों द्वारा अपने वश में न रहकर इन्द्रियों के विषय भोगों में फँस जाता है, वही मन आत्मा शरीर के भेद-विज्ञान के संस्कारों से अपने आत्मा-शरीर के भेद-विज्ञान के संस्कारों से अपने आत्म-स्वरूप में ठहर जाता है।

अविद्याभिदुरं ज्योतिः परं ज्ञानमयं महत्।  
तत्प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं, तद् द्रष्टव्यं मुमुक्षुभिः॥ (49)

मुमुक्ष को सतत उस आनन्द स्वरूप, ज्ञानमय, आत्म प्रकाशक अविद्या रूपी अन्धकार को भेदन करने वाली परम् चित्तज्योति, विघ्नों को छेदन करने वाली महान् विपुल, इन्द्रादि से पूज्यनीय चैतन्य प्रकाश के बारे में गुरु आदि से सतत पूछना चाहिए तथा उसकी इच्छा करनी चाहिए एवं उसका ही अनुभव करना चाहिए।

यत्र विश्वमिदंभाति कल्पितंरज्जुसर्पवत्।  
आनन्दपरमानन्दः स बोधस्तवं सुखंचर॥ (10)

हे शिष्य! जिस प्रकार रज्जु में सर्प की प्रतीति होती है और उसका भ्रम प्रकाश होने से निवृत्ति हो जाती है, उसी प्रकार ब्रह्म के विषय में जगत्

अज्ञान कल्पित है, ज्ञान होने से नष्ट हो जाती है। तू ज्ञानरूप है, इस कारण सुख पूर्वक विचार। जिस स्वप्न में किसी पुरुष विचारता है तो वह बड़ा दुःखी होता है परन्तु निद्रा के दूर होने पर उस दुःख का जिस प्रकार नाश हो जाता है उसी प्रकार तू ज्ञान से अज्ञान से प्रतीत होता है और ज्ञान से उसका नाश हो जाता है परन्तु एक प्रकार प्राप्त होता है? तब गुरु समाधान करते हैं कि हे शिष्य! तू संसार के नाश होने पर आत्मा स्वभाव से ही आनन्द स्वरूप हो सकता है। मनुष्य लोक से तथा देवलोक से आत्मा का आनन्द परम् उत्कृष्ट अधिक है।

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य, व्यवहार बहिः स्थितेः।  
जापते परमानन्दः, कश्चिद्योगेन योगिनः॥ (47)

देहादि से निवृत होकर जो स्व-आत्मा में ही लीन होकर प्रवृत्ति-घट्ट व्यवहार से दूर होकर ध्यान करता है ऐसे योगी-आत्माध्यान से अनिवार्य परम् आनन्द उत्पन्न होता है जो आनन्द अन्य में असम्भव होता है।

## मनोविज्ञान (मतिज्ञान) के भेद

विहेवायधारणाः। (15) स्वतंत्रता के सूत्र (मोक्षशास्त्र)

- Avagraha or Preception
- Perception
- Judgement
- Retention

अवग्रह, ईहा, आवाय और धारणा ये मतिज्ञान के चार भेद हैं। इस में ज्ञान प्राप्ति के मनोवैज्ञानिक प्रणाली का वर्णन किया गया है। किसी विषय के धारणा रूपी ज्ञान के लिए किन-किन मनोवैज्ञानिक प्रणालियों में उपर्युक्त पड़ता है उसका वर्णन किया गया है। विद्यार्थियों को इस सूत्र में अनिवार्य मनोवैज्ञानिक प्रणाली से अध्ययन करना चाहिए जिससे उनकी ज्ञानशक्ति (स्मृण शक्ति) अधिक हो सकती है।

विषय और विषयी के सम्बन्ध के बाद होने वाले प्रथम ग्रहण को विषयी कहते हैं। विषय और विषयी का सन्निपात (सम्बन्ध) होने पर दर्शन

होता है। उसके पश्चात् जो पदार्थ का ग्रहण होता है वह 'अवग्रह' कहलाता है। जैसे चक्षु इन्द्रिय के द्वारा 'यह शुक्ल रूप है' ऐसा ग्रहण करना अवग्रह है। अवग्रह के द्वारा ग्रहण किये गये पदार्थों में उसके विषय में विशेष जानने की इच्छा ईहा कहलाती है। जैसे, 'जो शुक्ल रूप देखा है वह क्या वकपंक्ति है?' इस प्रकार जानने की इच्छा 'ईहा' है। विशेष के निर्णय द्वारा जो यथार्थ ज्ञान होता है उसे 'अवाय' कहते हैं। जैसे-उत्पत्तन निपत्तन और पद्मविक्षेप आदि के द्वारा 'यह वकपंक्ति ही है ध्वजा नहीं है', ऐसा निश्चय होना अवाय है। जानी हुई वस्तु का जिस कारण कालान्तर में विस्मरण नहीं होता उसे 'धारण' कहते हैं। जैसे-यह वही वकपंक्ति है जिसे प्रातःकाल मैंने देखा था, ऐसा जानना धारणा है। सूत्र में इन अवग्रहादिक का उपन्यास क्रम इनके उत्पत्ति क्रम की अपेक्षा किया है। तात्पर्य यह है कि, जिस क्रम से ये ज्ञान उत्पन्न होते हैं उसी क्रम से इनका सूत्र निर्देश किया है।

गोम्मटसार जीवकाण्ड में कहा भी गया है-

अहिमुहणियमियबोहणमाभिणिबोहयमणिंदियजं।

अवग्रह ईहावाया धारणगा होंतिपत्तेयं॥ (306) गो.सा.जीवकाण्ड

इन्द्रिय और अनिन्द्रिय (मन) की सहायता से अभिमुख और नियमित पदार्थ को 'अभिमुख' कहते हैं। जैसे - चक्षु का रूप नियत है इस ही तरह जिस-जिस इन्द्रिय का जो-जो विषय निश्चित है उसको नियमित कहते हैं। इस तरह के पदार्थों का मन अथवा स्पर्शन आदिक पाँच इन्द्रियों की सहायता से जो ज्ञान होता है उसको 'अभिनिबोधिक मतिज्ञान' कहते हैं। इस प्रकार मन और इन्द्रिय रूप सहकारी निमित्तभेद की अपेक्षा से मतिज्ञान के छह भेद हो जाते हैं। इसमें भी प्रत्येक के अवग्रह, ईहा, आवाय, धारणा ये चार-चार भेद हैं। प्रत्येक के चार-चार भेद होते हैं, इसलिए छह को चार से गुण करने पर मतिज्ञान के चौबीस भेद हो जाते हैं।

विस्याणं विसइणं, संजोगाणंतरं हवे णियमा।

अवग्रहणाणं गहिदे, विसेसकंखा हवे ईहा॥ (308)

पदार्थ और इन्द्रियों का योग्य क्षेत्र में अवस्थान रूप सम्बन्ध होने पर सामान्य अवलोकन या निर्विकल्प ग्रहण रूप दर्शन होता है और विशेष आकार आदि को ग्रहण करने वाला अवग्रह ज्ञान होता है। इसके अनन्तर जिस पदार्थ को अवग्रह ने ग्रहण किया है उस ही के किसी विशेष अंश को ग्रहण करने वाला ईहा ज्ञान होता है।

ईहणकरणेण जदा, सुणिष्णओ होदि सो अवाओ दु।  
कालंतरे वि णिष्णदवत्थ्युसुमरणस्स कारणं तुरियं॥ (309)

ईहा ज्ञान के अनन्तर वस्तु के विशेष चिह्नों को देखकर जो उसका विशेष निर्णय होता है उसको 'आवाय' कहते हैं। जैसे - भाषा, वेश विन्यास आदि को देखकर 'यह दक्षिणात्य ही है' इस तरह के निश्चय को आवाय कहते हैं। जिसके द्वारा निर्णीत वस्तु का कालान्तर में भी विस्मरण न हो उसको धारणा ज्ञान कहते हैं।

## सूत्र में निहित अध्ययन-शिक्षा पद्धति

किसी भी विषय के अध्ययन-श्रवण-दर्शन-स्पर्शन में पहले दर्शन (सामान्य अवलोकन, चेतना की प्रवृत्ति) के अनन्तर अवग्रह होता है। उस विषय को निश्चित रूप से जानने के लिये ईहा (जिज्ञासा, विशेष जानने की इच्छा) होती है। पूर्णतः समझने पर आवाय होता है। आवाय होने के बाद ही धारणा होती है अन्यथा केवल कोई विषय को देखने मात्र से या सुनने मात्र से या पढ़ने या रटने मात्र से स्मरण नहीं रहता है। आधुनिक शिक्षा-मनोविज्ञान के अनुसार शिक्षार्थी को बोधगम्य, सरल, रुचिकर, सोदाहरण सहित सैद्धान्तिक तथा प्रायोगिक रूप से समझना चाहिये। विद्यार्थी की जिज्ञासा, शंका, कठिनाईयों का समाधान गुरु द्वारा आत्मियता एवं शान्ति से अवश्य होना चाहिये। अन्यथा विद्यार्थी को विषय समझ में नहीं आएगा जिससे विद्यार्थी रटता रहेगा और भूलता जायेगा (आगे पाठ पीछे सपाट) जिससे तनाव, डिप्रेसन स्ट्रेस, चिन्ता, शंका, भय, फोबिया, नर्वसनेस, घबराहट, एजाम एंगजाइटी, एकाग्रता का अभाव, शिक्षा में अरुचि शिक्षा से जी चुराना, शिक्षा को बोझ रूप में अनुभव करना, घर से भाग जाना से लेकर आत्महत्या का शिकार हो सकता है। शिक्षा की परीक्षा या असफलता उसकी वास्तविक जीवन की ही परीक्षा या असफलता बन सकती है।

## याद रखने के उपाय-

विद्यार्थी को उपर्युक्त सही पद्धति से क्षमता के अनुसार सतत अध्ययन करना चाहिये। परीक्षा के समय कृतिम उपाय से (चाय, कॉफी,

सिगरेट आदि पीकर) रात्रि में अधिक जगकर अध्ययन नहीं करना चाहिए। ऐसी पढ़ाई से तेजगति से मस्तिष्क में सूचनाओं का प्रोसेस नहीं हो पाता है। इससे यह अनुभव होता है कि जैसे कुछ याद नहीं हो रहा है। मस्तिष्क में दो प्रकार की मेमोरी होती है। (1) शार्ट टर्म (2) लॉन्गटर्म मेमोरी। शार्ट टर्म मेमोरी में सीमित क्षमता होने से नई सूचनाएं आने पर पुरानी सूचनाएं (याद किया विषय) गायब हो जाता है। शार्ट टर्म मेमोरी (कम अवधि के याद) को धारणा/दीर्घ अवधि के याद (लॉन्गटर्म मेमोरी) में बदलने का एक मात्र तरीका है विषय को समझ-समझकर बार-बार रिवाइज (फिर-फिर पढ़ना) करना। धारणा एक मस्तिष्कीय प्रक्रिया है जो मस्तिष्क के तन्तुओं के मध्य नए कनेक्शन (सम्बन्ध) बनने एवं विशेष प्रकार के प्रोटीन्स के संश्लेषित होने पर होती है जो कि एक धीमी प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया एक निश्चित गति से अधिक तीव्र गति से नहीं होती है। दीर्घकालीन स्मरण में ही अधिक सूचनाओं (जानकारियाँ विषय) को एकत्र करने की क्षमता होती है। जिससे याद किये हुए विषय अच्छी तरह बहुत समय तक बिना कंफ्युजन मस्तिष्क में रहते हैं। कठिन, गहन, सूक्ष्म, महत्वपूर्ण विषयों का अध्ययन धीरे-धीरे, समझ-समझकर बार-बार पढ़ना चाहिये। और उसे अपनी भाषा में नोट करके याद करते रहना चाहिए परन्तु सरल विषय को भी बार-बार नहीं रटना चाहिये। दिमाग के विचार के अनुसार शरीर तंत्रिकाएं, मांसपेशियाँ काम करती हैं। इसलिये यदि दिमाग में रुचि उत्साह याद, सकारात्मक विचार है तो परिणाम भी तदनुकूल मिलेगा और विपरीत है तो विपरीत मिलेगा।

## मतिज्ञान (मनोविज्ञान) से परे है श्रुतज्ञान

### (अनुभवात्मक विशेषज्ञान)

‘‘मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्’’, अवग्रहेहावायधारणा:’’ आदि सूत्रों से अनेक मनोवैज्ञानिक, शिक्षा मनोवैज्ञानिक, मतिज्ञान के साथ-साथ आनुसंधिक रूप से या प्रकारान्तर से पारिशेष न्याय से श्रुतज्ञान (अनुभवात्मक ज्ञान, हिताहितविवेक, भेद विज्ञान, मतिज्ञान या मनोविज्ञान से उत्पन्न विशेष उत्तरोत्तर ज्ञान) का भी दिग्दर्शन होता है। किसी भी विषय के अवग्रह, ईहा, आवाय, धारणा अथवा मन सम्बन्धी मनन, स्मरण (याद करना), जोड़रूप ज्ञान, तर्क, अनुमान ज्ञान तक सब मतिज्ञान (मनोविज्ञान) ही है। पाँचों इन्द्रिय तथा मनजन्य उपर्युक्त सम्पूर्ण ज्ञान भले लौकिक विषय पुस्तक सम्बन्धी ज्ञान, वैज्ञानिक ज्ञान या वैज्ञानिक यंत्रों से

प्राप्त ज्ञान सब मतिज्ञान ही है। इतना ही नहीं धार्मिक-आध्यात्मिक ग्रन्थों के अध्ययन से प्राप्त ज्ञान या आध्यात्मिक पुरुषों के प्रवचनों से प्राप्त ज्ञान भी तब तक मतिज्ञान रूप में ही रहता है। जब तक कि वह ज्ञान स्वआत्म के अनुभव रूप में परिणमन नहीं कर लेता है। इसलिये कहा है- “स्वात्माभिमुख-संविति, लक्षणं श्रुत-चक्षुषा” अर्थात् स्वआत्मा के संवेदन रूप लक्षण से युक्त श्रुतज्ञान रूपी चक्षु से आत्मा को जो ज्ञान होता है वह ही यथार्थ से आध्यात्मिक दृष्टि श्रुतज्ञान है। व्यवहार की दृष्टि से कहें तो अग्निज्ञान के बाद अग्नि के कुप्रभाव से बचना तथा अग्नि का सदुपयोग करना श्रुतज्ञान है। इसी प्रकार वृक्ष की शाखाओं का पृथ्वी के ऊपर सूर्य की रश्मी की ओर बढ़ना तथा मूलों का पृथ्वी के अन्दर स्थित पानी, खाद, धन-सम्पत्ति आदि की ओर बढ़ना श्रुत ज्ञान है। वृक्ष के द्वारा ताप, पानी आदि सम्बन्धी जो ज्ञान उसकी स्पर्शन इन्द्रिय से होता है वह मतिज्ञान है। उस मतिज्ञान के अनन्तर उसे जो अव्यक्त श्रुतज्ञान (आन्तरिक चेतना से अनुभव) रूपी विशेष ज्ञान, अनुभव ज्ञान होता है वह उसका श्रुतज्ञान है। भले एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव तथा संज्ञी मिथ्यादृष्टियों के मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान भी मिथ्या ही होते हैं तथापि व्यवहार से उसे यहाँ सामान्यतः श्रुतज्ञान कहा जाता है। इसी प्रकार मनुष्य मिथ्यादृष्टि (मोही, मोह-माया से युक्त) के धार्मिक ग्रन्थ, आध्यात्मिक ग्रन्थों का ज्ञान भी मिथ्याज्ञान होता है। इसलिये स्वाध्याय का यथार्थ से अर्थ स्व-आत्मा/स्व-स्वभाव/स्व चैतन्य भाव का अध्ययन, मनन, चिन्तन, चर्चा, जिज्ञासा, लेखन, अनुभव, परिशोधन, प्रवचन, प्रचार-प्रसार आदि है। इसके अतिरिक्त लौकिक या धार्मिक ग्रन्थों के वाचन, से लेकर भाषण आदि तक स्वाध्याय नहीं है भले वह पठन, पढ़ाई, ज्ञापन, विज्ञापन, लोकानुरंजन, ख्याति, पूजा, लाभ आदि कुछ भी हो। केवल मतिज्ञान श्रुतज्ञान के क्षेयोपशम (बुद्धि लब्धि iq, स्मरण शक्ति आदि के बल पर कुछ लौकिक-धार्मिक ग्रन्थों को पढ़ना-पढ़ाना, याद करना, भाषण यथार्थ से न ही स्वाध्याय है, न ही यथार्थ से सच्चज्ञान, न ही स्व-पर विश्वकल्पाणकारी ज्ञान है। यह तो केवल तोता रट्ट यांत्रिक, शाब्दिक जानकारियां हैं।)

### संकीर्ण धर्म आधुनिकता-शिक्षा-विज्ञान के परे है आध्यात्मिक

आध्यात्मिक सर्वोच्च, सार्वभौम, सर्वोदयी-विश्वकल्पाणकारी, सत्य तथ्य-श्रेष्ठ-ज्येष्ठ उपादेय-शिक्षा विज्ञान से होने पर भी संकीर्ण धर्म-आधुनिक आदि के कारण आध्यात्मिकता को अनेक लोग मिथ्या, अंधानुकरण,

पिछड़ापन, कपोल कल्पित मानसिक विभ्रम मानते हैं, उसे नकारते हैं, मिथ्या प्रचार करते हैं और सच्चे आध्यात्मिक महापुरुषों को भी उपरोक्त दुर्गुणों से युक्त मानते हैं। इसके लिये मिथ्या धर्म, द्वागी धर्मध्वजी-धर्मत्मा भी कुछ हद तक उत्तरदायी हैं तथापि सच्चा-अच्छा आध्यात्मिक जन महान् हैं अतः उनके बारे में जानना-मानना-प्रचार-प्रसार के साथ-साथ उनका समर्थन तथा सुरक्षा करना भी मानव का परम पवित्र कर्तव्य है, क्योंकि इससे ही स्व-पर-विश्व का कल्याण संभव है।

**अज्ञानतिमिरव्याप्तिमपाकृत्य यथायथम्**

**जिनशासन महात्म्य प्रकाशः स्यात्प्रभावना॥ (18 र.श्र.पृ.33)**

अज्ञानरूपी अंधकार के विस्तार को दूर कर अपनी शक्ति के अनुसार जिनशासन महात्म्य को प्रकट करना प्रभावना गुण है।

**सूक्ष्म जिनोदितं तत्त्वं हेतुभिर्नैव हन्यते।**

**अज्ञासिद्धं तु तद् ग्राह्यं नान्यथा वादिनो जिनाः॥ आलाप पद्धति**

असत्य प्रतिपादन तब हो सकता है, जब वत्त्व अज्ञानी, रागी-द्वेषी, प्रमादी, भीर अर्थात् प्रतिफलादि की इच्छा रखने वाला हो किन्तु उपरोक्त दोषों से रहित होने पर मिथ्या प्रतिपादन का कोई कारण नहीं रह जाता है। उपरोक्त दोषों के जीतने वाले जिनेन्द्र हैं। उनके द्वारा प्रतिपादित तत्त्व अत्यन्त सूक्ष्म है। उस सिद्धान्त को हेतु द्वारा खण्डन नहीं किया जा सकता है। इसलिये उन्हीं के वचनों की आज्ञा सिद्ध मानकर विश्वास करना चाहिये, क्योंकि जिनेन्द्र अन्यथावादी नहीं होते।

**मोहोदयेण जीवो उवइद्वं पवयणं ण सद्हहदि।**

**सद्हहदि असभ्वावं उवइद्वं अणुवइद्वं वा (39)**

मोह के उदय से जीव उपदिष्ट प्रवचन का श्रद्धान नहीं करता, किन्तु उपदिष्ट अथवा अनुपदिष्ट असमीचीन भाव अर्थात् अतत्व का श्रद्धान करता है। सम्यग्दृष्टि सज्जन गुणग्राही होता है। वह राजहंसवत् मिश्रित क्षीर-नीर से नीर को अलग करके क्षीर को ग्रहण करता है। इसके विपरीत दुर्जन, दुराग्राही जोंक के समान दूध से भरे थन से भी दूध ग्रहण न कर दूषित रक्त को ग्रहण करता है या अपने मत के अनुसार ही वस्तु स्वरूप को जानता है, प्रतिपादित करता है। कहा भी है- दुराग्राही मनुष्य ने जो पक्ष निश्चित कर रखा है वह युक्ति को उसी ओर ले जाना चाहता है किन्तु जो आग्रह रहित

होकर निष्पक्ष दृष्टि से विचार करना चाहता है, वह युक्ति का अनुसरण करके उसके ऊपर विचार करता है और तदनुसार वस्तु स्वरूप का निश्चय करता है। महाकवि कालीदास ने कहा -

**'सन्तः परीक्षान्यतरद् भजन्ते, मूढः पर प्रत्ययनेय बुद्धि'**

जो मूढ़ होते हैं वे पर की बुद्धि के अनुसार चलते हैं। मनुष्य एक अनुकरण प्रिय जीव है परन्तु जिस मनुष्य में सत्य-असत्य का विवेक नहीं होता है वह अन्य असम्यक् प्रवृत्ति का भी अनुकरण कर लेता है। ज्ञान की दृष्टि में जो सत्य है वह मेरा किन्तु अर्थात् जो मेरा है वह सर्वसत्य है, इस प्रकार दृष्टिकोण नहीं रहता है।

मैंने जो इस पुस्तक में कुछ पूर्वाचार्यों के मतों का संकलन किया है उस मत में तो किसी प्रकार की गलती नहीं है। मैंने जानबुझकर किसी भी प्रकार आगम विरुद्ध सिद्धांत का प्रतिपादन नहीं किया है। मेरा किसी से पक्षपात नहीं है और न ही मेरे प्रति कोई पक्षपात करें।

**पक्षपातो न मे वीरे न द्वेष कपिलादिषु।**

**युक्तिमद्वचन यस्य तस्य कार्यःपरिग्रहः॥ (लोकत्व निर्णय)**

मेरा वीर जिनेन्द्र में पक्षपात नहीं है एवं कपिलादि में द्वेष नहीं है। किन्तु जिसका वचन युक्ति युक्त, तर्क संगत, परस्पर अविरोध, यह लोक और परलोक हितकारी है, उन्हीं का वचन ग्रहण करने योग्य है, अन्य का नहीं।

सम्यग्दृष्टि सत्यधर्म को मानने के कारण एवं जानने के कारण यह सत्य धर्म के प्रतिपक्ष मिथ्या धर्म को भी जानता है, किन्तु मानता नहीं है। सम्यग्दृष्टि सम्यग्ज्ञान अर्थात् यथार्थ ज्ञानी होने के कारण वह सम्यग्ज्ञान रूपी कसौटी में धर्म या धर्मात्मा का परीक्षण करके उसके यथार्थ स्वरूप का परिज्ञान करता है-

**यथा चतुभिः कनकं परीक्ष्यते निर्घर्षणाच्छेदनतापनाडनैः।  
तथैव धर्मो विदुषा परीक्ष्यते श्रुतेन शीलेन तपो दया गुणैः॥**

जैसे रत्नपरीक्षक, स्वर्णकार सुवर्ण की परीक्षा के लिये स्वर्ण को कसौटी में घर्षण करता है, छेदन करता है, अनि में तपाता है तथा ताढ़न करता है। उसी प्रकार तत्वज्ञ मनीषी विद्वान्, धर्म की परीक्षा सत्यश्रुतज्ञान से, शील से, तप से, दया गुण से करने के उपरान्त यदि वह धर्म सत्य-परीक्षित होता है तब उसे स्वीकार करता है अन्यथा वह उसे स्वीकार नहीं करता है।

पूर्वाचार्यों ने भी श्रुतज्ञान को प्रधान्य करके निर्मल हृदय से तर्क की कसौटी पर कसकर स्वपर आत्मकल्याण के लिये आगम की रचना की है इसके लिये प्रमाण है। पूज्यवाद स्वामी रचित समाधितन्त्र का तृतीय श्लोक यथा-  
**श्रुतेन लिंगेन यथात्मशक्ति, समाहितान्तःकरणेन सम्यक्।  
समीक्ष्य कैवल्यसुखस्पृहाणां, विविक्त मात्मानमथाभिधास्ये (3)**  
(समाधि तन्त्र पृ.7)

सिद्ध तथा अर्हन्त भगवान् को नमस्कार करने के पश्चात् मैं (श्रुतेन) आगम से, (लिंगेन) हेतु-युक्ति द्वारा (समाहितान्तःकरणेन) अपने वित्त को स्थिर करके, (यथात्मशक्ति) अपनी शक्ति नुसार (सम्यक् समीक्ष्य) अच्छी तरह जानकर (कैवल्यसुखस्पृहाणां) शुद्ध आत्मसुख के इच्छुक जीवों के लिये (विविक्त आत्मानं) शुद्ध आत्म तत्व को (अभिधास्ते) मैं कहूँगा।

## आधुनिक शिक्षा के नाम पर

उदारता, प्रगतिशीलता, वैज्ञानिकता, वैश्विक सोच, विश्व-शान्ति, विश्व-मैत्री, न्याय प्रियता, सादा-जीवन उच्च-विचार, कार्यकारण सम्बन्धों का अनुसन्धान, व्यापकता, सहिष्णुता, अहिंसा, पर्यावरण सुरक्षा, समय-परिस्थिति के अनुसार समायोजन आदि ही यथार्थ से आधुनिकता है। एतदनुकूल विचार-व्यवहार का प्रशिक्षण देने वाली पद्धति ही यथार्थ से आधुनिक शिक्षा है। जिससे शारीरिक-मानसिक-नैतिक-सामूहिक-आध्यात्मिक विकास हो वह यथार्थ से शिक्षा है। अन्यथा व्यक्ति-समाज-राष्ट्र-विश्व का समुचित विकास नहीं हो पायेगा। जो भी ऐसी आधुनिकता एवं शिक्षा से वज्ज्वत होगा वह पिछड़ा हो जाएगा। प्रकारान्तर से संक्षिप्त कहें तो समग्र स्वास्थ्य एवं विकास (कम से कम लौकिक दृष्टि से) की पर्याय या कारण ही आधुनिकता तथा शिक्षा है। तथापि अधिकांश व्यक्ति (विशेषतः भारतीय) आधुनिकता-शिक्षा के नाम पर/वहाने स्वच्छन्द वृत्ति, फैशन, व्यसन, अश्लीलता, अनैतिक-यौन संबंध अहङ्कार, आड़म्बर, नास्तिकता, अशालीनता, अनम्रता, पाश्चात्य अपसंस्कृति का अन्धानुकरण आदि ही आधुनिकता-शिक्षा मनमाना रूप में मानकर आध्यात्मिकता तथा आध्यात्मिक महापुरुषों तक को मिथ्या, ढोंगी, पाखण्डी, पिछड़ापन, विभ्रम मानकर उनका तिरस्कार करते हैं, उनके विरोध में प्रचार-प्रसार करते हैं। ऐसा ही कुछ इतिहास, राजनीति, कानून, सामाजिकता, रीत-रिवाज, परम्परा, व्यवस्था के नाम

पर भी होता रहता है। इसलिए तो अन्ध-आधुनिकता-शिक्षा के कारण तनाव, अपव्यय, वैचारिक-सांस्कृतिक-व्यवहारिक अपसंस्कृति, पर्यावरण समस्या, पारिवारिक-सामाजिक विघटन, कलह, एकाकीपन, शारीरिक-मानसिक रोग से लेकर आत्महत्या हो रही है। इसलिए तो वर्तमान के युग को तनाव, आपा-धापी के युग कहा जाता है।

## विज्ञान के नाम पर

**वस्तुतः** प्रकृति का क्रमबद्ध व्यवस्थित शोध-बोध-खोज-आविष्कार ही विज्ञान है। इसलिए विज्ञान एवं वैज्ञानिक सनम्र सत्यग्राही, प्रगतिशील, उदार, सहिष्णु संकीर्णता-पूर्वग्रिह से रहित, अहिंसा, पर्यावरण सुरक्षा, विश्वमैत्री, विश्वशान्ति, विश्व सुरक्षा के पक्षधर है तथा उसके लिए प्रयत्नशील हैं। इसलिए वैज्ञानिक एवं विज्ञान के कारण अनेक मिथ्या-धारणाएँ-परम्परा-नीति-नियम-कानून-राजनीति-खान-पान-रहन-सहन-धर्मान्धता-संकीर्णता-अन्धविश्वास-क्रूरता-हिंसा-मिथ्याभय-मिथ्याभ्रम-शारीरिक-मानसिक रोग दूर हुए हैं और हो रहे हैं तथा दूर होने की संभावनाएँ भी हैं। इस दृष्टि से विज्ञान पृथ्वी के लिए, प्राणी जगत के लिए, मानव समाज के लिए, पर्यावरण सुरक्षा के लिए भी कुछ दृष्टि से हितकारी होने से सच्चा-अच्छा-ग्रहणीय-प्रशंसनीय है। अतएव मैं विद्यार्थी जीवन से विज्ञान की विभिन्न शाखाओं का अध्ययन-मनन-चिन्तन के साथ-साथ शोधपूर्ण-तुलनात्मक समीक्षात्मक पद्धति से 40-50 ग्रन्थों की रचना की है, 11 राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी के आयोजन हो गये हैं, विज्ञान के प्रोफेसर्स आदि को भी बहुत वर्षों से पढ़ा रहा हूँ। यू.जी.सी. द्वारा मेरे साहित्यों को मान्यता प्राप्त होने के कारण अभी तक 10 प्रदेशों के 23 विश्वविद्यालयों में “आ. कनकनन्दी साहित्य कक्षों” की स्थापना, जैन-अजैनों द्वारा भी शोधकार्य हो रहे हैं। मैं विज्ञान से बहुत कुछ सीखा हूँ, सीख रहा हूँ अतएव मैं विज्ञान के विद्यार्थी के रूप से अच्छा लाभ प्राप्त कर रहा हूँ। यह सब होते हुए भी विज्ञान परम सत्य को अभी तक प्राप्त नहीं किया है अर्थात् विज्ञान भले सत्य के मार्ग पर होते हुए भी परम सत्य तक नहीं पहुँचा है। इसलिए न्यूटन, आइस्टीन से लेकर अभी तक के प्रायः सब महान् वैज्ञानिक मानते हैं कि-”हम तो ज्ञानरूपी समुद्र के किनारों में के कङ्कर-पत्थर-सींप चुन रहे हैं किन्तु समुद्र में डुबकी लगाकर मोती प्राप्त नहीं कर पाये हैं या प्रकृति की अनन्त पदार्थों में से पहला पर्दा उठाने के लिए कोशिश कर रहे हैं।” विज्ञान-वैज्ञानिकों की ऐसी शोधपूर्ण सनम्र सत्यग्राही

प्रकृति-प्रवृत्ति के कारण कुछ शतक के आधुनिक विज्ञान अपने अनेक कमियों-मलतियों-संकीर्णताओं-पूर्वधारणाओं-परिकल्पनाओं-प्रणालियों-यंत्रों-यान-वाहनों आदि में परिवर्तन, सुधार, विकास हुए हैं, हो रहे हैं और होते रहेंगे। इस सम्बन्धी विशेष परिज्ञान के लिए मेरी “भारतीय तथ्य (जैन तथ्य) जो आधुनिक विज्ञान से परे (ज्ञान धारा 15)” कृतियों का अध्ययन करें। तथापि कुछ संक्षिप्त वर्णन निम्न में कर रहा हूँ।

विज्ञान पहले करोड़ों-अरबों गेलेक्सी, सूर्य, ग्रह, उपग्रहों के बारे में नहीं जानता था अतः नहीं मानता था, अभी जानने लगा है अतः मानने लगा है। इसी प्रकार प्रकाश को केवल ऊर्जा मानता था, मैटर (Mass) नहीं, पृथ्वी-चन्द्र आदि ग्रह-उपग्रहों को गतिशील मानता था, सूर्य को स्थिर, अणु को अविभाज्य, प्रकाश की गति को परम एवं सीधी गति वाला मानता था, जो अभी परिवर्तित हुआ और हो रहा है। ऐसा ही Black Hole, Dark-Matter, Dark-Energy, M. Theory, Big-Bang Theory आदि के बारे पहले नहीं जानता था और अभी तक भी पूर्ण ज्ञान नहीं है। इससे भी आगे जीव का स्वरूप-उसकी उत्पत्ति-मृत्यु के बाद उसकी स्थिति के बारे में यथार्थ से अभी भी कोई विशेष सच्चा ज्ञान नहीं है। जीव की उत्पत्ति कब, क्यों, कैसे, किससे हुई, क्रम विकास कैसे हुआ, क्रम विकास की पूर्णता कब और कहाँ होती है आदि का सत्य-तथ्य पूर्ण ज्ञान अभी तक न विज्ञान को है, न ही मनोविज्ञान को तथा विदेशों के दर्शन, देश-विदेशों के राजनीति-कानून-संविधान आदि में इस सम्बन्धी सच्चा परिज्ञान है। ऐसी परिस्थिति में विज्ञान से लेकर संविधान तक परम सत्य नहीं है तो उन्हें परम सत्य स्वरूप आध्यात्मिक विज्ञान के बारे में किसी भी प्रकार गलत विचार या टिप्पणी करने का कोई अधिकार नहीं है। जिस वैज्ञानिक डार्विन के पानी (समुद्र) से जीवोत्पत्ति, क्रमविकास वाद, प्राकृतिक चयन, संघर्षवाद, शक्ति शाली के जीवित रहना तथा वंशवृद्धि, बन्दर से मानव का विकास आदि का खण्डन स्वयं वैज्ञानिकों ने पहले से ही करते आ रहे हैं और अभी भी कर रहे हैं। 16 देशों के 40 वैज्ञानिकों ने 1994 से 10 वर्षों तक इथोपिया से लेकर अमेरिका तथा जापान तक गहन अनुसंधान से सिद्ध किया है कि बन्दर (चिंपाजी) से मानव का विकास नहीं हुआ है। उन्होंने 32 लाख वर्ष पूर्व के, 42 लाख वर्ष पूर्व के, 57 लाख वर्ष पूर्व के, 60 लाख वर्ष पूर्व के जीवास्मों (कङ्काल) के 10 वर्षों के अनुसन्धानों ने 100 वर्ष की धारणा (चिंपाजी से मानव का विकास) को गलत सिद्ध कर दिया है।

(Discovery, National Geographic आदि वैज्ञानिक चैनल के आधार से) एतदर्थं ऐसे वैज्ञानिकों के लिए शुभाशीर्वाद एवं शुभकामनायें हैं।

### “आहान हो! भारतीय

ऐसी परिस्थितियों में भारतीयों को तो और भी अधिक सनम्र सत्यग्राही, सत्साहसी, दृढ़संकल्पी, प्रबल पुरुषार्थी होकर विज्ञान, शिक्षा, राजनीति, कानून, स्वास्थ्य, स्वच्छता, चिकित्सा, मनोविज्ञान, पर्यावरण सुरक्षा, अहिंसा, सदाचार, नैतिकाचार, पारदर्शिता, विश्वमैत्री, विश्वशान्ति आदि के लिए शोध-बोध-खोज-आविष्कार-प्रचार-प्रसार-प्रायोगिककरण करना चाहिए। क्योंकि प्राचीन भारतीय ग्रन्थों-परम्परा-संस्कृति-सभ्यता-रीति-रिवाज-भोजन-पूजा-पाठ-पर्व-प्रवचन आदि में जो आध्यात्मिक ज्ञान-विज्ञान है वह सब प्रायः अन्य देशों में नहीं पाये जाते हैं। तथापि भारतवासी न ही विशेष नये श्रेष्ठ-ज्येष्ठ खोज आदि कर पा रहे हैं न ही प्राचीन स्व-आध्यात्मिक आदि को अपना रहे हैं। इतना ही नहीं पाश्चात्य सच्ची-अच्छी संस्कृति आदि को तो कम अपनाते हैं अपितु अहितकारी अप-संस्कृति को फैशन रूप से स्वयं को आधुनिक, शिक्षित, संग्रान्त, प्रगतिशील रूप में दिखावा करने के लिए अन्धानुकरण रूप में अपनाते हैं। ऐसे अधिकांश व्यक्ति विज्ञान, आधुनिकता आदि कुछ विशेष नहीं जानते हैं तथापि उन्हें आध्यात्मिक-संस्कृति आदि को ढोंग, पिछड़ापन आदि कहने के फैशन-व्यसन की भी खोटी आदत रहती है।

मनोविज्ञानानुसार एक सामान्य आदमी के मन में 24 घण्टे में प्रायः 60 हजार विचार आते हैं जिनमें से 95% से 98% विचारों की पुनरावृत्ति होती है। पूरे 24 घण्टों में 2 से 5% नए विचारों का आना व्यक्तित्व विकास के लिए पर्याप्त नहीं है। इसलिए तो विश्वगुरु भारत के नागरिकों में वैज्ञानिक युग में भी अच्छे प्रगतिशील विचार न आने के कारण भारत में केवल आर्थिक दरिद्रता नहीं है अपितु वैचारिक-वाचनिक-व्यवहारिक-नैतिक-शैक्षणिक-राजनैतिक-कानूनी-भोजन-वेश-भूषा-भाषा आदि की भी दरिद्रता बढ़ रही है। भले कुछ दृष्टि से साक्षरता, भौतिकता आदि बढ़ी है परन्तु उपरोक्त दरिद्रता की संख्या-मात्रा के अनुपात से तुच्छ है। यदि भारत के लोग सचमुच शिक्षित, प्रगतिशील, आधुनिक, वैज्ञानिक, प्रतिभा सम्पन्न हैं तो वे भारत को भ्रष्टाचार-फैशन-व्यसन-उत्थ्रुंखल-आलस्य-अस्वच्छता-हिंसा-आतङ्कवाद-भेद-भाव, धनी-गरीब आदि बुराईयों से मुक्त करके दिखाएँ नहीं तो कम से

कम स्वयं को मुक्त करके दिखाएँ।

विनोबा भावे के अनुसार लोग बोलते हैं टन भर, सुनते हैं मन भर, करते नहीं हैं कण भर की प्रवृत्ति को त्याग करना होगा। उपरोक्त कमियाँ केवल सामान्य नागरिकों में ही नहीं हैं अपितु उच्च शिक्षित, उच्च सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि वालों, दिखावा करने वाले सामान्य धर्मावलम्बियों से लेकर धर्मचार्य तक में अधिक पायी जाती है। इन सब कमियों को दूर करने के लिए चाहिए स्वाध्याय। एतदर्थं इस कृति का सृजन किया गया है। इस सृजन कार्य में सहयोगी मुनिश्री सुविज्ञ सागरजी, मुनिश्री आध्यात्मनन्दीजी, ब्र.सोहनलाल का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन्हें मेरा यथाक्रम प्रतिनमोऽस्तु' शुभाशीर्वाद है!

इस कृति के स्वाध्याय-मनन-अनुकरण से स्वाध्यायी स्व-पर विश्वकल्याण करते हुए ज्ञानानन्द स्वरूप आत्मोपलब्धि करें ऐसी पवित्र भावनाओं के साथ- आध्यात्मिकता के सेवक

आ. कनकनन्दी

रामगढ़ - दूंगरपुर (राज.)

दि : 14-2-2010 (रात्रि 11.15)

## अध्याय - 1

प्राचीन ग्रंथों के अध्ययन की आवश्यकता क्यों?

### विज्ञान पूर्णतः मानने योग्य क्यों नहीं?

(है भी, नहीं भी) - आचार्य कनकनन्दी

मैं विद्यार्थी अवस्था से ही विज्ञान का विद्यार्थी होने के साथ-साथ मेरी बुद्धि-रुचि-पद्धति भी वैज्ञानिक एवं सन्मर्प सत्याग्राही है। इतना ही नहीं मैं वैज्ञानिक पद्धति से, गणितीय पद्धति से धर्म, दर्शन आदि का भी अध्ययन-अध्यापन-लेखन-प्रवचन-शिविर-संगोष्ठी आदि का भी सम्पादन प्रायः 30 वर्षों से कर रहा हूँ। 20-22 वर्षों से अधिकतर मेरा व्यक्तिगत अध्ययन तो आधुनिक विज्ञान की विभिन्न शाखाओं (भौतिक, रसायन, मनोविज्ञान की विभिन्न शाखाएँ, वनस्पति-प्राणी विज्ञान, ब्रह्माण्डीय विज्ञान, पर्यावरण विज्ञान, सापेक्ष सिद्धान्त आदि-आदि) के साथ-साथ विभिन्न विषयों के वैज्ञानिक समीक्षात्मक साहित्यों के अध्ययन, अध्यापन, लेखन कर रहा हूँ। सन् 2002 से “भारतीय तथ्य (जैन तथ्य) जो आधुनिक विज्ञान से परे” (ज्ञानधारा) का प्रारम्भ मेरे कुछ वैज्ञानिक, प्रोफेसर्स शिष्यों के अनुरोध से प्रारम्भ किया हूँ। जिसके अभी तक 13 ग्रन्थों का प्रकाशन हो गए हैं। इन सब वर्णनों से मैं यह सिद्ध करना चाहता हूँ कि मैं (1) विज्ञान को बहुअंश में जानता हूँ-मानता हूँ और अपनाता हूँ (2) विज्ञान में अनेक कमियाँ/अपूर्णता होने से उसे बहुअंश में नहीं मानता हूँ। इस सम्बन्धी विशेष वर्णन मैंने मेरी ‘ज्ञानधारा’ की 13 पुस्तकों में किया हूँ और करने वाला हूँ।

इन सब साहित्यों को मैं विज्ञान के प्रोफेसर्स, वैज्ञानिकों को पढ़ाता हूँ, भारत के 10 प्रदेशों के 23 विश्वविद्यालयों में “आ.कनकनन्दी साहित्य कक्षों” में स्थापन हुए हैं और भी होते जाएँगे, विभिन्न विषयों पर दि., श्वे.जैन, हिन्दू, मुसलमान विद्यार्थी से लेकर वैज्ञानिक शोध कर रहे हैं। वेबसाइटों में भी मेरे साहित्य उपलब्ध है।

### I-विज्ञान पूर्णतः मानने योग्य भी है-

विज्ञान द्वारा शोध-बोध-मात्य पर्यावरण सुरक्षा, शाकाहार, धूम्रपान निषेध, स्वच्छता, पशु-पक्षी-वनस्पति की हत्या नहीं करना, पानी छानकर पीना, वैक्ष-वनस्पति को जीव मानना, सापेक्ष सिद्धान्त, शरीर-अशुद्ध-

मोजन-पानी-दूध-दही-गन्दगी-मांस-मल-शौच-थूक आदि में लाखों करोड़ों सूक्ष्म जीवों की मान्यता; परमाणु-विद्युत्-वायु-गैस-शब्द-ठण्डा-गरम (ताप)-प्रकाश से लेकर शरीर तथा उसके सम्पूर्ण सूक्ष्म-स्थूल अवयवों को भौतिक-रसायन तत्व मानना; विश्व को ईश्वर द्वारा निर्मित, नियन्त्रित, विनाश नहीं मानना, विश्व में करोड़ों-अखें, सूर्य-चन्द्र-ग्रह-उपग्रह-मानना आदि पूर्णतः सत्य होने से पूर्णतः मानने योग्य है।

विश्व में अनेक आयाम, एकीकृत सिद्धान्त (M.Theory), विश्व में अन्य ग्रहों में जीवों की उपलब्धि आदि के बारे में विज्ञान शोध-बोध-खोज-कल्पना-अनुमान कर रहा है तथापि यह भी सत्य है अतः इसे भी मानने योग्य है। इसी प्रकार विज्ञान के जीन (D.N.A., R.N.A.), अहिंसात्मक चिकित्सा, प्राकृतिक उर्जा के स्रोत, सह अस्तित्व, प्राकृतिक सादा जीवन उच्च-उदार-सहिष्णु-विश्वशान्ति-विश्वमैत्री आदि मानव समाज एवं विश्व कल्याण के कार्य भी मानने योग्य हैं तथा प्रशंसनीय-अनुकरणीय-धन्यवाद योग्य है। इसी प्रकार विज्ञान के जितने भी सत्य-तथ्यपूर्ण सिद्धान्त हों या जीवों के लिए हितकारी उपकरण अथवा विचार-कल्पना मानने योग्य है।

उपरोक्त विज्ञान के सामने योग्य सिद्धान्तादि के साथ-साथ इसके आनुसङ्गिक/सहउत्पादक/प्रभावित/प्रेरित/निर्मित/शिक्षा प्राप्त निम्नोक्त गुण धर्म-सच्चाई-अच्छाई आदि भी मानने योग्य है, अनुकरणीय है, अभिनन्दनीय है। विज्ञान के कारण कुछ दृष्टि से अन्धविश्वास, संकीर्णता, कटूरता, कूरता, हिंसा, अन्याय, अत्याचार, शोषण, अनुदारता, अन्नाभाव, दरिद्रता, विपन्नता, रोग, संकट, दुःख, प्राकृतिक प्रकोप-विपदायें कम हुए हैं, हो रहे हैं और होंगे तथा सच्चा-अच्छा आत्मविश्वास-ज्ञान-आचरण-उदारता-सहिष्णुता-दया-सेवा-परोपकार, सहयोग, सहअस्तित्व, उन्नति, प्रगति, सुख, शान्ति, सन्मर्पसत्यग्राहिता, प्रगतिशीलता, जिज्ञासा, शोध-बोध-खोज-आविष्कार-निर्माण हुए हैं, हो रहे हैं और होंगे वे सब मानने तथा अपनाने योग्य हैं। इस प्रकार और भी अनेक सच्ची-अच्छी उपलब्धियाँ विज्ञान की हैं और होने वाली हैं वे सब भी जानने-मानने-अपनाने योग्य हैं।

**परमाणु शस्त्र मुक्त बने विश्व:** अमरीकी वैज्ञानिकों का आहान-एजेंसी वार्षिकटन, 29 जनवरी। अमरीकी वैज्ञानिकों ने विश्व को परमाणु हथियारों से मुक्त करने की तुरन्त आवश्यकता व्यक्त करते हुए इस लक्ष्य को 2045 तक हर हाल में प्राप्त करने का आहान किया है। वैज्ञानिकों ने इस काम में अपनी मदद की भी पेशकश की है।

## हिंदू धर्म में जीव - नष्ट करो हथियार-

अमरीकी वैज्ञानिकों ने महासङ्ग (एफ ए एस) ने बराक ओबामा प्रशासन सहित दुनिया के परमाणु शक्ति सम्पन्न सभी देशों को दुनिया में परमाणु हथियारों की तेज होड़ के विरुद्ध आगाह करते हुए कहा है कि 11 सितम्बर 2001 के बाद वैश्विक सुरक्षा परिदृश्य में अमरीका और बाकी दुनिया के लिए सभी परमाणु हथियारों को नष्ट कर देना सर्वोच्च प्राथमिकता होनी चाहिए। एफ ए एस ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि इस लक्ष्य को 2045 तक प्राप्त कर लिया जाए तो सबसे अच्छा होगा क्योंकि वर्ष 2045 विश्व में पहले परमाणु बम के इस्तेमाल से हुए विनाश की सौ वीं वर्ष गाँठ होगा। वैज्ञानिकों का मानना है कि परमाणु हथियारों का प्रयोग विश्व की ऐसी दुर्लभ घटना थी जिसने विश्व को दो युगों में बांट दिया। एफ ए एस की स्थापना 1945 में उन वैज्ञानिकों ने की थी जो प्रथम परमाणु बम के निर्माण की मैनहट्टन परियोजना में शामिल थे। इसके सदस्य वैज्ञानिकों को अमरीका की नीति निर्धारण प्रक्रिया में काफी अहम स्थान हासिल है। वर्तमान में प्रायोगिक रूप से प्रायः वैज्ञानिक लोग सबसे अच्छे होते हैं। यह सब होते हुए भी विज्ञान में अनेक सैद्धान्तिक कमियाँ हैं जो मानने योग्य नहीं हैं। इससे भी अधिक अमान्य तथा बहिष्कार योग्य है वैज्ञानिक के अनेक उपकरणों, अस्त्र-शस्त्र, विषाक्त रसायन, गैस-खाद (उर्वरक) से लेकर विविध प्रकार के बम तक। सविस्तार वर्णन निम्नोक्त है :-

## II - अमान्य-योग्य विज्ञान

(A) अनुभव जन्य सत्य में- मेरी सहज बुद्धि एवं प्रवृत्ति किसी भी विषय को अन्धविश्वास, रूढिवादिता, परम्परा, संकीर्णता, हठग्राहिता, कोरा अनुमान, पूर्व स्व-पर मिथ्याधारणा, संकीर्ण धर्मान्धिता, कटूरता से नहीं मानने, इतना ही नहीं इसके साथ-साथ ही पढ़े-सुने-देखे हुए भी बिना परीक्षण-निरीक्षण किये स्वीकार करने की प्रवृत्ति नहीं होने के कारण मैं बाल विद्यार्थी अवस्था से ही स्वप्न-शकुन-अङ्गस्फुरण, सामुद्रिक शास्त्र (हस्तरेखादि ज्ञान), ज्योतिष, भूत-प्रेत, मंत्र, तंत्र, टोना, टोटका, धर्म के नाम पर मिथ्या-हिंसात्मक बाह्य आडम्बर पूर्ण क्रिया-काण्ड, परम्परा, भेद-भाव, पक्षपात आदि को नहीं मानता था और अभी भी इनमें से कुछ को नहीं मानता हूँ। तथापि मेरे दीर्घ 40-50 वर्षों के जीवन काल में जो मैंने हजारों स्वप्न, शकुन, अङ्गस्फुरण,

छाया, पुरुष दर्शन, पूर्वभास, सामुद्रिक लक्षण देखा, अनुभव किया तथा उसके परिणामों को प्रायोगिक रूप से सत्य पाया और पा रहा हूँ उसके आधार पर मैंने अनुभव किया है कि सदा-सर्वदा-सर्वत्र सबके स्वप्न, शकुन, अङ्गस्फुरण, पूर्वभास, सामुद्रिक लक्षण मिथ्या नहीं होते हैं। जब मैंने मेरे अनुभव से अनेको बार सत्य पाया तथा प्राचीन दि., श्वे. जैन ग्रंथों, वैदिक ग्रंथों, बौद्ध ग्रंथों, आयुर्वेद ग्रंथों, संहिता ग्रंथों आदि में भी उसी प्रकार वर्णन मिला तब मेरी सहज प्रवृत्ति सनम्र सत्यग्राही एवं उदार, प्रगतिशील होने के कारण स्वप्न आदि को मानने लगा। तब इन सब सम्बन्धी देश-विदेशों के विविध साहित्यों एवं उदाहरणों के अध्ययन, संकलन, सम्पादन से (1) स्वप्न-विज्ञान (2) भविष्यफल विज्ञान (शकुन विज्ञान), (3) सर्वाङ्ग विज्ञान की वैज्ञानिक गवेषणा की रचना की। मेरे इन व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर मैं मानता हूँ कि विज्ञान की सर्वोच्च विद्या/शाखा स्वरूप भौतिक व रसायन विज्ञान में इन सबका शोध-बोध-मान्यता-वर्णन नहीं है। यदि कोई इन सबको अनुभव से भी हजारों बार सत्य पाया और प्राचीन महान् वैज्ञानिकों ने वर्णन भी किया है तो भी आधुनिक भौतिक-रसायन विज्ञान/वैज्ञानिक इसे भौतिक-रसायन रूप से या यन्त्रों से सिद्ध करने के, दिखाने के ही पक्षधर होते हैं तथा नहीं मानते हैं। इस प्रकार होने का कारण है कि भौतिक-रसायन विज्ञान तथा यन्त्र स्वयं अनुभव शून्य/चेतना रहित (ज्ञान-विश्वास-प्रतीती-अनुभूति-संवेदना रहित) जड़ (निर्जीव, अचेतन, संवेदना रहित) हैं। इसलिए भौतिक-रसायन विज्ञान एवं यंत्र तर्फ़ केवल इसे ही सत्य मानने वाले वैज्ञानिक तक में चेतना सम्बन्धी यथार्थ सत्य-तथ्य पूर्ण अनुभावात्मक ज्ञान नहीं है। अतएव इनके द्वारा मान्य चेतना/अनुभव (जीव, आत्मा, परमात्मा, भगवान्, पुनर्जन्म, जीव सृष्टि, जीव के क्रम विकासवाद, जन्म-मरण, सुख-दुःख आदि) सम्बन्धी सिद्धान्त-धारणा पूर्णतः मानने योग्य नहीं है। वे ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण सत्य-तथ्य-घटना-क्रिया-प्रतिक्रिया-परिवर्तन आदि को निर्जीव-जड़मय भौतिक-रसायन तत्त्व ही मानते हैं। इनमें अमूर्तिक, चेतन सत्य-तथ्य-द्रव्यों को जानने मानने की योग्यता-क्षमता ही नहीं है तो वे उसे कैसे जानेंगे; मानेंगे।

प्राणी विज्ञान (मानव-नृवंश विज्ञान) मनोविज्ञान भी स्वप्न आदि के बारे में सही नहीं जानने के साथ-साथ स्वप्न सम्बन्धी प्राचीन सत्य सिद्धान्त को भी गलत, विभ्रम, अन्धविश्वास तक मानते हैं। कुछ वैज्ञानिक स्वप्न को

काम वासना की दमित इच्छा की अभिव्यक्ति मानते हैं तो कुछ सचेत अवस्था में विचार किये गए संस्कार जो अवचेतन मन में सुप्त रहते हैं उसकी अभिव्यक्ति मानते हैं तो कुछ बाहरी उत्तेजनाओं के प्रभाव मानते हैं तो कुछ और स्वप्न को सत्य भी मानते हैं। इस सब दृष्टियों से विचार करने पर सिद्ध होता है कि शुद्ध परम चेतना/अनुभव के स्तर पर प्राणी विज्ञान एवं मनोविज्ञान भी पूर्णतः सत्य नहीं है अतः पूर्णतः मानने योग्य नहीं है। इसके साथ-साथ वे भी अन्तत्वगत्वा जीव को भौतिक-रसायानिक तत्त्व ही मानते हैं तथा आत्मस्वरूप को न ही जानते हैं और न ही मानते हैं। मनोविज्ञान मन की चेतना तक मानता है ता परामनोविज्ञान मन के परे भी मानता है। तथापि अधिकांश वैज्ञानिक विज्ञान परामनोविज्ञान के मान्य पराचेतना को भी नहीं मानते हैं; इसके भौतिक प्रमाण की अनिवार्यता मानते हैं। क्या जो आँख, कान, चर्म, नाक, जीभ, मन-मस्तिष्क यन्त्रादि द्वारा जाना जाता है। वह ही सत्य है परन्तु जिस चेतना/अनुभव के द्वारा ये सब अपना-अपना काम करते हैं वह असत्य है? जिस प्रकार चश्मा स्वयं नहीं देखता है परन्तु चश्मा देखने के लिए माध्यम है उसी प्रकार आँख से लेकर यंत्र तक सब माध्यम है, सहकारी कारण है परन्तु प्रमुख कर्ता; मुख्य कारण तो चेतना (ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यमय आत्माजीव, चेतना शक्ति) है। यदि शब्द में चश्मा लगा दिया जाएगा तो क्या वह शब्द या चश्मा देख सकते हैं? नहीं कदापि नहीं। ऐसा ही चेतना/ज्ञान-उपयोगमय अमूर्तिक आत्मा के बिना आँख से लेकर यंत्र तक स्वयं कुछ अनुभव नहीं कर सकते हैं। इस सब दृष्टि से आधुनिक विज्ञान स्थूल, भौतिक, जड़मय (चेतना शून्य शब्द) है। इसे “सत्यं शिवं सुन्दरम्” व्यापक, सार्वभौम, परम, जीवन्त बनने के लिए चेतना (आत्मा) के शोध-बोध-खोज-आविष्कार-उपलब्धि-अनुभव करना अनिवार्य है। अन्यथा केवल भौतिक दृष्टि वाला विज्ञान की सर्वउपलब्धि असत्यं-अशिवं (अस्थायी, अकल्याणकारी, विनाशक) असुन्दरम् (दुःखदायी, नीरस) ही रहेगी। कुछ वैज्ञानिकों की दृष्टि चेतना की ओर जाती है तथापि यह दृष्टि भौतिक की अपेक्षा आध्यात्मिक (चैतन्य, आत्मा) कम है तथा प्रयास-संख्या-उपलब्धि भी कम है भले प्रायः वैज्ञानिकों में नैतिकता, उदारता, दया, परोपकार की भावना-प्रवृत्ति बहुत है, प्रशंसनीय, अनुकरणीय है।

## II विज्ञान की सैद्धान्तिक कमियाँ

विज्ञान क्रमबद्ध, व्यवस्थित रूप से सत्य की ओर तीव्ररूप से गतिशील होते हुए भी परम सत्य पर नहीं पहुँचा है। इसे प्रायः प्रत्येक वैज्ञानिक स्वेच्छा से अनुभव करते हैं, स्वीकार करते हैं, लिखते हैं तथा बोलते भी हैं और इससे उन्हें संकोच, अपमान आदि के अनुभव के परिवर्तन में गौरव-प्रसन्नता का अनुभव होता है। इन सब कारणों से भी वैज्ञानिक-विज्ञान उत्तरोत्तर नये-नये शोध-बोध-खोज-आविष्कार-उपलब्धि करते जा रहे हैं तथा वे प्रायः धर्म-पंथ-मत-राष्ट्र-भाषा-सभ्यता-संस्कृति-परम्परा-भोजन-न्याय-राजनीति-शिक्षा आदि में उत्तरोत्तर मान्यता सम्मान प्राप्त करते जा रहे हैं। तथापि विज्ञान में निम्नलिखित कमियाँ या अनुत्तरीत प्रश्न हैं-

1. हमारा ब्रह्माण्ड कितना बड़ा है? इसका आकार-प्रकार क्या है?
2. समय क्या है और कब से है? डार्क मेटर (श्याम पदार्थ) और डार्क एनेर्जी (श्याम ऊर्जा) क्या है?
3. यह ब्रह्माण्ड निश्चित रूप से कब से है और कब तक रहेगा?
4. ब्रह्माण्ड में वह पदार्थ (Matter) कहाँ है जिससे हम बने हैं?
5. विं बोंग में किस प्रकार पदार्थ पैदा हुआ?
6. पृथ्वी पर जीवन का प्रारम्भ किस प्रकार हुआ?
7. ब्रह्माण्ड के इस पृथ्वी ग्रह पर जीवन है या अन्यत्र भी जीवन है?
8. क्या प्रकाश की गति परम एवं अपरिवर्तनशील है?  
क्या प्रकाश से तेज गति संभव है?
9. सबसे पहले आकाश गंगाओं का निर्माण कैसे हुआ?
10. महा विस्फोट निश्चित रूप से कौन से समय में हुआ?
11. महा विस्फोट से पहले और कितने बार महा विस्फोट हुआ?
12. ब्रह्माण्ड का अन्तिम सिद्धान्त क्या है? क्या गणित के माध्यम से ब्रह्माण्ड को समझा जा सकता है?
13. क्या हम ब्रह्माण्ड के उच्च आयाम में जीते हैं?
14. प्रकृति के आधार भूत बल क्या हैं?
15. क्या हमारे ब्रह्माण्ड के अलावा और भी कोई ब्रह्माण्ड है? और कितने ब्रह्माण्ड हैं?
16. जैसे-जैसे हम अन्तरिक्ष में भीतर जायेंगे क्या और अन्तरिक्ष मिलेंगे?
17. जीव पृथ्वी पर कहाँ से आये हैं? कब आये हैं? कैसे आये हैं? मृत्यु के बाद जीव का क्या होता है? और वह कहाँ जाता है? तथा कैसे जाता है?

18. पृथ्वी पर मनुष्य का भविष्य क्या है?
19. प्रकृति के आधार पर भूत पदार्थ क्या है?
20. क्या दिमाग और पदार्थ का आपस में किसी तरह संबंध है।
21. हम अपने आस-पास के विश्व का अनुभव कैसे करते हैं? हम उसे अपनी स्मृति में कैसे रखते हैं और कैसे हम उसे भावनाओं से भरते हैं?
22. दिमाग का होना और उसके काम के तरीके में करिश्माई बात होना कैसे सम्भव है?
23. आखिर बुद्धि क्या है? बुद्धि और मस्तिष्क में क्या संबंध है?
24. गामा किरणों का विस्फोट कैसे और क्यों होता है?
25. कासार्स क्यों धूम रहे हैं?
26. जब कोई तारा नष्ट होता है तो क्या होता है?  
(आहा जिंदगी-पंकज जोशी-प्रख्यात वैज्ञानिक)
27. ब्रह्माण्ड में जीवन नहीं था तो फिर उसकी उत्पत्ति कैसे सम्भव है?
28. निर्जीव (जड़-भौतिक तत्त्व) से चतना शील जीव की उत्पत्ति कैसे संभव है?
29. अमूर्तिक चेतनाशील जीव का वजन कैसे सम्भव है?
30. केवल तंत्रीका तंत्र, मस्तिष्क की कोशिकाएँ, ग्रन्थियों के रसायन स्राव आदि से ज्ञान, अनुभव, सुख, दुःख आदि कैसे संभव है? क्योंकि यह सब निर्जीव भौतिक तत्त्व है।
31. अणु से भी छोटी ऊर्जा/वस्तु से इतना विशाल ब्रह्माण्ड और अनन्त जीवों की उत्पत्ति कैसे संभव है?
32. धूमकेतु दीर्घवृत्ताकार में क्यों धूमते हैं? इनके परिक्रमा पथ इतना अधिक होता है कि उन्हें दो बार पृथ्वी के पास से गुजरने के लिए कुछ को तो सैकड़ों वर्ष लगते हैं। इस परिस्थिति में वे अन्य ग्रहों, तारों से आकर्षित होकर उसकी परिक्रमा क्यों नहीं करते हैं? परिक्रमा पथ में परिवर्तन क्यों नहीं होता है?
33. डार्विन के अनुसार जीवों की उत्पत्ति जल में एक कोशिय रूप में हुई और क्रम विकास करता हुआ वही जीव आधुनिक मानव बना। क्या यह सही है?
34. वस्तु का यथार्थ वर्ण (रंग) क्या उस वस्तु से परावर्तित रश्मि के कारण है? घन अंधेरा (जहाँ से प्रकाश परावर्तित नहीं होता) में स्थित वस्तु का कोई भी वर्ण नहीं है?
35. जीवन के भौतिक स्वरूप के साथ-साथ जीवन के मूल स्वरूप के बारे में जानना विज्ञान के लिए अभी बाकी है।

## विज्ञान एवं वैज्ञानिक उपकरणों से हानियाँ

प्रत्यक्ष रूप से विज्ञान (वैज्ञानिक सिद्धान्त पद्धति) से प्रायः हानियाँ नहीं है किन्तु लाभ ही अधिक है। जैसा कि प्रत्यक्ष रूप से धर्म-न्याय-दर्शन-तर्कशास्त्र आदि के सिद्धान्त से प्रायः कोई हानियाँ नहीं है वैसा ही विज्ञान के सिद्धान्तों से भी है या उन सब से कम हानियाँ एवं लाभ अत्यधिक है; जैसाकि पहले भी वर्णन किया गया है। हाँ प्रायोगिक रूप से अथवा यथार्थ से कहें तो अयोग्य प्रयोगकर्ता के कारण धर्म आदि से जैसी हानियाँ भूत में हुई हैं और वर्तमान में हो रही हैं। वैसी है या उससे भी कम हानियाँ अयोग्य प्रयोग या प्रयोगकर्ता के कारण विज्ञान (वैज्ञानिक सिद्धान्त, पद्धति) से हुई है तथा हो रही है। जैसा कि सही या गलत धर्मादि के सिद्धान्त मात्र से कोई विशेष लाभ-हानि नहीं है परन्तु उसके प्रयोग कर्ता के ऊपर लाभ-हानि निर्भर है; वैसा ही विज्ञान में भी है। परन्तु कुछ लोग विज्ञान का अन्धानुकरण, दिखावा, अहंकार करके सच्चे-अच्छे धर्म-दर्शन-नीति-नियम-परम्परा-आध्यात्मिक सिद्धान्त को नकारते हैं, विरोध करते हैं, दुष्प्रचार भी करते हैं। विस्तार भय से यहाँ वर्णन नहीं कर रहा है। विशेष जिज्ञासु मेरी (1) धर्म दर्शन एवं विज्ञान (2) प्रथम शोध-बोध एवं आविष्कार (3) जैन तथ्य (भारतीय तथ्य) जो आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से परे शृंखला की 13 कृतियाँ अध्ययन करें। निम्न में विशेष रूप से वैज्ञानिक उपकरणों की हानियों के बारे में प्रकाश डालूँगा। अतः इसके लाभ के बारे में ‘शिक्षा-संस्कृति ....कृति के अन्तर्गत वैज्ञानिक उपकरणों से लाभ-हानियाँ तथा सुरक्षा के उपाय’ लेख का अध्ययन करें।

### (1) कल-कारखानों से हानि :-

वैज्ञानिक युग एक प्रकार से ‘कलयुग’ है। इससे पशु-पक्षी, मनुष्य श्रम का कम हुआ, कार्य में तीव्रता आयी, सामान (वस्तु, चीज) के उत्पादन में वृद्धि हुई। इस लाभ के साथ-साथ निम्नोक्त अनेक हानियाँ हुई, इससे जल, मृदा, वायु, शब्द प्रदूषण बढ़ा। जङ्गल-वृक्ष कटे जिससे उपर्युक्त प्रदूषण वृद्धि में और भी तीव्रता आयी। खेती योग्य भूमि में भी कमी हुई। इसके साथ-साथ भूमंडलीय तापमान बढ़ा, हिमस्खलन गलन बढ़ा, वृष्टि में मौसम चक्र में अनियमितता हुई जिससे अतिवृष्टि, अनावृष्टि (बाढ़, सूखा, अकाल) आदि में वृद्धि हुई। गृहउद्योग घटे जिससे गरीब और गरीब होते जा रहे हैं। हस्तकला मरती जा रही है, ग्राम उजड़ते जा रहे हैं जिससे अमीर-गरीब की

खाई बढ़ती है, नगर में ग्राम के लोग आकर बसने लगते हैं इससे ग्रामीण संस्कृति क्षीण होती है। नगर की जनसंख्या बढ़ने से आवासीय समस्या, प्रदूषण, अपसंस्कृति बढ़ती है।

## (2) यान-वाहन से हानि-

इसके कारण शब्द प्रदूषण, वायु प्रदूषण, दुर्घटना, में धन-जन हानि के साथ-साथ मनुष्यों का पैदल चलना कम होता है जिससे व्यक्ति शारीरिक रूप से निष्क्रिय, दुर्बल, रोगी होने के साथ-साथ मानसिक रूप से भी रोगी, दुर्बल हो जाता है। इतना ही नहीं यान वाहन में यात्रा करने के कारण पैदल चलने में तकलीफ होती है, लज्जा आती है। जिससे थोड़ी दूरस्थ मन्दिर, दुकान, प्रतिष्ठान, स्कूल, कॉलेज, कार्यालय, बगीचा, खेत आदि में जाने के लिए भी गाड़ी की आवश्यकता होती है। उसके लिए समय, धन आदि का अपव्यय होता है। यातायात में भीड़-भाड़ के कारण असुविधा होती है, यातायात के लिए जो रोड़, रेल मार्ग बनते हैं उससे अनेक वृक्ष कटते हैं, कृषि योग्य भूमि नष्ट होती है, अधिक देश-विदेश के लोगों के गमनागमन से केवल भीड़, भौतिक-प्रदूषण नहीं बढ़ता है अपितु सांस्कृतिक प्रदूषण भी बढ़ता है जिससे वहाँ की अच्छी संस्कृति, सरल-सहजता, प्रेम-एकता, शीतलता-मधुरता घटती है तथा प्रतिस्पर्धा, दिखावा, फैशन, व्यसन, चोरी, डैकैती, तस्करी, बलात्कार, गुण्डा-गर्दी, हत्या, अस्त-व्यस्तता, धोखा-धड़ी, मिलावट, आतंकवाद आदि बढ़ते हैं।

## (3) सूचना एंव मनोरंजन क्रान्ति के उपकरण से हानि-

अधिकांश टी.वी. प्रोग्राम (डिस्कवरी, नेशनल ज्योग्राफी आदि को छोड़कर) से हिंसा, बलात्कार, चोरी, फैशन, व्यसन आदि का ही प्रशिक्षण प्राप्त होता है। इसी प्रकार सिनेमा आदि में भी हो रहा है जो विद्यार्थी ऐसे प्रोग्राम में रुचि लेते हैं उनके अध्ययन में तथा अन्यान्य जो व्यक्ति ऐसे प्रोग्राम में रुचि लेते हैं तो वे भी अपने-अपने कर्तव्यों में समुचित समय नहीं दे पाते हैं। इतना ही नहीं इससे आँखें खराब होती हैं, खेल-कूद, अध्ययन, मनन, चिंतन, भ्रमण, सांस्कृतिक कार्यक्रम, सामूहिक चर्चा, दूसरों के सुख-दुख में सहभागिता, व्यवस्थित धार्मिक कार्यक्रम आदि में व्यवधान पड़ता है। महापुरुषों के बदले हीरो-हीरोइन, खेल-खिलाड़ी, खलनेता (कुख्यात व्यक्ति) आदि को

महत्व देते हैं, आदर्श मानते हैं, प्रशंसा करते हैं, उनका अनुकरण करते हैं इससे स्वस्थ मनोरंजन के बदले में अनेक मनोविकृतियाँ उत्पन्न होती हैं।

## (4) अस्त्र-शस्त्र से हानि-

अस्त्र-शस्त्रों का दुरुपयोग दुष्ट, दुर्जन, हिंसक, आतंकवादी, लुटेरे, साम्राज्यवादी, तानाशाही आदि अनुचित रूप से करते हैं जिससे प्रचुर जन-धन की हानि होती है। वर्तमान के वैज्ञानिक अस्त्र-शस्त्र अधिक घातक, विस्फोटक, पर्यावरण प्रदूषणकारी, विकिरण से युक्त होते हैं। द्वितीय महायुद्ध इसके लिए ज्वलंत उदाहरण हैं। अस्त्र-शस्त्र के दुरुपयोग और इसका दुष्परिणाम का ज्ञान अधिकांश व्यक्तियों को है इसलिए इसका विशेष वर्णन नहीं कर रहा है।

## (5) गृह उपकरण से हानि-

गृह उपकरणों से जो विशेषतः सतत् अरबों महिलाओं के लिए हानि हो रही है वह हानि लाभ से अत्यधिक है। भोजन बनाने वाले उपकरण से भोजन की गुणवत्ता, मधुरता कम होती है। वॉर्शींग मशीन, मिक्सचर, माइक्रोवेव, टोस्टर, ए.सी., ग्राइन्डर, अनाज एंव मसाला पीसने के उपकरण, पानी के नल, ट्यूबवेल आदि से महिलाओं को परिश्रम कम करना पड़ता है विभिन्न प्रकार के प्रदूषण बढ़ते हैं, प्राकृतिक संसाधन, कुटीर उद्योग की सामग्री, जल के प्राकृतिक स्रोत (नदी, झरना, तालाब, बावड़ी, कुंआँ आदि) की उपेक्षा के कारण वे बेकार हो रहे हैं। शारीरिक श्रम के बिना महिलाओं को मोटापा, डायबिटीज, रक्तचाप, हार्टअटैक, तनाव, आलस्य, निष्क्रियता, शरीर में दर्द आदि रोग हो जाते हैं। पानी की सप्लाई नल के द्वारा होने से अनुचित रूप से पानी का प्रयोग करते हैं। नल खुले छोड़ देते हैं जिससे प्रचुर पानी अनावश्यक रूप से बह जाता है। इससे पानी का दुरुपयोग होता है, गन्दगी तथा दुर्बन्ध फैलती है, यातायात में असुविधा होती है, प्रदूषण बढ़ता है, मच्छर-रोगाणु-कीटाणु उत्पन्न होते हैं जिससे मलेरिया आदि रोग होते हैं। भोजन बनाने में रसोई गैस के प्रयोग से घर में प्रदूषण होता है, भोजन की गुणवत्ता, मधुरता घटती है, विभिन्न रोग होते हैं। बाजार आदि से सामान लाने के लिए प्लास्टिक की थैलियों का प्रयोग में लाने के कारण उससे जो प्रदूषण हो रहा है तथा पशुओं के द्वारा उसके भक्षण से पशुओं को पीड़ा एंव मृत्यु तक हो जाती है। वैज्ञानिक बेकार उपकरण घुलनशील नहीं होने के कारण

इससे कचरे की मात्रा बढ़ती है जिससे प्रदूषण बढ़ता है।

उपर्युक्त वर्णन से सिद्ध होता है कि गृहउपकरणों से उत्पन्न होने वाले छोट-छोटे मच्छर आदि के समान ही वे उपकरण छोट-छोटे होते हुए भी खोटे-खोटे हैं और भी कुछ मैंने (आ.कनकनंदी) शोध-बोध किया है कि जो ऐसे उपकरण प्रयोग में लाते हैं व स्वयं को प्रगतिशील, आधुनिक, धनी, पढ़े-लिखे मानते हैं और जो ऐसे उपकरण प्रयोग में नहीं लाते हैं उन्हें गवार-मूर्ख, गरीब, पिछड़ा, अनाड़ी मानकर उनसे बेटी व्यवहार नहीं करते हैं।

## (6) रासायनिक खाद, कीटनाशक, रसायन

### आदि से हानि-

इससे मृदा धीरे-धीरे बंजर होती जाती है। आगे अधिक से अधिक खाद डालने की आवश्यकता पड़ती है जिससे मृदा और भी अधिक उर्वरा शक्ति से हीन होकर बेकार हो जाती है। भले इससे उत्पादन बढ़ता है परन्तु गुणवत्ता, स्वाद घटता है जिससे अनेक शारीरिक, मानसिक रोग होते हैं। कीटनाशक रसायन के प्रयोग से भोजन विषाक्त हो जाता है जिससे अनेक रोग हो जाते हैं। भोजन भी गुणहीन, रसहीन हो जाता है और दुर्गंध आती है। दोनों के प्रयोग से मृदा, वायु, जल प्रदूषण बढ़ता है। अनेक सूक्ष्म, स्थूल जीव-जंतु, केंचुआ, पतंग-भ्रमर, मधुमक्खी आदि के मृत्यु के कारण मृदा की उर्वरता घटती है, पराग क्रिया सही नहीं होती है जिससे उत्पादन कम होता है। इसके सेवन से अनेक लोग आत्महत्या भी कर लेते हैं। रासायनिक खाद से शराब, सिंथेटिक दूध आदि भी दुष्ट लोग बनाकर बेचते हैं जिससे अनेक रोग एवं मरणादि होते हैं।

इसी प्रकार भोजन प्रयोग में मिलावट करने वाले रङ्ग, कृत्रिम स्वाद, गंध आदि से अनेक शारीरिक, मानसिक रोग, होते हैं। कृत्रिम खाद्य, फास्टफूड, शीतल पेय, वस्त्र, अलंकार, खिलौना, गैस, प्रसाधन सामग्रियाँ (लिपस्टीक, नैलपॉलिश, क्रीम पाउडर, सेंट आदि) से भी हिंसा के साथ-साथ अनेक शारीरिक, मानसिक रोग होते हैं तथा विविध प्रदूषण भी होते हैं।

## (7) वैज्ञानिक चिकित्सा/शिक्षा से हानि-

इसके अध्ययन, परीक्षण-निरीक्षण के लिए अनके निर्दोष पशु-पक्षी आदि को प्रयोग में लाते हैं जिससे उसे पीड़ा, परतंत्रता के साथ-साथ अनेकों

की मृत्यु भी होती है या मारा भी जाता है या मरे हुए के अङ्गों पाङ्ग का प्रयोग होता है। अनेक औषधियों का निर्माण रसायनों से भी होता है। इन सब कारणों से ऐसी औषधियों के सेवन से हिंसा के साथ-साथ अन्य अनेक शारीरिक, मानसिक रोग भी हो जाते हैं, रोग प्रतिरोधक शक्ति घटती है।

## (8) प्रकृति का शोषण :

स्वर्ण अंडा के लोभ से मुर्गी की हत्या के समान विज्ञान के कारण प्रकृति के दोहन के बदले शोषण/हनन हो रहा है। पृथ्वी की छाती को विदारण करके खनिज धातु, कोयला, पत्थर, गैस, तेल, पानी आदि का शोषण हो रहा है जिससे पृथ्वी, प्रकृति, वातावरण का संतुलन बिगड़ रहा है। इससे जल का स्तर घटने के कारण कुआँ, बावड़ी, तालाब आदि सूखते जा रहे हैं इतना ही नहीं इससे वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, शब्द प्रदूषण भी बढ़ रहे हैं। पृथ्वी के खोखले होने से भूस्खलन, भूकंप आदि की संभावना भी बढ़ती है। वनस्पति कटने से तापमान बढ़ता है, वर्षा कम होती है, उर्वरा भूमि का अपरदन (क्षरण) होता है जिससे अनाज आदि का उत्पादन घटता है।

## (9) सारांश एवं शिक्षायें -

मानव जितना-जितना भौतिक भोगवादी, शोषणकारी, लोभी, परिग्रहानन्दी, हिंसानन्दी, बाजारवादी बनता जाएगा उतना-उतना वह दुःखी होता जायेगा। प्राणवायु के समान आध्यात्म, जल के समान नैतिकता तथा भोजन के समान भौतिकता के संतुलन से ही जीवन में विकास, सुख-शान्ति, समृद्धि सम्भव है। अतः मानव को भौतिकतारूपी भोजन से नैतिकता रूपी जल को अधिक महत्व देना चाहिए तथा प्राणवायु रूपी आध्यात्म को सदा-सर्वदा अत्यन्त महत्व देना चाहिए। अतएव महात्मा गांधी के शब्दों में कहें तो-

यह याद रखें कि वस्तुओं की भाँति विचार का भी परिग्रह होना चाहिए। अपने दिमाग में निरर्थक ज्ञान भर लेने वाला मनुष्य परिग्राही है। जो विचार हमें ईश्वर से विमुख रखते हो अथवा ईश्वर के प्रति न ले जाते हों वे सब परिग्रह के अन्दर आते हैं और इसलिए त्याज्य हैं। गीता के तेरहवें अध्याय में भगवान की दी हुई ज्ञान की यह परिभाषा हमें ख्याल में लानी चाहिए। अमानित्व इत्यादि गिनाकर कहा गया कि उससे भिन्न सब अज्ञान है। यदि यह

वचन सत्य हो और सत्य है ही-तो हम आज जो बहुत कुछ ज्ञान के नाम से संग्रह करते हैं, वह अज्ञान ही है और उससे लाभ के बदले हानि होती है। दिमाग फिर जाता है अंत में खाली हो जाता है; असंतोष फैलता है और अनर्थ बढ़ते हैं। इससे यह मतलब नहीं कि मंदता अभीष्ट है। प्रत्येक क्षण प्रवृत्तिमय होना चाहिए; पर वह प्रवृत्ति होनी चाहिए सात्त्विक सत्य की ओर ले जाने वाली।

### (1) औद्योगिकरण का विरोध -

गांधीजी के द्वारा औद्योगिक क्रान्ति और उसके परिणाम स्वरूप उत्पन्न केन्द्रीकृत अर्थ व्यवस्था का विरोध किया गया है। बड़े उद्योगों की स्थापना के लिए कच्चे माल और बहुत बड़ी मात्रा में निर्मित पदार्थों के विक्रय के लिए बड़े बाजारों की खोज की यह प्रवृत्ति साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद को जन्म देती है, जो कि नैतिकता के विरुद्ध है।

गांधीजी बड़ी मशीनों को मानव जाति के लिए अभिशाप मानते थे और उनका विचार था कि समाज में घृणा, द्वेष और स्वार्थ में जो वृद्धि दिखायी देती है। वह सब मशीनों का ही फल है। मशीनों के प्रयोग के परिणाम स्वरूप ही मानव का शारीरिक एवं नैतिक पतन हुआ है। औद्योगिकरण के परिणाम स्वरूप ही उत्पादन थोड़े से व्यक्तियों के हाथों में केन्द्रित हो जाता है और बहुसंख्यक वर्ग को अत्यधिक निर्धनता में अपना जीवन व्यतीत करना होता है। हस प्रकार औद्योगिकरण से शोषण को प्रोत्साहन मिलता है। औद्योगिकरण से बेकारी भी बढ़ती है, क्योंकि मानवीय श्रम का स्थान मशीनों ले लेती हैं। औद्योगिकरण का एक दोष यह भी है कि केन्द्रीकृत उत्पादन के परिणाम स्वरूप राजनीतिक शक्ति का भी केन्द्रीकरण हो जाता है जो लोकतन्त्र और मानवीय स्वतंत्रता दोनों का ही शत्रु है।

पर इससे यह नहीं समझना चाहिए कि गांधीजी सभी प्रकार की मशीनों के प्रयोग के पूर्णतया विरुद्ध थे। मशीनों के प्रयोग के सम्बन्ध में उनका साधारण सिद्धान्त यह था कि जो मशीने सर्वसाधारण के हित साधन में प्रयोग आती हैं, उनका प्रयोग उचित है। उदाहरण के लिए वे रेल, जहाज, सिलाई की मशीन और चरखा आदि के समर्थक थे, किन्तु उनका विचार था

कि विनाशकारी और मानव शोषण को प्रोत्साहित करने वाली मशीनों को प्रयोग सर्वदा त्याज्य समझा जाना चाहिए।

### (2) कुटीर उद्योगों का समर्थन -

गांधीजी के द्वारा औद्योगिकरण को विरोध करते हुए कुटीर उद्योग-धन्धों पर आधारित एक ऐसी विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था का प्रतिपादन किया गया। जिसके अन्तर्गत प्रत्येक गाँव एक आर्थिक इकाई के रूप में कार्य करेगा। वे खादी को भारत की राजनीति एवं आर्थिक समस्याओं का अमोघ हल मानते थे और उनके द्वारा आर्थिक क्षेत्र में स्वदेशी के विचार का प्रतिपादन किया गया। गांधीजी का विचार था कि प्रत्येक देश की अर्थ-व्यवस्था, वहाँ की जलवायु, भूमि तथा वहाँ के निवासियों के स्वभाव को ध्यान में रखते हुए निश्चित की जानी चाहिए और इन बातों के आधार पर जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है भारत के लिए कुटीर उद्योग-धन्धों की व्यवस्था ही सर्वोत्तम है।

### (3) अपरिग्रह का सिद्धान्त-

आर्थिक अन्याय और असमानता को दूर करने के लिए गांधीजी का एक अन्य विचार यह है कि जीवन में अपरिग्रह के सिद्धान्त को अपनाया जाना चाहिए। गांधीजी का मत था कि प्रकृति स्वयं उतना उत्पादन करती है, जितना सृष्टि के लिए आवश्यक है इसलिए वितरण का प्राकृतिक नियम यह है कि प्रत्येक केवल अपनी आवश्यकता भर के लिए प्राप्त करे और अनावश्यक संग्रह करने के लिए अत्यधिक सामग्री है जिसकी उन्हें आवश्यकता नहीं है जबकि लाखों लोग आवश्यकता के कारण भूखे मर जाते हैं। यदि प्रत्येक व्यक्ति केवल आवश्यक वस्तु का ही संग्रह करे तो कोई भी जरूरतमन्द नहीं होगा। तब फिर सब सन्तुष्ट रह सकेंगे।

विज्ञान को विज्ञान तभी कह सकते हैं जब वह शरीर, मन, और आत्मा की भूख मिटाने की पूरा ताकत रखता हो। (महात्मा गांधी)

जहाँ विज्ञान हमें बाहरी दुनिया के निर्माण में सहायता करता है वहाँ दर्शन हमारे नैतिक और आध्यात्मिक जीवन का निर्माण करता है।

(डॉ.राधाकृष्णन्)

### जैन धर्म की कुछ विशेषतायें / मौलिकतायें

(1) जैन धर्म विश्व एवं विश्व के समस्त चेतन-अचेतन द्रव्यों को अकृत्रिम, 51

- शाश्वतिक मानता है।
- (2) प्रत्येक जीव स्व-स्व कर्म के अनुसार जन्म-मरण, सुख-दुःख को भोगता है, अतः जीव को सुख-दुखादि देने में अन्य कोई शक्ति/ईश्वर आदि की मान्यता नहीं है। ब्रह्माण्ड में अनन्तानन्त अशुद्ध संसारी जीव हैं तो अनन्तानन्त शुद्ध मुक्त जीव है।
  - (3) प्रत्येक भव्य जीव योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के माध्यम से पुरुषार्थ करते हुए भगवान्/परमात्मा बन सकता है। परमात्मा संख्या की दृष्टि से अनन्तानन्त है। परमात्मा पुनः जन्म ग्रहण/अवतार ग्रहण नहीं करते हैं।
  - (4) जैन धर्मावलम्बी केवल मनुष्य ही नहीं हो सकते हैं परन्तु पशु, पक्षी, देव, नारकी, भूत, प्रेत, राक्षस भी हो सकते हैं। केवल इसमें शर्त है सत्य-निष्ठा, भाव की पवित्रता, व्यवहार में आदर्शता।
  - (5) स्व कर्मानुसार मनुष्य मरकर भगवान्, देव, नारकी, पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि बन सकता है तो पशु मरकर देव, मनुष्य, नारकी और देव मरकर मनुष्य, पशु-पक्षी, बन सकता है। देव मरकर देव एवं नारकी तथा नारकी मरकर नारकी एवं देव नहीं बन सकते हैं। पशु-पक्षी, देव, नारकी, वनस्पति, कीट, पतंग भी कालान्तर में भगवान् बन सकते हैं। भगवान् बनने के पूर्व तक प्रायः प्रत्येक जीव अनन्त बार मनुष्य, देव, नारकी, पशु-पक्षी, वृक्ष बन चुका होता है।
  - (6) सूर्य, चंद्र, ग्रह आदि असंख्यात-असंख्यात है अर्थात् इनकी संख्या अनेक करोड़ों-अरबों से भी अधिक है।
  - (7) जैनधर्म कर्म को केवल भावात्मक संस्कार मात्र ही नहीं मानता परन्तु उसमें भौतिक-कर्म परमाणुओं को भी स्वीकार करता है।
  - (8) विश्व के प्रत्येक चेतन, अचेतन द्रव्य परस्पर सहयोगी/उपकारी/प्रभावकारी होते हैं अर्थात् केवल परस्परोग्रहो जीवानाम् ही नहीं परन्तु परस्परोपग्रहो द्रव्याणाम् भी है। इसके बिना किसी भी द्रव्य की सत्ता, अवस्था, परिणमनशीलता, क्रिया, अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व आदि संभव नहीं हैं, तथापि प्रत्येक द्रव्य वस्तु स्वातंत्रता की अपेक्षा पृथक-पृथक्/मौलिक है।
  - (9) जैन धर्म में आंशिक को आंशिक एवं पूर्ण को पूर्ण सापेक्ष दृष्टि से मानने पर सत्य मानता है परन्तु निरपेक्ष दृष्टि से मानने पर मिथ्या असत्य मानता है। इसको जैन धर्म के महान् सिद्धान्त अनेकान्तवाद/सापेक्षवाद या नयवाद /स्याद्वाद कहते हैं।
- (10) भाव की अशुद्धता के लिए सब धार्मिक व्रत-नियम, पूजा-पाठ, रीति-रिवाज, क्रिया-काण्ड हैं। यदि भाव शुद्धि के लिए व्रतादि कारण नहीं बने तो उस व्रतादि को धर्म नहीं कहा जायेगा।
  - (11) असत् से सत् की या चेतन से अचेतन या अचेतन से चेतन की उत्पत्ति जैनधर्म स्वीकार नहीं करता है। परन्तु प्रत्येक द्रव्य में, गुणों में परिवर्तन मानता है।
  - (12) जैन धर्म में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, क्षमा, मार्दव, सरलता, निर्लोभता, संयम, तप, त्याग, सत्-विश्वास, सच्चा-विज्ञान, सदाचार, जीव रक्षा के साथ-साथ प्रत्येक वस्तु के स्वशुद्ध स्वरूप को सार्वभौम धर्म माना है।

### आज की शिक्षा में जीवन का भान नहीं :

उच्च शिक्षा में बड़ी प्रगति हुई है। जयपुर आने के बाद अनेक लड़के-लड़कियाँ हमारे सामने आए और उनका परिचय देते हुए अभिभावकों ने कहा- ‘यह एम बी ए कर रही है, यह इंजीनियरिंग कर रहा है, यह एम.बी.बी.एस. कर रही है।’ माँ-बाप बहुत प्रसन्न होते हैं कि जो कुछ बच्चों की पढ़ाई पर खर्च किया, वह सार्थक और सफल हो गया। उनके शब्दों में ‘लाइफ बन गई’ , किन्तु विडम्बना यह है कि उन्हें जीवनोपयोगी और दैनिक व्यवहार में काम आने वाली जरूरी शिक्षा बहुत कम मिल पाती है। उच्च शिक्षा के साथ अगर जीवन में काम आने वाली, कदम-कदम पर काम आने वाली शिक्षा भी दी जाए तो इससे सर्वांगीण विकास होगा।

आज की शिक्षा ऐसी हो गई है कि जीवन का कुछ भान ही नहीं, उससे जैसे कोई सरोकार ही नहीं, मात्र जीविका पर सारा ध्यान केन्द्रित हो गया है। इसका परिणाम यह होता है कि बहुत पढ़-लिखकर भी लड़के-लड़कियां पदार्थवादी बनकर रह जाते हैं। उनके एक ही पक्ष का विकास हो पाता है। दूसरा पक्ष, जो ज्यादा महत्वपूर्ण है, उपेक्षित रह जाता है।

आ. श्री महाप्रज्ञ जी

## भारतीय (जैन-हिन्दू-बौद्ध) संस्कृति की विशेषताएँ

(1) मूलतः भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक संस्कृति है। अतः भारतीय प्रत्येक लौकिक-परलौकिक क्रियाएँ (धार्मिक क्रियाएँ) चारों आश्रम (गृहस्थ, ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ(गृहत्यागी) ब्रती-श्रावक, यतिव्रत) के उद्देश्य, कर्तव्य, गर्भधारण से मृत्यु संस्कार तक, असि (युद्ध), मसि (शिक्षा), कृषि, वाणिज्य, शिलप, सेवा, राजनीति, न्याय, दैनिक-क्रिया, भोजन, पूजा-पाठ, रीति-रिवाज आदि सम्पूर्ण क्रियाएँ प्रत्यक्ष-परोक्ष, पूर्णिः या आंशिक रूप से आध्यात्मिकता से युक्त है। यदि उपुर्यक्त कोई भी कर्तव्य-क्रिया आध्यात्मिकता से युक्त नहीं है तो वह सब मोह, अज्ञान-पाप रूप माना गया है।

(2) आत्मा को अजर-अमर-शाश्वतिक, सच्चिदानन्द, सत्यं-शिवं-सुन्दरम्-ज्ञानधन स्वरूप, ज्ञानानन्द सुन्दरम्, अमौतिक-अमूर्तिक, अनन्त गुण-शक्ति सम्पन्न माना गया है।

(3) विश्व (ब्रह्माण्ड) को परिवर्तनशील मानते हुए भी शाश्वतिक माना गया है।

(4) प्रत्येक जीव स्व-कर्म (भाव-पुरुषार्थ) के अनुसार सुख-दुःख, जन्म-मरण, सफल-विफल, बन्ध-मुक्ति को प्राप्त करता है।

(5) महान् उद्देश्य, पवित्र-कर्तव्य, सत्य, अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, क्षमा, मृदुता, सरलता, सहजता, नम्रता, पवित्रता, संयम, तपस्या, त्याग, धैर्य, सहिष्णुता, विश्व मैत्र, विश्व प्रेम, ध्यान, आध्यात्मिक ज्ञान, आत्मनाभुति, मोक्ष, (मुक्ति, परिनिवरण) को यथार्थ से धर्म माना गया है। अन्य सम्पूर्ण धार्मिक क्रिया-काण्ड, पूजा-पाठ, रीति-रिवाज, तीर्थयात्रा, ब्रत, नियम, अध्ययन, प्रवचन आदि केवल उपरोक्त धर्म के लिए साधन निमित्तभूत है।

(6) भारत आध्यात्म प्रधान धार्मिक देश होने से यहाँ के प्राचीन प्रायः हर प्रकार के महापुरुष धार्मिक थे और उनके हर कार्य-कलाप धार्मिक रहे हैं। यथाग्रंथों में से धार्मिक ग्रन्थ तो धार्मिक है ही, इसके साथ-साथ व्याकरण, भाषा, साहित्य, संगीत, नृत्य, नाटक, पद्य, चम्पू, काव्य, कला (चित्र, मूर्ति, वास्तु, मन्दिर आदि), गणित, आयुर्वेद, अर्थशास्त्र, तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र, पुराण, इतिहास, विज्ञान, ज्योतिष, पाकशास्त्र (भोजन बनाने की कला) आदि सब धर्म से युक्त है। इतना ही नहीं काम शास्त्र (यौन

विज्ञान/शास्त्र) भी धर्म से युक्त है। इसलिए तो भारत में (1) धर्म, (2) अर्थ (3) काम (4) मोक्ष रूपी पुरुषार्थों में से तृतीय पुरुषार्थ है। अर्थात् मोक्ष पुरुषार्थ को लक्ष्य में रखते हुए धर्म पुरुषार्थ पूर्वक अर्थ एवं काम पुरुषार्थ का सेवन किया जाता था। इसके अतिरिक्त अन्य समस्त भाव एवं व्यवहार को पाप मानकर त्यजनीय कहा गया।

पुरुषार्थ (पुरुष अर्थात् आत्मा+अर्थ अर्थात् प्रयोजन) अर्थात् आत्मकल्याण के प्रयोजन के निमित्त किये गये भाव एवं कर्तव्य। चारों पुरुषार्थों में से मोक्ष प्रधान पुरुषार्थ होने से अनेक महापुरुष मध्य के अर्थ एवं काम पुरुषार्थ को त्याग करके धर्म पुरुषार्थ के माध्यम से मोक्ष पुरुषार्थ को प्राप्त करते थे। क्योंकि अर्थ एवं काम पुरुषार्थ में धर्म पुरुषार्थ पूर्वतः पालन नहीं होने के कारण जिस अंश में धर्म नहीं हो पाता है उस अंश में पाप होता है जिससे मोक्ष प्राप्त करने में व्यवधान होता है।

मुख्यतः भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक संस्कृति है तथा पाश्चात्य संस्कृति भौतिक संस्कृति है। आधुनिक विज्ञान के अधिकांश शोध-बोध-खोज-आविष्कार-प्रसार-प्रचार पाश्चात्य देशों में होने के कारण आधुनिक विज्ञान भौतिक है। भौतिक स्वयं जड़-निर्जीव-चेतना शून्य (ज्ञान-दर्शन-आत्मविश्वास-सुख-शान्ति-मोक्ष के रहित) होने से भौतिक विज्ञान भी स्वयं जड़ है। अतः भौतिक विज्ञान से आध्यात्मिक ज्ञान-सुख शान्ति प्राप्त करना केवल कष्ट साध्य ही नहीं किन्तु असम्भव ही है। ऐसी परिस्थिति में आत्मिक ज्ञान-सुख-शान्ति प्राप्त करने के लिए आध्यात्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करना अपरिहार्य परम पवित्र कर्तव्य है।

केवल पाश्चात्य भौतिक विज्ञान ही आत्मिक ज्ञान-सुख-शान्ति से रहित नहीं है परन्तु आधुनिक भारतीय प्राथमिक स्कूली शिक्षा से लेकर उच्चतम शिक्षा भी आत्मिक ज्ञान-सुख-शान्ति से रहित है। इतना ही नहीं कथंचित् पाश्चात्य की शिक्षा या भौतिक विज्ञान की शिक्षा कुछ अंशों में सच्ची-अच्छी है जैसा कि पूर्व में वर्णन किया गया है किन्तु अत्यन्त दुःखद प्रायोगिक वर्तमान कटु सत्य यह है कि पाश्चात्य की शिक्षा एवं भौतिक विज्ञान की शिक्षा से भी अधिक भौतिकवादी, अनैतिक, अयोग्य, पतनकारी, स्व-परघाती, खोटी एवं छोटी शिक्षा भारत की है। ऐसी अन्धकार पूर्ण परिस्थिति में आत्मिक ज्ञानादि के लिए आध्यात्मिक धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करना और उससे प्राप्त शिक्षाओं से स्व-पर-विश्वकल्याण करना प्रत्येक समग्र विकास के इच्छुक मानव का सर्वोत्तम प्राथमिक पवित्र कर्तव्य है।

## परम विकास की शिक्षा से रहित प्रायः शिक्षा-शिक्षित व्यक्ति तथा धार्मिक जन!

आधुनिक विज्ञान से लेकर विभिन्न धर्म एवं महापुरुषों के अनुसार मानव जीवन दुर्लभ है। कहा भी है-

किं दुर्लभं नृजन्मं, यदि प्राप्से किंच कर्तव्यम्।  
आत्महितं दुर्गति संग त्यागः रक्तश्च गुरुवचने॥

दुर्लभ क्या है? मानव जन्म दुर्लभ है। यदि मानव जन्म मिला तो क्या करणीय है? आत्महित, दुर्गति के योग्य संग/प्रवृत्ति त्याग और आत्म कल्याणकारी आध्यात्मिक गुरु के वचन के अनुराग करणीय है।

विज्ञान के अनुसार तो केवल मानव जन्म ही श्रेष्ठ है परन्तु विज्ञान को भी अभी तक ज्ञान नहीं है कि मानव में आध्यात्मिक सत्य-तथ्य-तत्त्व है जो अभौतिक-अमूर्तिक-अनन्त ज्ञानदर्शन सुख वीर्यादि गुण वाला है और वह आध्यात्मिक तत्त्व शाश्वतिक है तथा आत्मिक विकास के द्वारा मानव महामानव बनता हुआ अतिमानव-आध्यात्मिक मानव-सिद्ध भगवान् पूर्ण अभौतिक जीव बन सकता है। जिसे भारतीय महान् आध्यात्मिक विज्ञान में सत्यं-शिवं-सुन्दरम्, सच्चिदानन्दम्, भगवान् सिद्ध जीव आदि रूप से शोध-बोध-अनुभव किया गया है। इसके साथ-साथ चार्वाक दर्शन, प्रायः अधिकांश विदेश में उत्पन्न दर्शन एवं दार्शनिक (धर्म प्रचारक, धर्म) से लेकर वर्तमान के प्रायः देश-विदेशों की प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्चतम शिक्षा तक में ऐसी महानतम् स्व-परम स्वास्थ्य तथा विकासात्मक शिक्षा नहीं दी जाती है। इतना ही नहीं ऐसी परम विज्ञान की शिक्षा को मिथ्या, ढोंग, पाखण्ड, अन्धविश्वास, धर्मनिधा, पिछड़ापन, out of date, अवैज्ञानिक, बेकार, अनावश्यक, पंथ-मत-सम्प्रदायवाद, अतार्किकता, मानसिकभ्रम, पूर्वग्रिह, भय, कुंठा, असुरक्षाभाव से उपज काल्पनिक फोबिया आदि नाम से अभिहित करके शिक्षा से दूर रखा जा रहा है, घृणा की जा रही है। इसके साथ-साथ अधिकांश व्यक्ति, समाज, संवर्धन, कानून, राष्ट्र, पृथ्वी, के मानव समूह ऐसी आध्यात्मिक शिक्षा को कोई महत्व नहीं दे रहे हैं इतना ही नहीं वे केवल भौतिक-धन-मान-सत्ता, सम्पत्ति-प्रसिद्धि की शिक्षा, भोग-उपभोग, धनार्जन,

शोषण, भ्रष्टाचार, अन्याय, अत्याचार, फैशन-व्यसन, हत्या, बलात्कार, दुराचार, आतंकवाद, झूठ, कूट-कपट, मिलावट, अहंकार-ममकार, विकथा, आलस्य-प्रमाद आदि में ही जीवन गंवाते हैं और इसे ही जीवन का परम लक्ष्य मानकर आध्यात्मिक ज्ञान-ज्ञानी-साधक को मूर्ख, अयोग्य, बेकार, पिछड़ा, धर्मनिधि, समाज बाह्य, पलायनवादी, निकम्मे, परम्परावादी आदि मानकर उनसे घृणा करके हत्या तक कर देते हैं। ऐसी परिस्थिति में आत्मकल्याणकारी आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त करना। स्वाध्याय करना अत्यन्त दुर्लभ दुरुह, अलौकिक, मौलिक यथार्थ से धार्मिक-अल्पसंख्यक, बहुसंख्यक से उपेक्षित होते हुए भी व्यक्तिगत परम कर्तव्य है। विश्व इतिहास साक्षी है और वर्तमान के प्रायोगिक लाखों-करोड़ों ज्वलन्त उदाहरणों से सिद्ध होता है यथार्थ से स्वाध्याय (स्वाध्यात्मिक विकास के लिये अध्ययन) विरले ही महात्मा पुरुष ही करते हैं।

कला बहतर नरन की यामे दो सरदार।

एक जीव की जीविका दूजी जीव उद्धार।।

जीविका निर्वाह रूपी अपरा विद्या (लौकिक शिक्षा) तथा जीव उद्धाररूपी परा विद्या (आध्यात्म शिक्षा) से युक्त प्रत्येक मनुष्य को होना चाहिए। परन्तु शास्त्रों से ज्ञात होता है तथा प्रायोगिक अनुभव में आता है कि जीविका, प्रसिद्धि, डिग्री आदि के लिए लौकिक शिक्षा का अर्जन जैसे करते हैं वैसे आध्यात्मिक विद्या का अर्जन नहीं करते हैं, जो आध्यात्मिक विद्या (धर्मज्ञान) का भी अध्ययन करते हैं वे भी प्रायः जीविका, प्रसिद्धि, डिग्री आदि के साथ-साथ पंथवाद, मतवाद, परम्परा, संकीर्ण रुद्धिवादिता, रीति-रिवाज को संरक्षण, सर्वधन, प्रचार-प्रसार करने में उस विद्या का उपयोग या कहो तो यथार्थ से दुरुपोग करते हैं। ऐसे महानतम् अध्यात्मिक ज्ञान को साधारणतः मनुष्य से लेकर धार्मिक कहलाने वाले व्यक्ति भी उपलब्ध क्यों नहीं कर पाते हैं उसका दिग्दर्शन निम्न प्रकार है - सच्चे ज्ञानी जनों के दूषण लगाने से उनसे दाह करने से, उनके ज्ञानाराधना में विध्न डालने से, उनकी आसाधना करने से तथा चक्षु आदि इन्द्रियों का घात करने से प्राणी मतिज्ञानवरण और श्रुत ज्ञानवरण कर्मों का बन्ध करने से बुद्धिहीन होते हैं लाखों जन्मों में से कुछ ही जन्मों में शुभ परिणामवश मतिज्ञानवरण और श्रुतज्ञानवरण का क्षयोपशम होने से विवेकशील बुद्धि प्राप्त होती है। बुद्धि प्राप्त होने पर भी हिताहित के विचार में समर्थ धर्म का सुनना दुर्लभ है। क्योंकि रागद्वेष से रहित सच्चे ज्ञान

के प्रकाशन से दुर्भेद्य मोहान्धाकार का उन्मूलन करने वाले और समस्त जीवों पर दया करने वाले मुनिगण दुर्लभ हैं तथा तीव्र मिथ्यादर्शन के कारण गुणीजनों से द्वेष करने वाले या थोड़ा सा मिथ्याज्ञान प्राप्त करने अपने को बड़ा विद्वान मानने वाले या अपने जाने हुए तत्त्व के परवश मनुष्यों के कारण या यतिगण के आलस्य से अथवा अपना और दूसरों को उद्धार करने में दक्ष न होने से यतिजन भी नहीं आते हैं। इससे भी धर्मश्रवण की दुर्लभता है। कदाचित् पाप का उपशम होने से यतिजन के पधारने पर भी विनयपूर्वक प्रश्न करने पर और प्रश्नस्त वचन बोलने वाले गुरु के सन्मुख होने पर धर्म सुनने को मिलता है। इसलिए धर्मश्रवण की दुर्लभता है अथवा मुनिगण के वास स्थान पर जाकर भी सोता है स्वयं जो कुछ असार वचन बोलता है या मूर्खों के वचन सुनता है, विनय पूर्वक बर्ताव नहीं करता। इससे भी धर्म श्रवण दुर्लभ है। धर्म सुनने पर भी श्रुत ज्ञानवरण का उदय होने से उसको समझना अति दुर्लभ है तथा समझने पर भी उसमें मन लगाना दुष्कर है क्योंकि पहिले कभी नहीं सुना था तथा जीवादि तत्त्व भी सूक्ष्म है। धर्म का ज्ञान होने पर भी जिन भगवान् के द्वारा कहा स्वर्ग और मोक्ष रूप फल को देने वाला, जीव के सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र, तप, दान, पूजा, भावरूप धर्म, ऐसा श्रद्धान् दुर्लभ है क्योंकि जीव के दर्शन मोह का उदय रहता है। उपदेशलब्धि, काललब्धि और करणलब्धि भी सदा नहीं होती, कदाचित् ही होती है।

**लङ्घेसु वि तेसु पुणो बोधी जिणसासणम्मि ण हु सुलहा।  
कृपधाकुलोय लोगो जं बलिया रागदोसा य॥ (1864 भ.आरा.)**

मनुष्य भव आदि के प्राप्त होने पर भी (बोधि) अर्थात् जिन दीक्षा की ओर अभिमुख बुद्धि का होना सुलभ नहीं है क्योंकि जीवों के संयम को धातने वाला कर्म प्रबल होता है तथा यह लोक मिथ्यामतों से भरा है। अतः बहुत लोग जिस धर्म का आचरण करते हैं उसे ही प्रमाण मानकर जो कुछ मन में आता है उसे करते हैं। रागद्वेष के बलवान् होने से ज्ञान और श्रद्धान् से युक्त भी मनुष्य सन्मार्ग पर नहीं चलता। एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तक के जीवों के मन नहीं होने के कारण उनमें मन जन्य विशेष ज्ञान होना संभव नहीं। पञ्चेन्द्रिय में पशु-पक्षी के उत्कृष्ट मन नहीं होने के कारण भी उत्कृष्ट ज्ञान संभव नहीं है। नरक में अति दुःख, संक्लेश, वैरत्व, युद्ध, मार-काट के कारण भी उत्कृष्ट यथार्थ ज्ञान नहीं होता है। विश्व में शेष बने मनुष्य पर्याय में यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता होती है। तथापि मनुष्य में भी जो,

लब्धपर्याप्तिक मनुष्य है उसमें तो यह योग्यता होती ही नहीं है। पर्याप्त मनुष्यों में भी सम्पूर्ण अंतरङ्ग - बहिरङ्ग अनुकूल कारणों के अभाव से भी बोधिलाभ संभव नहीं है।

**देसकुलरूबमारोग्गमाउगं बुद्धिसवणगहणाणि।**

**लङ्घे वि माणुसत्ते ण हुंति सुलभाणि जीवस्स॥ 1863**

जीव के मनुष्य पर्याय प्राप्त करने पर भी देश, कुल, रूप, आरोग्य, आयु, बुद्धि, श्रवण, ग्रहण सुलभ नहीं है।

**रागेण य दोसेण य जगे रमंतम्मि वीदरागम्मि।**

**धम्मम्मि णिरासादम्मि रदी अदिदुल्लहा होइ॥ 856**

जो राग द्वेष पूर्वक संसार के भोगों में फंसे हैं, स्वाद रहित वीतराग धर्म में उनकी रुचि होना आदि दुर्लभ है। अनादि कालिन काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या-द्वेष आदि कुसंस्कार के कारण मनुष्य की रुचि इन कामादि में अधिक होती है जिस की जिसमें रुचि होती है इसलिए उसको प्राप्त करने के लिए वह प्रयत्न करता है। कामादि की पूर्ति भौतिक वस्तु धन-सम्पत्ति मकान-दूकान भोगोपभोग की सामग्री, स्त्री, पुरुष, लौकिक शिक्षा, प्रसिद्धि आदि होने से इसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। इसके साथ-साथ उपुर्यक्त वस्तुयें देखने में, सुनने में तथा दिखाने में, सुनाने में आने के कारण इन्द्रिय गम्य है। इसे संसार के अधिकांश प्राणी चाहते हैं तथा उसका भोगोपभोग करते हैं। ‘गतानुगतिक लोकः न लोक परमार्थिकः’ अर्थात् लोक/प्राणी/मनुष्य गतानुगति/अन्धानुकरण करने वाला होने से उपर्युक्त कामादि भाव तथा उसके अर्जन एवं भोगोपभोग की शिक्षा सामग्रियों को स्वीकार करता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होने से सामाजिक व्यवस्थाओं को भी स्वीकार करता है इससे विपरीत, अध्यात्म अमूर्तिक होने से देखने में, सुनने में तथा दिखाने में, सुनाने में नहीं आता है। इसका मनन, चिन्तन, श्रवण, अनुभव आदि भी अनादि काल से सुलभ नहीं है। सांसारिक ज्ञान, सुख सामग्री आदि जिस प्रकार सुलभ है उसी प्रकार आध्यात्मिक ज्ञान, सुखादि सुलभ नहीं है। वर्तमान आधुनिक, वैज्ञानिक, भौतिक, बाजारवादी वैश्वीकरण के युग में आवश्यकता भी तदनुकूल है। इसलिए उसकी आपूर्ति के लिए भी तदनुकूल शिक्षा की आवश्यकता है। इसके बिना मनुष्य स्वयं को पिछड़ा हुआ मानता है तथा दूसरे भी इसी प्रकार मानते हैं। इसके कारण मनुष्य हीन भावना से ग्रसित हो जाता है। हीन भावना से उभरने के लिए भी युगानुकूल शिक्षादि

ग्रहण करता है। इतना ही नहीं स्वयं को धार्मिक प्रादर्शित करने वाले गृहस्थ, पण्डित, साधु-संत तक जब आधुनिकता की अंधी दौड़, सत्ता, संपत्ति, प्रसिद्धि, आडम्बर, डिग्री आदि को महत्व देते हैं तो अन्य सामान्य व्यक्ति को तो इसे सर्वेसर्वा, सर्वोपरी मान बैठना स्वभाविक ही है। इसलिए स्वयं धार्मिक कहलाने वाले भी स्वयं तथा स्वयं के परिवार से लेकर दूसरों को भी उपर्युक्त पढ़ाई, विवाह, जीविका-निवाह के लिए चिन्ता, योजनायें करते हैं। दो या ढाई वर्ष के बच्चों को स्कूल, दृश्यशन भेजते हैं। बच्चों को दूसरे स्थान में यहाँ तक की विदेश में भी पढ़ाने के लिए भेजते हैं, जाते हैं, धन के अभाव से ब्याज लेकर भी पढ़ाते हैं बड़ी बच्चियों को भी पढ़ने के लिए दूर भेजते हैं। परन्तु आध्यात्मिक ज्ञान कोई साधु-संत पास में निःशुल्क रूप से दान करते हैं तो भी उसे ग्रहण नहीं करते हैं। अनेक देश-विदेशों के विद्वान, मनीषी, वैज्ञानिक, शिक्षाविदों के साथ-साथ मेरा (आ.कनकनन्दी) अनुभव है कि भारतीय संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान, गणित, आयुर्वेद, योग-ध्यान, शाकाहार, भोजन, भाषा तथा जैन दर्शन के अनेकान्त सिद्धान्त, कर्म सिद्धान्त, कार्य कारण सिद्धान्त, तेहस वर्गणा, स्व-पर चतुष्य, स्याद्वाद, अहिंसा, समता, अपरिग्रह, उत्तम क्षमादि दस धर्म, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्कारित्र, आदि अत्यन्त श्रेष्ठ, ज्येष्ठ, वैश्विक, सत्य-तथ्यात्मक, सर्व जीव द्वितीय, सर्व जीव सुखाय है। परन्तु अत्यन्त खेद-दुःखद विषय यह है कि जीवन अनुपयोगी, पिष्ट पोषण, अनावश्यक या भ्रान्तिपूर्ण अथवा महान् भारतीय संस्कृति को तुच्छ सिद्ध करने वाले अनेक विषय निम्न कक्षाओं से लेकर उच्चतम कक्षा तक पढ़ते हैं, पढ़ाते हैं परन्तु उपर्युक्त भारतीय सत्य-तथ्यात्मक, सर्व जीव हितकारी विषयों को न पढ़ते हैं न पढ़ाते हैं। इतना ही नहीं धार्मिक संस्था, क्षेत्र, मन्दिर, समिति, सभा आदि के अध्यक्ष से लेकर सदस्य तक भी उपर्युक्त ज्ञान से प्रायः रहित होते हैं तथा अपने परिवार के सदस्यों को भी उस ज्ञान से दूर रखते हैं। क्योंकि प्रायः वे धर्म के परिवर्तन में धन के बल पर अध्यक्ष आदि बनते हैं अतः वे चाहते हैं कि हमारे परिवार के सदस्य भी हमारे जैसे शिक्षा, व्यापारादि बनाते रहें तथा धन-मान-सम्मानादि प्राप्त करते रहें। वे भले राजनेता के जैसे धर्म तथा धर्म ज्ञान-शिक्षादि के लिए भाषण बाजी करते रहेंगे परन्तु प्रायोगिक रूप से विपरीत आचरण करते हैं। विदेशों के मनीषी, शोधार्थी, वैज्ञानिक आदि जब भारत के ग्रन्थों से, संस्कृति से, परम्परा से, रीति-रिवाजों से कुछ शोध-बोध-आविष्कार करते हैं तब भारत के लोग मानते हैं, अध्ययन-अध्यापन करते हैं, अन्यथा भारतीय लोग उसे हेय दृष्टि

से देखते हैं। इन सब कारणों से भारत में नवीन शोध-बोध-आविष्कार, विकास कम हो पाता है। जब भारत के लोग पाश्चात्य आदि देश में जाते हैं तब वहाँ के शोधपूर्ण-सत्यग्राही-पुरुषार्थी के कारण विकास करते हैं। भारतीयों को भी उपर्युक्त अच्छे गुणों को स्वीकार करके आगे बढ़कर अपनी आध्यात्मिक संस्कृति को अपना कर सर्वोदय करना चाहिए। ऐसा कार्य करने वाले महान हैं। यथा

ते धर्णा जे जिणवरदिट्टे धम्ममि होंति संबुद्धा।

जे य पवणां धम्मं भावेण उवट्टिदमदीया॥ (1867) भ.आ.

जो जिन भगवान् के द्वारा उपदिष्ट धर्म में प्रवृद्ध होते हैं वे धन्य हैं तथा जो दीक्षाभिमुख बुद्धि को प्राप्त करके भावपूर्वक धर्म को अपनाते हैं वे महाधन्य हैं।

**सुखकारी एवं दुःखहारी ज्ञान प्राप्ति के उपाय :**

मतिज्ञान के माध्यम से मतिज्ञान के अनन्तर जो अनुभवात्मक हिताहित विवेकात्मक ज्ञान होता है वह श्रुत ज्ञान है। इस ज्ञान से जीव विश्व के समस्त चेतन-अचेतनात्मक समस्त द्रव्यों को उसकी कुछ पर्यायों से सहित जानता है जिससे उसे स्व-आत्म तत्त्व तथा पर तत्त्व का भी परिज्ञान होता है। इससे उसे ज्ञेय(जानने योग्य) हेय(त्यजनीय) उपादेय (ग्रहणीय, श्रेष्ठ) का भी ज्ञान होता है जिससे वह ज्ञेय को जानकर हेय को त्याग कर ग्रहणीय स्वीकार करता है। यह ही सुखी होने का सर्वोत्तम उपाय है। एतदर्थं कुछ उपाय करणीय हैं, यथा-

(1) सत्य, विषय, शास्त्र, प्रवचनादि को जानने की सुनने की अत्यन्त रुचि हो। रुचि पूर्वक एकाग्रता से सुनना।

(2) रुचि से ग्रहणीय विषयों में शंका होने पर जिज्ञासा पूर्ण सन्म्र प्रश्न करना।

(3) ज्ञात विषयों को बार-बार मनन-चिन्तन-स्मरण करना।

(4) ज्ञात विषयों को विभिन्न दृष्टिकोण से जानना तथा समन्वय करना और तुलनात्मक अध्ययन करना।

(5) अध्ययन एवं चर्चा सत्यग्राही, जिज्ञासु व्यक्तियों के समूह में करना जिसमें विषयों का अधिगम निष्पक्षता से गहराई से होगा, शंका समाधान में सहयोग मिलेगा। ऐसे व्यक्तियों के अभाव से स्वयं एकान्त, प्रशान्त वातावरण में

अध्ययन करना किन्तु संकीर्ण हठग्राही, मत-पथ-परम्परा वादियों के साथ स्वाध्याय, चर्चा नहीं करना क्योंकि ऐसे व्यक्ति उदार, सत्यग्राही, सहज-सरल, शान्त नहीं हो सकते हैं जिससे ज्ञान, चर्चा, स्वभाव, व्यवहार भी तदनुकूल होगा।

(6) एकान्त में व्यक्तिगत अध्ययन के समय में भी जो विषय महत्वपूर्ण है उसके नीचे रेखा कोई रंगीन स्याही या पेन्सिल आदि से खींचना। जिससे वह विषय स्मरण में भी रहता है, देखने में अच्छा लगता है, आवश्यकता पड़ने पर शीघ्रता से विषय मिल भी जाता है। शंका के विषयों को स्पष्ट करने के लिए समाधानार्थ प्रश्नवाचक चिन्ह लगाना। योग्य व्यक्तियों से प्रत्यक्ष या लिखित रूप से समाधान करना। ऐसे व्यक्तियों से समाधान नहीं होने पर भी विभिन्न ग्रंथों के गहन अध्ययन, मनन, चिंतन से धीरे-धीरे शंका का समाधान होता जाता है।

(7) जो विषय ग्रंथों से अध्ययन किया जाता है या प्रवचनादि से श्रवण किया जाता है उसे स्व-भाषा, स्व-पद्धति से नोटबुक में लिखना। आवश्यकतानुसार उस लिखित विषयों का भी अध्ययन, संशोधन, संवर्द्धन करना।

(8) अध्ययन में रुचि को बढ़ाने के लिए पहले स्व-रुचिकर सरल विषयों (कथा, कहानी, उदाहरण, प्रेरक प्रसंग, संस्मरण, महापुरुषों की जीवनी, पुराण, चारित्र) का अध्ययन करना, उसे दूसरे व्यक्तियों को भी सुनाना।

(9) दूसरों को भी ज्ञान दान देना। यथा-शास्त्र दान करना, शास्त्र प्रकाशन करना, दूसरों को निःशुल्क अध्यापन करना, कक्षा-शिविर-संगोष्ठी आदि का आयोजन करना, प्रवचन करना, ग्रंथालय की स्थापना करना, अनुवाद-सम्पादन करना, लेख-साहित्य लिखना, देश-विदेश में, स्कूल-कॉलेज में, ज्ञान का प्रचार-प्रसार करना।

(10) रुचि, योग्यता के अनुसार विभिन्न धर्म, दर्शन, विज्ञान, गणित, मनोविज्ञान, तर्क, आयुर्वेद, कला, साहित्य, पुराण आदि का निष्पक्ष, सत्यग्राही अध्ययन, समन्वय करना।

(11) आधुनिक विज्ञान भले अपूर्ण तथा विशेषतः भौतिक है तथापि उस की पद्धति एवं दृष्टि सत्यग्राही, उदार, प्रगतिशील, परिवर्तनशील, सापेक्षता से युक्त, भूल-सुधारवादी होने से विज्ञान की विभिन्न शाखाओं का अध्ययन, समन्वय अपेक्षणीय है। इससे दृष्टिकोण, ज्ञान, पद्धति आदि सूक्ष्म, सत्य-तथ्यात्मक, उदार, गणितिय, समसामयिक वैज्ञानिक बनती है।

(12) आध्यात्मिक रहस्य को मानना-जानना-आत्मसात् करना ही मुख्य ध्येय है। इसके लिए सरल माध्यम रूपी भाषा चुनना चाहिए। यदि भाषा ही दुरुह हो तो अति गहन आध्यात्मिक विषय का परिज्ञान कैसे होगा? साध्य स्वरूप सत्य-तथ्य, ध्येय, उपादेय, ग्रहणीय को महत्व देना चाहिए न कि केवल साधन स्वरूप भाषा को।

(13) सत्य-तथ्य पूर्ण अमूर्तिक आध्यात्मिक ज्ञान अभूतपूर्व, अभावित, अश्रुत, सूक्ष्म गहन, गंभीर, विस्तृत, अनन्त होने के कारण इसे अधिकांश साधारण व्यक्ति, पढ़े-लिखे व्यक्ति, पंडित, प्रोफेसर, वैज्ञानिक, लेखक, साहित्यकार, यहाँ तक कि रुद्धिवादी, पंथवादि धार्मिक जन से लेकर साधु-संत आचार्य तक न जानते हैं, न मानते हैं, न अनुभव करते हैं, न प्रचार-प्रसार करते हैं। इसलिए आध्यात्मिक ज्ञान दुरुह दुर्लभ है। इसलिए यह ज्ञान-अनुभव जिसे है वह विश्व में श्रेष्ठ है ज्येष्ठ है, पूजनीय है, आदर्श है। उस महान् विभूति को प्रायः संसार समझ नहीं पाता है, बहुमान-आदर नहीं देता है। सदुपयोग नहीं कर पाता है। तथापि ऐसे महान् व्यक्ति स्वयं को कारण मझे समझ नहीं पाते हैं। वे मेरी कमियाँ नहीं, परन्तु मेरी महानता को समझने की शक्ति दूसरों में नहीं होने से दूसरों की कमियाँ हैं। जैसा कि सूर्य को उल्लू नहीं देख पाता है तो इसमें सूर्य का दोष नहीं है अपितु उल्लू की अयोग्यता है। इसलिए ऐसे ज्ञानी को दूसरों से प्रभावित नहीं होना चाहिए और पंथ-मत, रुद्धि, लोकरञ्जन, भीड़ (ख्याति, पूजा, प्रसिद्धि) के अनुसार भी स्वयं को परिवर्तित नहीं करना चाहिए।

### **भौतिकवादी, स्वार्थी, निरस, अगुणग्राही मानव**

कभी सोचा है आपने, आगे जाने की आपाधापी में हम जीना ही भूल गए हैं। अगर हमारे पास अच्छी बातों का आनन्द लेने के लिए दो पल भी नहीं हैं तो फिर भौतिक सफलताओं का क्या अर्थ....

### **सोचिए, आज आपने क्या खो दिया-**

जनवरी की एक सर्द सुबह थी। अमेरिका के वाशिंगटन डी सी का मेट्रो स्टेशन। एक आदमी वहाँ करीब घंटा भर तक वायलिन बजाता रहा। इस दौरान लगभग दो हजार लोग वहाँ से गुजरे, अधिकतर लोग अपने काम पर जा रहे थे। उस व्यक्ति ने वायलिन बजाना शुरू किया उसके तीन मिनट बाद एक अधेड़ आदमी का ध्यान उसकी तरफ गया। उसकी चाल धीमी हुई

वह कुछ पल उसके पास रुका और फिर जल्दी में निकल गया।

**4 मिनट बाद :** वायलिन वादक को पहला सिक्का मिला। एक महिला ने उसकी टोपी में सिक्का फेंका और बिना रुके चलती बनी।

**6 मिनट बाद :** एक युवक दीवार के सहरे टिक्कर उसे सुनता रहा, फिर उसने घड़ी पर नजर डाली और फिर चलने लगा।

**10 मिनट :** एक तीन वर्षीय बालक वहाँ रुक गया, पर जल्दी में दिख रही माँ उसे खींचते हुए वहाँ से ले गई। माँ के साथ लगभग घिस्टटे हुए चल रहा बच्चा मुड़-मुड़कर वायलिन वादक को देख रहा था। ऐसा ही कई बच्चों ने किया और हर बच्चे के अभिभावक उसे घसीटते हुए ही ले गए।

**45 मिनट :** वह लगातार बजा रहा था। अब केवल छह लोग ही रुके थे और उन्होंने भी कुछ देर ही उसे सुना था। लगभग 20 लोगों ने सिक्का उछाला, पर रुके बगैर अपनी सामान्य चाल में चलते रहे। उस आदमी को कुल मिलाकर 32 डॉलर मिले।

**1 घंटा :** उसने अपना वादन बंद किया। फिर से शांति छा गई। इस बदलाव पर भी किसी ने ध्यान नहीं दिया। किसी ने वादक की तारीफ नहीं की। किसी भी व्यक्ति ने उसे नहीं पहचाना। वह था, विश्व के महान् वायलिन वादकों में से एक, जोशुआबेल। जोशुआ 16 करोड़ रुपये की अपनी वायलिन से इतिहास की सबसे कठिन धुनों में एक बजा रहे थे। महज दो दिन पहले ही उन्होंने बोस्टन शहर में मंचीय प्रस्तुति दी थी, जहाँ प्रवेश टिकटों का औसत मूल्य 100 डॉलर (लगभग 4,600 रुपये) था। यह बिल्कुल सच्ची घटना है। जोशुआ बेल प्रतिष्ठित समाचार पत्र 'वाशिंगटन पोस्ट' द्वारा ग्रहण बोध और समझ को लेकर किए गए एक सामाजिक प्रयोग का हिस्सा बने थे। इस प्रयोग का उद्देश्य यह पता लगाना था कि किसी सार्वजनिक जगह पर किसी अटपटे समय में हम खास चीजों और बातों पर कितना ध्यान देते हैं? क्या सुन्दरता या अच्छाई की सराहना करते हैं? क्या हम आम अवसरों पर प्रतिभा की पहचान कर पाते हैं?

इसका एक सामान्य निष्कर्ष यह निकलता है : जब दुनिया का एक श्रेष्ठ वादक एक बेहतरीन साज से इतिहास की सबसे शानदार धुनों में से एक बजा रहा था, तब अगर हमारे पास इतना समय नहीं था कि कुछ पल रुककर उसे सुन सकें, तो सोचिए, हम कितनी सारी अन्य बातों से वंचित हो गए हैं, लगातार वंचित हो रहे हैं। इसका जिम्मेदार कौन है?

## भारतीयों के स्व-आध्यात्मिक संस्कृति से विपरीत प्रवृत्ति-

उपर्युक्त वर्णन एवं उदाहरण से सिद्ध होता है साधारणतः अधिकांश व्यक्ति भौतिकवादी, अगुणग्राही, यथोचित असदुपयोगी, नीरसमय जीवन, आपाधापी जीवन को ढोने वाले होते हैं। आधुनिक-वैज्ञानिक पाश्चात्य देशों के लोगों के बारे में मैंने जो कुछ पढ़ा-मेरे भक्त एवं शिष्यों से सुना और वैज्ञानिक चैनलों से देखा-सुना तथा भारत के 13 प्रदेशों के ग्राम से लेकर महानगर तक, अशिक्षितों से लेकर शिक्षितों का दीर्घ अनुभव किया उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भारत की परिस्थिति उपरोक्त उदाहरण से भी निम्न स्तर की है तथा चिन्ता एवं चिन्तीय है। उपरोक्त उदाहरण लौकिक, भौतिक कला-संगीत सम्बन्धी है तथा पाश्चात्य के दर्शन, संस्कार, परम्परा, विज्ञान, भारतीय सांस्कृतिक संस्कार परम्परा के जैसे आध्यात्मिक नहीं है। तथापि भारत के अधिकांश लोग शिक्षा, संस्कृति, धर्म, गुरु, धार्मिक, कार्यक्रम आदि तक को भौतिक वस्तु (धन, भौतिक साधन), स्वार्थ, स्व सुविधा आदि के अनुसार ही महत्व देते हैं। मूल्यांकन करते हैं। स्वीकार करते हैं। भारत के महापुरुष, सच्चा-अच्छा संस्कार, ज्ञान-विज्ञान, भोजन, वस्त्र, कला, संगीत, नृत्य, प्रसाधन वस्तु, औषधि, योग, ध्यान आदि के गुणों को न ग्रहण करते हैं न ही उसका सदुपयोग करते हैं। परन्तु पाश्चात्य अच्छाई को छोड़कर अपसंस्कृति, नेता, अभिनेता, खेलनेता, खलनेता आदि को महत्व देते हैं उनका अकल के बिना भोण्डा-तुच्छ-अहितकारी नकल करते हैं। शिशु अवस्था (2.5 से 3 वर्ष की आयु) से ही पढ़ाई-ट्यूशन-कोचिंग-परीक्षा-प्रतिस्पर्द्धा-दबाव से लेकर फैशन-व्यसन-गप्पावाजी-गुण्डागर्दी से गुजरते हुए विवाह, व्यापार-कृषि-सेवा-नौकरी, जन्म-मृत्यु, आपा-धापी, रोना-धोना, लेन-देन, अन्याय-अत्याचार-भ्रष्टाचार-पापाचार करते हुए निष्क्रिय-निस्तेज, अशान्त, नीरस जीवन को ढोते हुए जीवन को इतिश्री कर लेते हैं। ऐसे देवदुर्लभ मानव जन्म, महान् आध्यात्मिक-संस्कृति-ज्ञान-विज्ञान, महान्-गुरु-धर्मग्रन्थ-उपदेश-शिक्षा आदि का सदुपयोग भारत के कम लोग कम ही मात्रा में कर पाते हैं; अधिकांश लोग सदुपयोग न करते हैं, न ही जानते हैं; अनेक तो दुरुपयोग करके स्व-पर को क्षति पहुँचाते हैं।

लौकिक पढ़ाई के लिए जनता से लेकर सरकार तक जितने समय,

श्रम, धन, साधन, जन, मन उपयोग करते हैं क्या उसका छोटा सा भी भाग परम आध्यात्मिक विज्ञान की शिक्षा में सदुपयोग करते हैं? इसी प्रकार विवाह, धनार्जन, भोग-उपभोग, फैशन-व्यसन, गप्पबाजी, गुण्डागर्दी, आलस्य-प्रामद, तोड़-फोड़, व्यर्थवाद-विवाद, आडम्बर, अनावश्यक धन-जन-समय-श्रम-साधन का दुरुपयोग करते हैं, क्या उसका सदुपयोग करते हैं? भले भारतीय संस्कृति महान् आध्यात्मिक संस्कृति है तथापि वर्तमान में प्रायोगिक रूप से प्रायः भौतिकता ही सर्वत्र (शिक्षा से लेकर धर्म तक में) यत्र-तत्र व्याप्त/सराबोर/अनुरञ्जित/आप्लावित है। जो थोड़े-बहुत लोग परोपकार, सेवा, समाज-सेवा, राष्ट्र सेवा (राजनीति के नेता) सरकारी-सेवा (सरकारी नौकरी), रोगी की सेवा (डॉक्टर आदि) आदि सेवा कार्य में भी होते हैं वे भी सेवा कम, सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि का अधिक सेवन करते हैं। अधिक क्या कहा जाए प्रायः धार्मिक लोग भी धर्म से धन-जन-मान-सम्मान-वर्चस्व-संकीर्णता-कटूरता आदि के अर्जन-पोषण करते हैं। इसलिए तो विश्वगुरु भारत में भी अन्याय-अत्याचार-भ्रष्टाचार-दुःख-संकट-आतंकवाद-नस्लवाद-पंथवाद-जातिवाद-भाषावाद-दलवाद-क्षेत्रवाद-रोग-शोक-आत्महत्या-बलात्कार-गरीबी-प्राकृतिक प्रकोप आदि व्याप्त हैं। समग्र स्वास्थ्य एवं विकास के साधन स्वरूप शिक्षा तक तो अभी अधिकांश विद्यार्थियों के शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक अस्वास्थ्य तथा आत्महत्या के साधन तक बन रही है क्योंकि अभी अभिभावक, शिक्षक, शिक्षातन्त्र, समाज से लेकर सरकार तक शिक्षा की अंधी दौड़ में व्यवहारिक-नैतिक-आध्यात्मिक शिक्षा को नकार कर रुद्धिवादी, भौतिक, रटन्त, दबावपूर्ण, अङ्कु आधारित शिक्षा-परीक्षा को विद्यार्थियों के ऊपर लाद रखे हैं। इसलिए तो पृथ्वी के 1/6 जनसंख्या वाला भारत में 1/60 भी नये शोध-बोध-आविष्कार नहीं हो पा रहे हैं। ये नये शोधादि केवल भौतिक विज्ञान की दृष्टि से नहीं अपितु न्याय-राजनीति-मनोविज्ञान-चिकित्सा-पर्यावरण सुरक्षा-विश्वशान्ति-शिक्षा-स्वास्थ्य-ध्यान-जीव विज्ञान-ब्रह्माण्डिय विज्ञान-गणित आदि किसी भी क्षेत्र के ही क्यों न हों। विशेषतः जिस आध्यात्मिक-विज्ञान के कारण भारत विश्वगुरु रहा तथा परतंत्रता के समय में भी विदेशियों का पूजनीय रहा और अभी भी वैज्ञानिक-आर्थिक-प्रौद्योगिकी-शैक्षणिक दृष्टि से उन्नत विकसित देशों के भी श्रद्धास्पद है, उस आध्यात्मिकता में भी भारत पुस्तकीय, प्रवचन, प्रदर्शन, नृत्य, संगीत, गाना, बजाना, मूर्ति-मन्दिर, पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन, भोजन, प्रसाद, चित्र-विज्ञापन, रीति-रिवाज आदि तक ही सीमित

है न कि शोध-बोध-खोज-आविष्कार-आचरण में। इसलिए तो भारत राजनीति-कानून-शिक्षा-विज्ञान-प्रोद्योगिकी-आर्थिक-फैशन-सिनेमा तक के लिए पाश्चात्य देशों का केवल पिछलगु नहीं परन्तु भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति के लिए भी पिछलगु है क्योंकि जब तक विदेश के वैज्ञानिक कोई विषय को सही नहीं मानते हैं या विदेश के लोग अपनाते नहीं तब तक भारत के अधिकांश वैज्ञानिक, सरकार, कानून, शिक्षा से लेकर धार्मिक लोग भी भारतीय आध्यात्मिकता को मानते नहीं हैं, अपनाते नहीं, बोलते नहीं हैं, लिखते नहीं हैं।

इसके विपरीत पाश्चात्य देश के अधिकांश वैज्ञानिक सनम्र सत्यग्राही होकर स्वदेश के भी वैज्ञानिकों के गलत सिद्धान्तों तक को नकारते हैं तथा परम्परा, किम्बदन्ती, इतिहास, भोजन, रीति-रिवाज, भग्नावशेष, कङ्कल, मूर्ति, मन्दिर, भोजन, रहन-सहन, जीवन शैली, योगासन, भावना, प्रार्थना, ध्यान, परोपकार, सेवा, धर्म आदि के भी सत्य-तथ्य को निढ़र होकर मानते हैं। प्रचार-प्रसार करते हैं। इसके लिए प्रायः वे किसी भी व्यक्ति, समाज, धर्म, पंथ, मत, परम्परा, धर्मचार्य, कानून, राजनेता, राजनीति, सरकार तक के दबाव में नहीं आते हैं, डरते नहीं हैं। परन्तु यह सब गुण प्रायः भारत के अधिकांश वैज्ञानिक, शिक्षाविद्, राजनेता, न्यायाधीश, सरकार, जनता, धर्मचार्य तक में नहीं पाये जाते हैं। यद्यपि व्यक्ति से लेकर राष्ट्र, मानव-समाज, विश्व को समग्र विकास एवं स्वास्थ्य के लिए सनम्र गुणग्राही, आध्यात्मिक आचार-विचार वाले होना चाहिए। क्योंकि यह ही जीवों के प्राकृतिक-शुद्ध-सरल-सहल-गुण-धर्म-स्वभाव है।

(अगर आप गलतियों को रोकने के लिए दरवाजे बन्द करते हैं तो सत्य भी बाहर ही रह जाएगा।)

## स्वाध्यायार्थे शास्त्राध्ययन, प्रार्थना भावानादि

स्वाध्याय शब्द स्वयमेव सिद्ध करता है कि किसी भी ग्रंथ का पठन-पाठन ही स्वाध्याय नहीं है परन्तु किसी भी ग्रंथादि के माध्यम से स्वयं का अध्ययन (स्व+अध्याय) मनन, चिन्तन, शोध, बोध, खोज, आविष्कार, अनुभव, निर्माण, निर्वाण (मोक्ष) करना ही यथार्थ से स्वाध्याय है। यदि धार्मिक या आध्यात्मिक ग्रन्थों के वचन (पठन-पाठन) होता है परन्तु पाचन (स्वज्ञान, आत्मज्ञान, अनुभव, आत्मपरिशोधन, आत्मानुचरण) नहीं होता है तो वह तोतारटन्त ज्ञान-मतिज्ञान है न कि श्रुतज्ञान/आत्मज्ञान/स्वाध्याय है। मतिज्ञान पूर्वक जो विशेषज्ञान/आत्मा का ज्ञान/आत्मानुभव होता है ही यथार्थ से स्वाध्याय है। यथा-

अहिमुह-णियमियबोहणमाभिणिबोहियमणिंदिन्दियजम्।  
अवग्रह-ईहावायाधारणगा होंति पत्तेयं॥ (306) गो.सा.जीवकाण्ड

इन्द्रिय और अनिन्द्रिय (मन) की सहायता से अभिमुख और नियमित पदार्थ का ज्ञान आभिनिबोधिक ज्ञान है। प्रत्येक के अवग्रह, ईहा, अवाह, धारणा ये चार भेद हैं।

अभिमुख नियमित बोधनमाभिनिबोधिकमनिन्द्रियेन्द्रियजम्।  
अवग्रहेहावायाधारणका भवन्ति प्रत्येकम्॥ (306)

Knowledge through senses and the mind of (an object which the both) present to (the sense) (and) destined (to be known by it, is) sensitiv knowledge (Abhinibodha or mati). Perception (Avagraha), conception (Iha), Judgement (Avaya) and retention (Dharana) are (the four kinds appertaining to each of the senses and mind). - (The sacred books of the Jains)

मतिज्ञान का दूसरा नाम 'आभिनिबोधिक' भी है। आभि-नि+बोधक है। आभि अर्थात् अभिमुख; 'नि' अर्थात् नियमित पदार्थ का पाँच इन्द्रियों और मन के द्वारा जो बोध=ज्ञान होता है वह आभिनिबोधिक है। इन्द्रिय के द्वारा ग्रहण करने योग्य क्षेत्र में पदार्थ का अवस्थित होना अभिमुख कहलाता है। स्पर्शन इन्द्रिय स्पर्श में नियमित है; रस, गन्ध, वर्ण व शब्द में नियमित नहीं है। अर्थात् स्पर्शन इन्द्रिय का विषय स्पर्श नियत है। इसी प्रकार रसना इन्द्रिय

का विषय रस नियत है। ग्राण इन्द्रिय का विषय गन्ध नियत है। चक्षु इन्द्रिय का विषय वर्ण व आकार आदि नियत है। श्रोत इन्द्रिय का विषय शब्द नियत है। प्रत्येक इन्द्रिय अपने-अपने क्षेत्र में स्थित (अभिमुख) अपने नियत विषय को ही जानती है। अभिमुख और नियमित अर्थ के अवबोध को आभिनिबोध कहते हैं। स्थूल, वर्तमान और अनन्तरित अर्थात् व्यवधान रहित अर्थ अभिमुख है अथवा इन्द्रिय और नोइन्द्रिय के द्वारा ग्रहण करने योग्य अर्थ का नाम अभिमुख है। चुक्षुरिन्द्रिय में रूप नियमित है, श्रोतेन्द्रिय में शब्द, ग्राणेन्द्रिय में गन्ध, जिह्वा इन्द्रिय में रस, स्पर्शनेन्द्रिय में स्पर्श और नोइन्द्रिय (मन) में दृष्टि, श्रुत और अनुभूत पदार्थ नियमित हैं। अथवा अन्यत्र उनकी प्रवृत्ति न होने से उसका नियम है। अर्थ, इन्द्रिय, आलोक और उपयोग के द्वारा ही रूपज्ञान की उत्पत्ति होती है। अर्थ, इन्द्रिय और उपयोग के द्वारा ही रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श ज्ञान की उत्पत्ति होती है। दृष्टि, श्रुत, और अनुभूत अर्थ तथा मन के द्वारा नोइन्द्रिय ज्ञान की उत्पत्ति होती है; यह यहाँ नियम है। इस प्रकार के अभिमुख और नियमित पदार्थों में जो बोध होता है वह आभिनिबोध है। इस प्रकार के आभिनिबोध ही आभिनिबोधिक ज्ञान कहलाता है। नियम के अनुसार अभिमुख अर्थों का जो ज्ञान होता है वह आभिनिबोधिक ज्ञान है। यह ज्ञान परोक्ष है।

### 1. मतिज्ञान -

मदिणाणं पुण तिविहं उवलद्वी भावणं च उवओगो।  
तह एवं चदुवियप्पं दंसणपुव्वं हवदि णाणं॥(पंचा.पृ. 141)

मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर पाँच इन्द्रिय और मन के द्वारा जो कोई मूर्तिक और अमूर्तिक वस्तुओं के विकल्प सहित या भेद सहित जानता है वह मतिज्ञान है। सो तीन प्रकार है - मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से जो पदार्थों को जानने की शक्ति प्राप्त होती है उसको उपलब्धि मतिज्ञान कहते हैं। यह नीला है, यह पीला है इत्यादि रूप से जो पदार्थ के जानने का व्यापार उसको उपयोग मतिज्ञान है। यही मतिज्ञान अवग्रह, ईहा, आवाय, धारण के भेद से चार प्रकार का है। अथवा कोष्ठबुद्धि, बीज बुद्धि, पदानुसारी बुद्धि और संभिन्न श्रोतृता बुद्धि के भेद से भी चार प्रकार है। यह मतिज्ञान सत्ता अवलोकन रूप दर्शन पूर्वक होता है।

## 2. श्रुतज्ञान -

सुदणाणं पुणणाणी भणंति लङ्घीय भावणा चेव।  
उवओग णयवियप्पं णाणेण य वत्थु अत्थस्स॥ (2)

वही आत्मा जिसने मतिज्ञान से पदार्थ को जाना था, जब श्रुतज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम होने पर जो मूर्त और अमूर्त पदार्थों को जानता है उसको ज्ञानीजन श्रुतज्ञान कहते हैं। वह श्रुतज्ञान जो शक्ति की प्राप्ति रूप है सो लब्धि है, जो बार-बार विचार रूप है सो भावना है। उसी के उपयोग और नय ऐसे भी दो भेद हैं। 'उपयोग' शब्द से वस्तु को ग्रहण करने वाला प्रमाण जानलेना चाहिए तथा 'नय' शब्द से वस्तु के एक देश को ग्रहण करने वाला ज्ञाता का अभिप्राय मात्र लेना चाहिए, क्योंकि कहा है- "नयो ज्ञातुरभिप्रायः" कि नय ज्ञाता का अभिप्रायः मात्र है। जो गुण-पर्याय रूप पदार्थ को सर्व रूप से जानना सो प्रमाण है और उसी के किसी एक गुण या किसी एक पर्याय मात्र को मुख्यता से जानना सो नय है। यहाँ यह तात्पर्य है कि ग्रहण करने योग्य परमात्म तत्त्व का साधक जो विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभाव रूप शुद्ध आत्मिक तत्त्व का सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान व आचरण रूप जो अभेद रत्नत्रय रूप भावश्रुत है सो निश्चयन रूप से ग्रहण करने योग्य है और व्यवहार नय से इसी भाव श्रुतज्ञान के साधक द्रव्यश्रुत को ग्रहण करना चाहिए।

## श्रुतज्ञान का वर्णन, श्रुतज्ञान की उत्पत्ति का क्रम और भेद

श्रुतं मतिपूर्वं द्वयनेकद्वादशभेदम्। (20)

Scribtural knowledge is always preceded by sensitive knowledge. It is of two kinds. One of which has twelve and the other many divisons.

श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है। वह दो प्रकार का, अनेक प्रकार का और बारह प्रकार का भी है।

श्रुतज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम ये श्रुतज्ञान होता है तथापि यह श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक ही होता है। मतिज्ञान के बिना श्रुतज्ञान नहीं होता है। मतिज्ञान सामान्य ज्ञान है और श्रुतज्ञान विशेष ज्ञान है। एकेन्द्रिय से लेकर

संज्ञी पञ्चेन्द्रिय तक मिथ्यात्व गुणस्थान से 12 वें गुणस्थान (क्षीणकषाय) तक श्रुतज्ञान होता है तथापि यहाँ पर मोक्षमार्ग का वर्णन होने से सुश्रुतज्ञान विवक्षित है। यह श्रुतज्ञान सम्यग्दृष्टि जीव को ही होता है। शब्दात्मक उपदेश सुनकर जो श्रुतज्ञान होता है वह श्रुतज्ञान यहाँ विवक्षित रूप से लिया है। इसका संक्षिप्त वर्णन यहाँ पर है।

## श्रुतज्ञान के मूल भेद दो हैं- अंग प्रविष्ट और अंग बाह्य।

बुद्धि आदि अतिशय वाले गणधरों के द्वारा रचित अङ्ग प्रविष्ट 12 प्रकार का है। भगवान् अर्हन्त सर्वज्ञ देव रूपी हिमाचल से निकली हुई वचन रूपी गङ्गा के अर्थ रूपी निर्मल जल से प्रक्षालित है अन्तःकरण जिनका ऐसे बुद्धि आदि ऋषियों के धनी गणधरों में द्वारा ग्रन्थ रूप से रचित आचारादि बारह अङ्गों को अङ्ग प्रविष्ट कहते जैसे-(1) आचाराङ्गः (2) सूत्रकृताङ्गः (3) स्थानाङ्गः (4) समवायाङ्गः (5) व्याख्याप्रज्ञस्ति (6) ज्ञातृधर्मकथा (7) उपासकाध्ययनाङ्गः (8) अन्तकृतदशाङ्गः (9) अनुत्तरौपपादिक दशाङ्गः (10) प्रश्नव्याकरण (11) विपाकसूत्र और (12) दृष्टिवाद।

(1) आचाराङ्गः :- आचाराङ्गः में आठ प्रकार की शुद्धि, पाँच समिति, तीन गुप्तिरूप चर्या का विधान किया जाता है।

(2) सूत्रकृताङ्गः :- में ज्ञानविनय, प्रज्ञापना, कल्प्य, अकल्प्य, छेदोस्थापना आदि व्यवहार धर्म की क्रियाओं का निरूपण है।

(3) स्थानाङ्गः :- में अर्थों के एक-एक, दो-दो आदि अनेकों आश्रयरूप से पदार्थों का कथन किया जाता है।

(4) समवायाङ्गः :- में सर्व पदार्थों की समानता रूप से समवाय (समानता) विचार किया गया है। वह समवाय द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा चार प्रकार का है। जैसे-धर्म, अर्धर्म, लोकाकाश और एक जीव के तुल्य असंख्यात प्रदेश होने से इन्हें द्रव्यरूप समवाय (समानता) कहा जाता है। जम्बूद्वीप, सर्वार्थसिद्धि, अप्रतिष्ठान नरक, नन्दीश्वर द्वीप की वापिका ये सब एक लाख योजन विस्तार वाले होने से इनका क्षेत्र की दृष्टि से समवाय है। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी ये दोनों दस कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण होने से इनका काल दृष्टि से समवाय है। क्षायिक सम्यक्त्व, केवलज्ञान, यथाख्यात

चारित्र ये सब अनन्त विशुद्धिरूप से भाव समवाय है।

(5) व्याख्या प्रज्ञप्ति :- व्याख्या प्रज्ञप्ति अङ्ग में 'जीव है कि नहीं' इत्यादि साठ हजार प्रश्नों का उत्तर है या निरूपण है।

(6) ज्ञातृधर्मकथाङ्ग :- इस अङ्ग में अनेक आख्यान और उपाख्यानों का वर्णन है।

(7) उपासकाध्ययनाङ्ग :- इस अङ्ग में श्रावक धर्म का विशेष रूप से विवेचन किया गया है।

(8) अन्तकृतदशाङ्ग :- संसार का अन्त जिन्होंने कर दिया है वे अन्तकृत हैं-जैसे-वर्द्धमान तीर्थङ्कर के तीर्थ में नमि, मतङ्ग, सोमिल, राम पुत्र, सुदर्शन, यमलीक, वलीक, निष्कम्बल, और अम्बष्ठपुत्र ये दस मुनि घोर उपसर्ग सहन करके सम्पूर्ण कर्मों का नाश कर अन्तकृत केवली हुए उसी प्रकार ऋषभादि तेर्वेस तीर्थकरों के समय में दस-दस मुनि घोरोपसर्ग सहन करके अन्तकृत केवली हुए हैं। उन दस-दस मुनियों का वर्णन जिसमें है, उसको अन्तकृदशाङ्ग कहते हैं। अथवा-अन्तःकृतों की दशा अन्तकृतदशा उसमें अहंव् आचार्य होने की विधि तथा सिद्ध होने वालों की अन्तिम विधि का वर्णन है।

(9) अनुत्तरौपपादिकदशाङ्ग :- उपपाद जन्म ही है प्रयोजन जिसका वे औपपादिक हैं। विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि नामक पाँच अनुत्तर हैं। उन अनुत्तरों में उत्पन्न होने वालों को अनुत्तरौपपादिक कहते हैं। महावीर के समय ऋषिदास, वान्य, सुनक्षत्र, कार्तिक, नन्द, नन्दन, शालिभद्र, अभय, वारिष्णेण और चिलातपुत्र, ये दस मुनि घोर उपसर्ग सहन करके विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि में उत्पन्न हुए हैं।

इसी प्रकार ऋषभादि तेर्वेस तीर्थङ्करों के समय में अन्य-अन्य दस-दस मुनिराज दारुण उपसर्ग पर विजय प्राप्त कर विजयादि अनुत्तरों में उत्पन्न हुए हैं। उन अनुत्तरौपपादिकों की दशा का वर्णन जिसमें किया जाता है-उस अङ्ग का नाम अनुत्तरौपपादिक दशाङ्ग है। अनुत्तरौपपादिकों की दशा अनुत्तरौपपादिक दशाङ्ग कहलाती है, इस अङ्ग में विजय आदि अनुत्तर विमानों की आयु, विक्रिया, क्षेत्र आदि का वर्णन है।

(10) प्रश्नव्याकरण :- प्रश्नव्याकरणाङ्ग में युक्ति और नयों के द्वारा अनेक

आक्षेप-विक्षेप रूप प्रश्नों का उत्तर है तथा उसमें सभी लौकिक और वैदिक अर्थों का निर्णय किया गया है।

(11) विपाकसूत्र :- विपाक सूत्र में पुण्य और पाप के विपाक (फल) का विचार (कथन) है।

(12) दृष्टिवाद :- इसमें 363 कुवादियों के मतों का निरूपण पूर्वक खण्डन किया है। कौल्कल, काणेविद्धि, कौशिक, हरिस्मशु, मांछपिक, रोमश, हारित, मुण्ड, आश्वलायन आदि क्रियावादियों के 180 भेद हैं। मरीचिकुमार, कपिल, उलूक, गार्य, व्याधभूति, वाद्वलि, माठर, मौदगलायन आदि अक्रियावादियों के 84 भेद हैं। साकल्य, वल्कल, कुधुमि, सात्यमुग्र, नारायण, कठ, माध्यन्दिन, मौद, पैप्पलाद, बादरायण, अम्बष्ठि, कृदैविकायन, वसु, जैमिनी आदि अज्ञानवादियों के 67 भेद हैं। वशिष्ठ, पाराशर, जतुकर्णि, वात्मीकि, रौमहर्षिणी, सत्यदत्त, व्यास, एलापुत्र, ओपमन्यव, इन्द्रदत्त, अयस्थुण आदि वैनयिकों के 32 भेद हैं। इस प्रकार मिथ्यादृष्टियों के कुल 363 भेद हैं। इन सब का वर्णन दृष्टिवाद में किया गया है। दृष्टिवाद के पाँच भेद हैं-परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका।

(1) परिकर्म :- 'परितः' अर्थात् पूरी तरह से 'कर्माणि' अर्थात् गणित के करणसूत्र जिसमें हैं, वह परिकर्म है। उसके भी पाँच भेद हैं- चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूदीप प्रज्ञप्ति, द्वीपसागर प्रज्ञप्ति, व्याख्या प्रज्ञप्ति। उनमें से चन्द्र प्रज्ञप्ति, चन्द्रमा के विमान, आयु, परिवार, ऋद्धि, गमन, हानि, वृद्धि, पूर्णग्रहण, अर्धग्रहण, चतुर्थांशग्रहण आदि का वर्णन करती है।

सूर्यप्रज्ञप्ति - सूर्य की आयु, मण्डल, परिवार, ऋद्धि, गमन का प्रमाण तथा ग्रहण आदि का वर्णन करती है। जम्बूदीप प्रज्ञप्ति - जम्बूदीपगत मेरु, कुलाचल, तालाब, क्षेत्र, वेदिका, वनखण्ड, व्यन्तरों के आवास, महानदी आदि का वर्णन करती है। द्वीपसागर प्रज्ञप्ति - असंख्यात द्वीप समुद्रों के स्वरूप, उनमें स्थित ज्योतिषी देव, व्यन्तरों और भवनवासी देवों के आवासों में वर्तमान अकृत्रिम जिनालयों का वर्णन करती है। व्याख्याप्रज्ञप्ति-रूपी-अरूपी, जीव-अजीव, द्रव्यों का भव्य और अभव्य भेदों का, उनके प्रमाण और लक्षणों का, अनन्तर सिद्ध और परम्परा सिद्धों का तथा अन्य वस्तुओं का वर्णन करती है।

(2) सूत्र :- 'सूत्रयति' अर्थात् मिथ्यादृष्टि दर्शनों को सूचित करता है, वह

सूत्र है। जीव अबन्धक है, अकर्ता है, निरुण है, अभोक्ता है, स्वप्रकाशक नहीं है, पर प्रकाशक है, जीव अस्ति ही है या नास्ति ही है, इत्यादि क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानी और वैनियिक मिथ्यादृष्टियों के तीन सौ तिरेसठ मतों को पूर्वपक्ष के रूप में कहता है।

(3) प्रथमानुयोग :- प्रथम अर्थात् जो मिथ्यादृष्टि, अप्रतीया या अव्युत्पन्न व्यक्ति के लिए जो अनुयोग रचा गया, वह प्रथमानुयोग है। यह चौबीस तीर्थकर बारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव, नौ वासुदेव, नौ प्रतिवासुदेव, इन तिरेसठ शलाका प्राचीन पुरुषों का वर्णन करता है।

(4) पूर्वगत :- चौदह प्रकार के सम्बन्ध में आगे विस्तार से कहेंगे।

(5) चूलिका :- चूलिका भी पाँच प्रकार की है - जलगता चूलिका, स्थलगता, मायागता, आकाशगता और रूपगता। जलगता चूलिका-जलक स्तम्भन, जल में गमन, अग्नि का स्तम्भन, अग्नि का भक्षण, अग्नि में बैठना, अग्नि में प्रवेश आदि के कारण मंत्र, तंत्र, तपश्चरण आदि का वर्णन करती है। मायागता चूलिका - मायावी रूप, इन्द्रजाल (जादूगरी) विक्रिया के कारण मंत्र, तंत्र, तपश्चरण आदि का वर्णन करती है। रूपगता चूलिका-सिंह, हाथी, घोड़ा, मृग, खरगोश, बैल, व्याघ्र आदि के रूप बदलने में कारण मंत्र, तंत्र, तपश्चरण आदि का तथा चित्र, काष्ठ, लेप, उत्खनन आदि का लक्षण व धातुवाद, रसवाद, खदान आदि वादों का कथन करती है। आकाशगता चूलिका-आकाश में गमन करने में कारण मंत्र, तंत्र, तपश्चरण का कथन करता है।

## चौदह पूर्व

- पूर्वगत चौदह प्रकार का है- 1. उत्पादपूर्व 2. अग्रायणी 3. वीर्यप्रवाद  
 4. अस्तिनास्ति प्रवाद, 5. ज्ञानप्रवाद 6. सत्यप्रवाद 7. आत्मप्रवाद 8. कर्मप्रवाद  
 9. प्रत्याख्यान 10. विद्यानुवाद 11. कल्याणवाद 12. प्राणावाय 13. क्रियाविशाल  
 14. लोकबिन्दुसार।

(1) उत्पाद पूर्व :- काल, पुद्गल, जीव आदि की जिस काल में, जिस क्षेत्र में, जिस पर्याय से उत्पत्ति होती है, उन सबका वर्णन जिसमें है, उसको उत्पाद पूर्व कहते हैं।

(2) अग्रायणी :- जिसमें क्रियावादियों की प्रक्रिया, अग्रणी के समान

अङ्गादि तथा स्वसमय के विषय का विवेचन किया गया है, वह अग्रायणी पूर्व है।

(3) वीर्य प्रवाद :- जिसमें छद्मस्थ और केवलियों की शक्ति, सुरेन्द्र, असुरेन्द्र आदि की ऋद्धि वा नरेन्द्र, चक्रवर्ती, बलदेव आदि के सामर्थ्य और द्रव्यों के समीक्षीन लक्षण आदि का वर्णन है, वह वीर्यप्रवाद है।

(4) अस्तिनास्ति प्रवाद:- जिसमें पाँचों अस्तिकायों (जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश) का और नयों का अस्ति-नास्ति आदि अनेक पर्यायों द्वारा विवेचन है, उसको अस्ति-नास्ति प्रवाद कहते हैं। अथवा-जीवादि छह द्रव्यों का उभय नय के द्वारा वशीकृत, अर्पित (विवक्षित), अनर्पित (अविवक्षित) स्व-पर पर्याय के कारण भाव (विधि), अभाव (निषेध) से जो वर्णन करता है अर्थात् स्व द्रव्य, क्षेत्र, काल की अपेक्षा जीवादि अस्तिरूप हैं और पर द्रव्य, क्षेत्र, काल की अपेक्षा नास्ति रूप हैं, इस प्रकार नय विवक्षा से वस्तु के स्वरूप का वर्णन करता है, वह अस्तिनास्ति प्रवाद है।

(5) ज्ञानप्रवाद :- जिसमें प्रादुर्भाव विषयों के आयतन स्वरूप ज्ञानियों के पाँच ज्ञानों का और अज्ञानियों के विषयों के आयतन इन्द्रियों का विभाग किया जाता है, वह ज्ञान प्रवाद है।

(6) सत्यप्रवाद :- जिसमें वाग्मुप्ति, वचन, संस्कार के कारण वचन प्रयोग, बारह प्रकार की भाषा, वक्ता के अनेक प्रकार, मृषाभिधान और दस प्रकार के सत्य के सद्भाव का वर्णन किया जाता है, वह सत्य प्रवाद है।

(7) आत्मप्रवाद :- जिसमें आत्मा का अस्तित्व, नास्तित्व, नित्यत्व, अनित्यत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि धर्म और षट् जीवनिकाय के भेदों का युक्ति से निरूपण किया गया है-वह आत्मप्रवाद है।

(8) कर्मप्रवाद :- जिसमें कर्मों के बन्ध, उदय, उदीरणा, उपशम आदि दशाओं का तथा जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट आदि स्थिति का तथा प्रदेशों के समूह का वर्णन किया जाता है, वह कर्मप्रवाद है।

(9) प्रत्याख्यान :- जिसमें व्रत, नियम, प्रतिक्रमण, प्रतिलेखन, तप, कल्प, उपसर्ग, आचार, आराधना, विशुद्धि का उपक्रम आदि व मुनियों के आचरण का कारण तथा परिमित, अपरिमित द्रव्य के प्रत्याख्यान आदि का वर्णन है, उसे प्रत्याख्यानपूर्व कहते हैं।

(10) विद्यानुवाद :- जिसमें समस्त विद्याएँ, आठ महानिमित्त, उनका विषय, रज्जु राशिविधि, क्षेत्र, श्रेणी, लोक-प्रतिष्ठा, समुद्रधात आदि का विवेचन है। अङ्गष्ठप्रसेनादि 700 अल्पविद्याएँ और रोहिणी आदि 500 महाविद्याएँ होती हैं।

(11) कल्याणवाद :- जिसमें सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारागणों का गमन, क्षेत्र, उपपादक्षेत्र, शकुन आदि का वर्णन है तथा अर्हत्, बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती आदि का एवं गर्भ, जन्म, तप, केवलज्ञान, मोक्ष इन पञ्चकल्याणकों का वर्णन किया है, वह कल्याणपूर्व कहलाता है।

(12) प्राणावाय :- काय चिकित्सा आदि आठ अङ्ग, आयुर्वेद, भूतिकर्म, जाङ्गलिप्रकम प्राणायाम के विभाग का जिसमें विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाता है, वह प्राणायाम नामक पूर्व है।

(13) क्रियाविशाल :- लेखन क्रिया आदि पुरुषों की 72 कलाओं का, स्त्रियों की 64 कलाओं का तथा शिल्प, काव्य, गुण-दोष, छन्द, क्रिया, क्रिया का फल व उसके भोक्ता आदि का जिसमें विस्तारपूर्वक वर्णन है, वह क्रियाशीलपूर्व है।

(14) लोकबिन्दुसार :- आठ प्रकार का व्यवहार, चार बीज राशि, परिकर्म आदि गणित तथा सारी श्रुत सम्पत्ति का जिसमें विवरण है, वह लोक बिन्दुसारपूर्व है।

## यथार्थ श्रुतज्ञान एवं उसका फल

स्वात्माभिमुख-संवित्ति, लक्षणं श्रुत चक्षुषा,  
पश्यन्यश्यामि देव त्वां केवल ज्ञान-चक्षुषा (1) विमल ज्ञान पृ.374

हे! वीतराग जिनेन्द्र देव! स्वकीय आत्मा के संवेदन रूप लक्षण से युक्त अथवा स्वसंवेदन लक्षणयुक्त आपको श्रुतज्ञान के माध्यम से देखते हुए, आप के सामान्य स्वरूप का चिंतन करता हुआ, मैं आज आपकी साक्षात् केवलज्ञान मण्डित अवस्था का ही दर्शन कर रहा हूँ, ऐसा मुझे अनुभव मे आ रहा है।

जो भव्य जीव श्रुतज्ञान रूप चक्षु से आगम के अनुसार आपकी आराधना करता है, वह केवलज्ञान रूपी चक्षु से सर्व लोक अवलोकन करता है अर्थात् केवलज्ञान को अवश्य प्राप्त करता है।

शास्त्राभ्यासो जिनपति-नुतिः, संगति सर्वदायैः,  
सद्वृत्तानां गुणगुणकथा, दोषवादे च मौनम्।  
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे,  
संपद्यन्ता मम भव भवे यावदेतेऽपर्वर्गः (2)

हे जिनेन्द्र देव! मैं जब तक मुक्त अवस्था को प्राप्त न हो जाऊँ, तब तक प्रत्येक भव में मैं जिनेन्द्र देव कथित सच्चे आगम का अभ्यास करता रहूँ। तब तब आपके चरणों में नतमस्तक हुआ, आपकी स्तुति करता रहूँ, हमेशा साधु मनुष्यों की, आर्य पुरुषों की संगति करता रहूँ। आपके चरणों की आराधना का एकमात्र फल यही हो कि रत्नत्रयधारियों, सदाचारियों के दोषों के कथन में मैं मौन रहूँ। प्राणीमात्र में हितकर प्रिय वचनों से वातालिप करूँ और अन्त में यही प्रार्थना है कि मैं अपने आत्मतत्त्व की भावना मुक्ति-पर्यन्त भाता रहूँ।

जैनमार्ग रुचिरन्यमार्ग निर्वेगता, जिनगुणस्तुतौ मतिः,  
निष्कलंक विमलोक्ति भावनाः, संभवन्तु मम जन्म जन्मनि (3)

हे वीतराग प्रभो! मुक्ति पर्यन्त प्रत्येक भव में मुझ में जिनेन्द्र कथित रत्नत्रय-रूप मुक्ति मार्ग के प्रति अविचल श्रद्धा बनी रहे। एकान्त, मिथ्यामतों में या संसार-मार्ग में मेरी रुचि अत्यन्त दूर रहे। मेरी बुद्धि सदा जिनेन्द्रदेव के अनुपम अतुल गुणों के स्तवन में लगी रहे तथा निर्दोष, निष्कलंक, निर्मल ऐसी जिनेन्द्रवाणी-जिनवाणी मुझे जन्म-जन्म में प्राप्त होती रहे। यह प्रार्थना करता हूँ।

## प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः।

अर्थ-प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग को नमस्कार हो।

शास्त्राभ्यासो जिन-पति-नुतिः संगति: सर्वदायैः,  
सद्वृत्तानां गुण-गण कथा दोष-वादो च मौनम्।  
सर्वस्यापि प्रिय हित वचो भावना चात्म-तत्त्वे,  
सम्पद्यन्तां मम भव-भवे यावदेतेऽपर्वर्गः (1)  
तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पद द्रव्ये लीनम्।  
तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद् यावन् निर्वाण-सम्प्राप्तिः (2)

## अध्याय-4

### शास्त्राध्ययन की सही पद्धति

किन्हीं भी लौकिक या धार्मिक ग्रन्थों को केवल शाब्दिक रूप से पढ़ लेने से याद कर लेना, लिखना अथवा भाषण कर लेना मात्र शास्त्राध्ययन नहीं है, अपरंच स्व-आत्मतत्त्व के परिज्ञान, परिशोधन, परिनिर्माण के लिये योग्य द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में आध्यात्मिक, धार्मिक, नैतिक, सदाचारादि ग्रन्थों को सनम्र सत्यग्राही होकर अध्ययन करना ही यथार्थ से शास्त्राध्ययन है। ‘विद्या ददाति विनयं’ के समान महत्वपूर्ण है ‘विनय ददाति विद्या’ अर्थात् विनय से विद्या की प्राप्ति होती है।

**अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।**

**चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्याशोबलम्: (मनु. 2-121)**

जो अभिवादनशील होकर वृद्ध (ज्ञान, अनुभव-चारित्र से श्रेष्ठ) की सेवा (आज्ञापालन, ज्ञानार्जन, गुणानुकरण) करता है, उसके आयु, विद्या, यश-बल में वृद्धि होती है।

योग्य शुद्ध, प्रासुक, मर्यादित, शाकाहार को दिन में, योग्य समय में योग्य पद्धति से क्षुधा लगने पर क्षुधा के अनुपात ( $3/4$ ) से भोजन करने पर वह भोजन पाचन होकर रसादि रूप से परिणमन करके शारीरिक बलादि के लिए पोषक तत्त्व प्रदान करता है, उसी प्रकार शास्त्राध्ययन में भी योग्य शास्त्रों को योग्य द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावानुसार वाचन के बाद पाचन, (आत्मसात्) करने पर शरीर-मन-आत्मा को पोषक तत्त्व प्राप्त होता है।

**विणयेण सुदमधिदं यदि वा पमादेण होदि विस्सरिदं।  
तं आवहदि पर भवे केवल णाणं आवहदि॥।**

यदि विनय से अध्ययन किया हुआ (आत्मसात् किया हुआ) ज्ञान प्रमाद से भी विस्मरण हो जाता है तो भी वह परभव में प्रकट/उपलब्ध हो जाता है और केवलज्ञान (पूर्णज्ञान, अनन्तज्ञान) को भी प्राप्त करता है। आत्मसात् किया हुआ ज्ञान का संस्कार/प्रभाव बहुत गहराई से आत्मा के ऊपर पड़ता है और वह प्रभाव जन्म-जन्मान्तर तक भी आत्मा के साथ प्रवाहमान होता है। जातिस्मरण ज्ञान, असाधारण ज्ञान, अनुगामी अवधिज्ञान (I क्षेत्रानुगामी II भावानुगामी III अभयानुगामी अवधिज्ञान) पंचकल्याणक से मृक्त तीर्थकरों

(10) विषयानुवाद - विषयानुवाद - विषयानुवाद - विषयानुवाद  
अक्खर-पयत्थ-हीणं मत्ता-हीणं च जं मए भणियं।  
तं खमउ णाणदेवय! मज्जवि दुक्खखखयं कुणउ (3)  
विमलज्ञान प्रबो. पृ.23

हे भगवान्! मुझे जब मोक्ष की प्राप्ति न होवे, तब तक भव-भव में शास्त्रों का पठन-मनन-चिंतन, जिन चरणों को नमन, सज्जनों की संगति, सच्चारित्रवानों के गुणों की कथा, पर-दोष कथन में मौन, विवाद में मौन, सब जीवों के साथ प्रिय व हितकर वचन, अपने आत्मस्वरूप की भावना, इन सबकी मुझे प्राप्ति हो।

हे जिनेन्द्र देव! मुझे जब तक मुक्ति प्राप्त न हो तब तक आपके दोनों चरण-कमल मेरे हृदय में विराजमान रहें, मेरा हृदय आपके चरण कमलों में लीन रहे।

हे केवल ज्योतिमयी ज्ञानदेव! मेरे द्वारा जो भी अक्षर-मात्रा-पद-अर्थ में हीनाधिक कहा गया हो, उसे क्षमा कीजिये और मेरे दुःखों का क्षय कीजिये।

आलोचना : इच्छामि भंते! समाहिभक्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालो चेउं, रयणत्तय सर्व-परमप्प-ज्ञाण-लखण-समाहि-भत्तीए सया णिच्चकाल अच्चेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खखओ, कम्मक्खओ बोहिलाओ सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-सम्पत्ति होदु मज्जं।

हे भगवन्! मैंने समाधिभक्ति का कामोत्सर्ग किया, तत्संबंधी आलोचना करने की मैं इच्छा करता हूँ। मैं रत्नत्रयस्वरूप परमात्मा का ध्यान है लक्षण जिसका, ऐसी समाधि भक्ति की सदा अर्चना, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ, मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय का लाभ हो, सुगति में गमन हो, सम्यक् प्रकार आधिव्याधि-उपाधि रहित समाधिपूर्वक मरण हो, मुझे जिनेन्द्रदेव के गुणरूप सम्पत्ति की प्राप्ति हो।

**श्रीमत्परम-गंभीर, स्याद्वादामोध लाङ्घनम्।**

**जीयात्-त्रेलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनम् (3)**

जो अनेक प्रकार की अन्तरंग लक्ष्मियों से भरपूर है, अत्यन्त गंभीर “स्याद्वाद” ही जिसका सफल निर्विवाद चिह्न है तथा तीन लोकों के अधिपति जो शासन करने वाला है, ऐसा वीतराग अर्हन्तदेव का “जिनशासन” सदा जयवन्त रहे।

के गर्भ से ही तीन ज्ञान (मति-श्रुत-अवधि) आदि कुछ ज्ञान पूर्व भव के प्रवाहमान से आगत-ज्ञान के कुछ उदाहरण हैं। आचार्य कुन्द कुन्द, पंचकल्पाणों से मुक्ततीर्थक, महात्मा बुद्ध आदि कुछ व्यक्तिपरक उदाहरण हैं। इसी प्रकार जो ज्ञानदान (निस्वार्थ भाव से ख्याति-पूजा-लाभ से रहित अध्यापन, प्रवचन, शिविर, संगोष्ठी, धर्म ग्रन्थों के प्रकाशन-दान-वितरण, ज्ञान का प्रचार-प्रसारादि) करते हैं, उन्हें भी उपर्युक्त लाभ के साथ-साथ पुण्यलाभ, इह लोक-परलोक-मोक्ष सुख प्राप्त होते हैं।

यो ज्ञान दानं कुरुते मुनीनां सदेवलोकस्य सुखानि भृते।  
राज्य च सत्केवलबोधलब्धिं लब्ध्वा स्वयं मुक्तिपदं लभेत्॥

जो मुनियों के लिये ज्ञानदान करता है, वह स्वयं स्वर्गलोक से सुख भोगकर राज्य को प्राप्त करता है और केवलज्ञान को प्राप्त करता है, स्वयं मोक्ष पद को प्राप्त करता है।

ज्ञानवान् ज्ञानदानेन निर्भयोऽभयदानतः।  
अन्नदानात्सुखी नित्यं निर्वाधि भेषजाद् भवेत्॥

ज्ञानदान से दानी ज्ञानवान् बनता है, अभयदान देने से दानी निर्भय बनता है, अन्नदान से दानी नित्य सुखी रहता है, औषधि दान से दानी निरोग शरीर को धारण करता है।

## 8 प्रकार के ज्ञानाचार

तथ्य णाणायारो :- काले, विण्ये, उवहाणे, बहुमाणे तहेव अणिहवणे, विजण अत्थ, तदुभये चेदि, णाणायारो अटुविहो परिहाविदो, से अखरहीणं वा, सरहीणं वा, पदहीणं वा, विंजणहीणं वा, अथहीणं वा, गंथहीणं वा, थएसु वा, थुइसु वा, अत्थक्खाणेसु वा, अणियोगेसु वा, अणियोगदारेसु वा, अकाले वा, सज्जाओ कदोवा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमणिदो, काले वा, परिहाविदो, अच्छाकारिदंवा, मिच्छामेलिंद, आमेलिंद वा, मेलिंद, अण्णहा दिण्हं, अण्णहापडिच्छिं, आवासएसु परिहीणदाए, तस्स मिच्छा मे दुकडं (प्रतिक्रमण पृ. 233)

उस पांच प्रकार के आचार में पहला ज्ञानाचार है, उसके (1) मतिज्ञान (2) श्रुतज्ञान (3) अवधिज्ञान (4) मनःपर्ययान और (5) केवलज्ञान। इस प्रकार ज्ञान के पांच भेद होते हुए भी यहां पर श्रुतज्ञान का ही ग्रहण है, क्योंकि

उसी का कालादि आठ प्रकार के आचरण संभव है। श्रुतज्ञानाचार आठ प्रकार का है।

(1) कालाचार :- सन्ध्या, सूर्य का या चन्द्र का ग्रहण, उल्कापात (वज्रपात या तारों का टूटना) आदि अकालों को छोड़कर गोसर्गिक प्रादोषिक कालों में शास्त्र का पठन-पाठन, श्रवण (सुनना), चिन्तन, परिवर्तन, व्याख्यानादि करना, कालाचार है।

(2) विनयाचार :- पर्याकादि सुखासनों से बैठकर कायिक (काय सम्बन्धी), वाचिक (वचन सम्बन्धी) शुद्ध परिणामों में पठन-पाठन आदि करना, विनयाचार है।

(3) उपधानाचार :- अवग्रह (नियम) विशेषपूर्वक पठन-पाठनादि करना, उपधानाचार हैं

(4) बहुमानाचार :- गन्ध-पुष्प आदि अष्ट द्रव्य पूजा और सिद्धभक्ति श्रुतभक्ति और गुरुभक्ति रूप भावपूजा, पूर्वक पठन (पठना) एवं पाठन (पढ़ाना) आदि करना, बहुमानाचार है।

(5) अनिह्वाचार :- जिस गुरु से पढ़ा है उस गुरु का नाम न छिपाकर उसी का नाम कहना या जिस शास्त्र को पढ़कर जानी हुआ है, उसे न छिपाकर उसी शास्त्र का नाम बताना, अनिह्वाचार है।

(6) व्यंजनाचार :- वर्ण, पद, वाक्य की शुद्धिपूर्वक शास्त्रों का पठन-पाठनादि व्यंजनाचार है।

(7) अर्थाचार :- अर्थ के अनुकूल पठन-पाठनादि करना, अर्थाचार है।

(8) उभयाचार :- शब्द और अर्थ की शुद्धि पूर्वक पठन-पाठनादि करना, उभयाचार है।

1. काल 2. विनय 3. उपधान 4. बहुमान 5. अनिह्व 6. व्यंजनशुद्ध
7. अर्थशुद्ध 8. उभयशुद्ध इस प्रकार 8 प्रकार का ज्ञानाचार है। उनका अनेक तीर्थकरों देवों के गुणों का वर्णन करने वाले स्तवनों में एक तीर्थकर के गुणों का वर्णन करने वाले स्तुतियों में चारित्र और पुराण रूप अर्थात्यानों में प्रथमानुयोग, करणानुयोग और द्रव्यानुयोग, इन चार अनुयोगों में कृति, वेदना आदि चौबीस अनुयोग द्वारों में (क) स्वरहीन (ख) सुबन्ततिऽन्तपद से हीन (ग) ककारादि व्यंजन हीन (घ) अर्थहीन (ङ) वाक्य, अधिकारादि रहित,

ग्रन्थहीन, पठन-पाठनादि करके परिहायन क्रिया, (आवश्यकता में कमी की), संध्या, ग्रहण, उल्कापातादि, अस्वाध्याय काल में आगम (सिद्धान्त) का स्वाध्याय किया, कराया और दूसरे को करते हुए की अनुमोदना की, आगम में विहित (बतलाये हुए) गोसंगिकादि-काल में स्वाध्याय नहीं किया, बिना बिचारे श्रुत का जल्दी-जल्दी उच्चारण किया, किसी अक्षर या शब्द को किसी अविद्यमान अक्षर या शब्द के साथ मिलाया, शास्त्र के अन्य अवयव को किसी अन्य अवयव के साथ जोड़ा, उच्चध्वनियुक्त पाठ को नीचध्वनि वाले पाठ के साथ और नीचध्वनियुक्त पाठ को उच्चध्वनि वाले पाठ के साथ जोड़कर पढ़ा, अन्यथा कहा, अन्यथा ग्रहण किया, छह आवश्यकों में उनके कालानुसार अनुष्ठान कर परिहीनता (कमी) करके ज्ञानाचार का परिहापन किया, उस ज्ञानाचार परिहापन सम्बन्धी मेरे दुष्कृत में विफलता हो।

## 10 (दस) प्रकार के अस्वाध्याय काल

परिणामादि का ज्ञान स्वाध्याय पर निर्भर है और स्वाध्याय वही सफल होता है जो उचित समय पर किया जाता है।

स्वाध्याय के लिए कौन सा समय अनुचित है? अब सूत्रकार इसी जिज्ञासा को शान्त करते हुए कहते हैं-

स्वाध्याय पाँच प्रकार का होता है, जैसे कि वाचना, पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा। इन में मुख्यता वाचना, परिवर्तना और धर्मकथा का ही अस्वाध्याय जानना चाहिए न कि अर्थ आदि की पृच्छना और अनुप्रेक्षा का। आकाश-सम्बन्धी अर्थात् प्राकृतिक कारणों की दृष्टि से अस्वाध्याय दस प्रकार का वर्णन किया गया है। उसका विवरण निम्नलिखित है, जैसे कि-

(1) **उल्कापात** - जब आकाश में से गिरता हुआ तेज पूँज दिखायी देता है, जिसको लोक भाषा में तारा टूटना कहते हैं। उल्कापात होने पर एक प्रहर तक स्वाध्याय करना निषिद्ध है।

(2) **दिग्दाह** - दिशाओं में दाह का होना। किसी दिशा में महानगर जलने की तरह ऊपर प्रकाश और नीचे अन्धकार दिखलाई देता है, वही दिग्दाह कहलाता है। जब तक दिशा में लालिमा रहे, तब तक स्वाध्याय नहीं करना निषिद्ध है।

(3) **गर्जित** - आकाश में गर्जना का होना। भगवती सूत्र शतक 3,

उ. 7वें में लिखा है कि “गह गज्जिए” इसका अर्थ है- ग्रहों की गति विशेष से होने वाली कइकड़ाहट या गर्जना। बादल गर्जने पर दो प्रहर पर्यन्त अस्वाध्याय काल माना गया है।

(4) **विद्युत** - प्रावृद्धकाल को छोड़कर जब आकाश में बिजली चमक रही हो, तब एक प्रहर तक अस्वाध्याय काल रहता है।

(5) **निर्धात** - आकाश में बादलों के होने या न होने पर घोर गर्जना का होना निर्धात कहलाता है। यह भी स्वाध्याय के लिए वर्जित है।

(6) **यूपक** - सन्ध्या की प्रभा का और चन्द्र की प्रभा का जिस काल में सम्मिश्रण हो, उसे यूपक काल कहते हैं। शुक्ल पक्ष की एकम, दूज और तीज की रात को एक-एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

(7) **यक्षादीप्त** - आकाश में कभी-कभी बिजली के समान चमकता हुआ यक्ष दिखाई देता है अथवा व्यंतर देवकृत अग्नि दीपन को भी यक्षादीप्त कहते हैं। वह जब तक दीखता रहे, तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

(8) **धूमिका** - इसका अर्थ है धुएँ जैसी काली धुन्ध, जिससे अन्धेरा छा जाता है। जब तक धूमिका रहे तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

(9) **महिका** - सफेद धुन्ध, तुषार का गिरना। धूमिका और महिका कार्तिक आदि मासों में गिरती है और गिरने के बाद ही सूक्ष्म होने के कारण अप्काय स्वरूप हो जाती है।

(10) **रज-उद्धात** - जब दिशाएँ और आकाश धूलि से भरे हुए हों, आँधी चल रही हो, रेणु की वर्षा हो रही हो, रेता आकाश में चढ़ा हुआ हो, तब उतनी देर स्वाध्याय नहीं करना चाहिए, जब तक कि रजोवृष्टि होती रहे।

इन दस अस्वाध्यायों के समय को छोड़कर ही सूत्र स्वाध्याय करना चाहिये, क्योंकि इन अस्वाध्याय के समयों में स्वाध्याय करने से कभी-कभी व्यंतर जाति के देव कुछ उपद्रव भी कर देते हैं। अतः अस्वाध्यायकाल में स्वाध्याय कब नहीं करना चाहिए। निर्धात होने पर एक अहोरात्र तक अस्वाध्याय रहता है।

शास्त्राकार का यह अभिप्राय भी हो सकता है कि उल्कापात आदि के मानसिक एवं बौद्धिक स्थिरता नहीं रह जाती है और बुद्धि तथा मन के अस्थिर होने पर स्मृति-भ्रंश हो जाता है। स्मृति-भ्रंश अवस्था का स्वाध्याय

निष्कल ही रहता है।

औदारिक अर्थात् स्थूल शरीर से संबन्धित अस्वाध्याय भी दस प्रकार का होता है, जैसे कि-

1. अस्थि - जहाँ पर हड्डियाँ पड़ी हों, वहाँ स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

2. मांस - जहाँ पर किसी भी जीव के शरीर का मांस पड़ा हो, वहाँ पर स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

3. शोणित - जिस जगह पर रुधिर से भूमि सनी हुई हो, उस स्थान पर भी स्वाध्याय नहीं करना चाहिए। यदि ये अशुचि पदार्थ सौ हाथ के भीतर-भीतर हों, तब तक अस्वाध्याय-काल माना जाता है। सौ हाथ से यदि उक्त घृणास्पद पदार्थ दूर हों, तो अस्वाध्याय काल नहीं माना जाता।

4. अशुचिसामंत - आस-पास मल-मूत्र होने पर भी अस्वाध्याय होता है। जहाँ तक अशुचि पदार्थ दृष्टिगोचर होते हों या उनकी दुर्बन्ध आती हो, वहाँ तक अस्वाध्याय माना जाता है।

5. श्मसान - श्मसान भूमि से 100 हाथ भीतर किसी स्थान पर स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

6. चन्द्रग्रहण - ग्रहण काल से ही अस्वाध्याय काल प्रारम्भ हो जाता है। स्वल्प ग्रहण लगे तो 4 प्रहर, आधे से कुछ अधिक लगे तो 8 प्रहर तथा यदि परिपूर्ण ग्रहण लगे तो 12 प्रहर तक अस्वाध्याय काल माना जाता है।

7. सूर्य ग्रहण - थोड़ा ग्रहण लगे तो 8 प्रहर, अधिक लगे तो 12 प्रहर और परिपूर्ण लगे तो 16 प्रहर का अस्वाध्याय काल माना गया है। चन्द्र और सूर्य तथा राहु का विमान पृथिवी-कायिक होने से इनकी गिनती औदारिक सम्बन्धी अस्वाध्याय में की गई है। चन्द्र का राहु के साथ या सूर्य के केतु के साथ योग मिलने से अस्वाध्याय होता है।

8. पतन - किसी राष्ट्रीय नेता का देहावसान होने पर अस्वाध्याय काल माना जाता है। जब तक धरों में, बाजारों में तथा कायलियों, विद्यालियों एवं अदालतों में कार्य बन्द रहता है, तब तक अस्वाध्याय काल माना जाता है। वातावरण शान्त होने पर ही स्वाध्याय करना चाहिए।

9. राज विग्रह - जिस देश से जितने समय तक राजा आदि का संग्राम चलता रहे, तब तक अस्वाध्याय रहता है।

10. शव - जहाँ किसी का शव अर्थात् मुर्दा पड़ा हो तो 100 हाथ तक अस्वाध्याय काल रहता है।

उक्त दशविध अस्वाध्याय काल का निर्देश भी मानसिक अस्थिरता और बौद्धिक अस्थिरता के कारण ही माना गया है।

स्थानांग सूत्र - 10 पृ. 716 भाग-2

### ज्ञान विनय का लक्षण

णाणे णाणुवयरणे य णाणवंतम्मि तह य भत्तीए।

जं पडियरणं कीरइ णिच्चं तं णाणविणओ हु ॥३२२॥

ज्ञान में, ज्ञान के उपकरण, शास्त्र आदि में तथा ज्ञानवंत पुरुषों में भक्ति के साथ नित्य जो अनुकूल आचरण किया जाता है, वह ज्ञान विनय है।

व्याख्या - प्रस्तुत गाथा में यह बात स्पष्ट हो गयी है कि ज्ञान के साथ- साथ उससे संबंधित उपकरण और ज्ञानवान् पुरुष भी विनय के पात्र हैं। इस सबकी विनय करना, ज्ञान विनय है।

काले विणये उवहाणे, वहुमाणे तहेव णिणहवणे।  
वंजण-अथ-तदुभए विणओ णाणम्मि अद्विहो॥

(भगवती आराधना - 113)

काल, विनय, उपधान, बहुमान, अनिहव, व्यंजन, अर्थ, तदुभय से ज्ञानविनय के आठ भेद हैं। मूलाचार आदि ग्रंथों में इन सबका पृथक्-पृथक् विवेचन भी किया है, उन्हें वहीं से जान लेना चाहिये।

सबहुमानं मोक्षार्थं ज्ञानग्रहणाभ्यासस्मरणादिर्जनं विनयः।

(सर्वार्थसिद्धि 1 / 23)

अर्थात् बहुत आदर के साथ मोक्ष के लिए ज्ञान का ग्रहण करना' अभ्यास करना और स्मरण करना आदि ज्ञान विनय है।

अनलसेन शुद्धमनसा देशकालादि-विशुद्धि-विधानविचक्षणेन सबहुमानो यथाशक्ति-निषेद्यमाणो मोक्षार्थं ज्ञानग्रहणाभ्यासं-स्मरणादि-र्जनविनयो वेदितव्यः। (राजवर्तिक 1 / 23)

अर्थात् आलस्य रहित हो देशकालादि की विशुद्धि के अनुसार शुद्धचित्त से बहुमानपूर्वक यथाशक्ति मोक्ष के लिए ज्ञानग्रहण अभ्यास और स्मरण आदि करना, ज्ञान विनय है।

णाणं सिक्खदि णाणं गुणेदिणाणं परस्स उवदिसदि।

णाणेण कुणदि णायं णाणविणीदो हवदिएसो॥१५/१७ (मूलाचार)

ज्ञान को सीखना, उसी का चिन्तवन करना, दूसरा को भी उसी का उपदेश देना तथा उसी के अनुसार न्यायपूर्वक प्रवृत्ति करना, यह सब ज्ञान विनय है।

## अध्ययन में विनय

काले विणए उवहाणे बहुमाणे तहेव णिण्हवणे।

वंजणअथतदुभयं विणओ णाणम्हि अट्ठविहो। (मूलाचार 367)

द्वादशांग और चतुर्दश पूर्वों को कालशुद्धि से पठना, व्याख्यान करना अथवा परिवर्तन-फेरना, कालविनय है। उन्हीं ग्रन्थों का (या अन्य ग्रन्थों का) हाथ पैर धोकर पर्याकामन से बैठकर अध्ययन करना विनयशुद्धि नाम का ज्ञान विनय है। नियम विशेष लेकर पढ़ना उपधान है। जो ग्रन्थ पढ़ते हैं और जिनके मुख से सुनते हैं, उस पुस्तक और उन गुरु इन दोनों की पूजा करना और उनके गुणों का स्तवन करना बहुमान है। उसी प्रकार से जिस ग्रन्थ को पढ़ते हैं और जिनसे पढ़ते हैं, उनका नाम कीर्तित करना अर्थात् उस ग्रन्थ का उन गुरु के नाम को नहीं छिपाना, यह अनिहव है। शब्दों का शुद्ध पढ़ना, व्यञ्जन शुद्ध विनय है। अर्थ शुद्ध करना, शुद्ध विनय है और इन दोनों को शुद्ध रखना व्यंजनार्थ उभयशुद्ध विनय है। इन न्याय से ज्ञान विनय आठ प्रकार से करना चाहिए।

## ज्ञान की विशेषता

णाणं सिक्खदि णाणं गुणेदि णाणं परस्स उवदिसदि।

णाणेण कुणदि णायं णाणविणीदो हवदि एसो॥ (368)

ज्ञान विद्या को प्राप्त करता है। ज्ञान अवगुण को गुणरूप से परिवर्तित करता है। ज्ञान पर उपदेश का प्रतिपादन करता है। ज्ञान से न्याय सत्प्रवृत्ति है, वह ज्ञानविनीत होता है।

प्रश्न - दर्शनाचार और दर्शन विनय में क्या अन्तर है? उसी प्रकार ज्ञानाचार और ज्ञानविनय में क्या अन्तर है?

उत्तर - शंकादि परिणामों के परिहार में प्रयत्न करना और उपगूहन आदि गुणों के अनुष्ठान में प्रयत्न, दर्शनविनय है। पुनः शंकादि के अभावपूर्वक तत्त्वों के श्रद्धान में यत्न करना दर्शनाचार है। उसी प्रकार कालशुद्धि आदि विषय अनुष्ठान में प्रयत्न करना, काल आदि विनय है तथा द्रव्य, क्षेत्र और भाव आदि के विषय में प्रयत्न करना यह सब ज्ञानाचार है। काल शुद्धि आदि के होने पर श्रुत के पठने का प्रयत्न करना, ज्ञान विनय है और श्रुत के उपकरणों में अर्थात् ग्रन्थ, उपाध्याय आदि में प्रयत्न करना श्रुतविनय है। उसी प्रकार से जो तप से अज्ञानतम को दूर करता है और आत्मा को मोक्षमार्ग के समीप करता है, वह तपोविनय है और नियमितमति होना है, वह भी तप का विनय है, ऐसा जानना चाहिए।

## औपचारिक विनय

काइयवाइयमाणसिओ ति अ तिविहो दु पंचमो विणओ।

सो पुण सब्बो दुविहो पच्चक्खो तह परोक्खो य॥ (372)

काय से होने वाला कायिक है, वचन से होने वाला वाचिक और मन से होने वाला मानसिक विनय है। जो स्वर्ग मोक्षादि में विशेष रूप से ले जाता है, वह विनय है। इस तरह औपचारिक नामक पाँचवा विनय तीन प्रकार का है अर्थात् काय के आश्रित, वचन के आश्रित और मन के आश्रित से यह विनय तीन भेद रूप है।

यह तीनों प्रकार का विनय, प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से दो प्रकार है।

अर्थात् प्रत्यक्ष विनय के तीन भेद हैं और परोक्ष के भी तीन भेद हैं। जब गुरु प्रत्यक्ष में हैं, चक्षु आदि इन्द्रियों के गोचर हैं, तब उनका विनय प्रत्यक्ष विनय है तथा जब गुरु चक्षु आदि से परे हैं तब उनकी जो विनय की जाती है, वह परोक्ष विनय है।

## कायिक विनय का स्वरूप

अब्भुट्ठाणं किदिअम्मं णवणं अंजलीय मुंडाणं।

पच्चूगच्छणमेते पछिदस्त्तणसाहणं चेव॥ (373) (मूलाचार)

मुण्ड अर्थात् ऋषियों को सामने देखकर आदरपूर्वक आसन से उठकर खड़े हो जाना, क्रियाकर्म, सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, गुरुभक्तिपूर्वक कार्योत्सर्ग आदि करके वन्दना करना, अंजलि जोड़कर सिर झुका कर नमस्कार करना, नमन है। यहाँ मुण्ड का अर्थ ऋषि है अथवा 'मुण्ड' का अर्थ सामान्य वन्दना है। अर्थात् भक्ति पाठ के बिना नमस्कार करना मुण्ड वन्दना है। जो साधु सामने आ रहे हैं, उनके सम्मुख जाना, प्रस्थान करने वाले के पीछे-पीछे चलना। तात्पर्य यह है कि साधुओं का आदर करना चाहिए। उनकी प्रति भक्ति पाठ करते हुए कृतिकर्म करना चाहिये तथा उन्हें अंजलि जोड़कर नमस्कार करना चाहिये। साधुओं के आते समय सम्मुख जाकर स्वागत करना चाहिये और उनके प्रस्थान करने पर कुछ दूर पहँचाने के लिये उनके पीछे-पीछे जाना चाहिये।

णीचं ठाणं णीचं गमणं णीचं च आसणं सयणं।  
आसणदाणं उवगरणदाणं ओगासदाणं च (374) (मूलाचार)

देव और गुरु के सामने नीचे खड़े होना (विनय से एक तरफ खड़े होना), गुरु के साथ चलते समय उनके बायें चलना या पीछे चलना, गुरु के नीचे आसन रखना अथवा पीठे पाटे आदि आसन को छोड़ देना, गुरु को आसन आदि देना। उनके लिए आसन देकर उन्हें विराजने के लिए निवेदन करना। उन्हें पुस्तक, कमण्डलु, पिच्छिका आदि उपकरण देना, बसतिका या पर्वत की गुफा आदि प्रासुक स्थान अन्वेषण करके गुरु को उनमें ठहरने के लिये निवेदन करना अथवा 'नीच स्थान' का अर्थ यह है कि गुरु सहधर्मी मुनि अथवा अन्य कोई व्याधि ग्रसित मुनि के प्रति हाथ पैर संकुचित करके बैठना। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक प्रवृत्ति में विनम्रता रखना।

पडिरुव कायसंफासणदा च पडिरुपकालकिरिया य।  
पेसणकरणं संथरकरणं उवकरण पडिलिहणं॥ (375)

गुरु के शरीर, बल के योग्य शरीर का मर्दन करना अथवा उनके शरीर में तैल मालिश करना उष्ण काल में शीत क्रिया, शीतकाल में उष्ण क्रिया करना और वर्षाकाल में उस ऋतु के योग्य क्रिया करना अर्थात् गुरु की सेवा आदि ऋतु के अनुकूल और उनकी प्रकृति के अनुकूल करना। उनके आदेश का पालन करना, उनके लिए संस्तर अर्थात् चटाई, घास, पाटा आदि लगाना, उनके पुस्तक, कमण्डलु आदि उपकरणों की ठीक तरफ से पिच्छिका को प्रति लेखन करके उन्हें देना।

इच्छेवमादिओ जो उवयारो कीरदे सरीरेण।  
एसो काइयविणओ जहारिहं साहुवग्गस्स॥ (276)

इसी प्रकार से अन्य और भी उपकार गुरु या साधु वर्ग का, शरीर के द्वारा योग्यता के अनुसार किया जाता है, वह सब कायिक विनय हैं, क्योंकि यह काय के आश्रित है।

### वाचिक विनय का स्वरूप

पूयावयणं हिदभासणं मिदभासणं च मधुरं च।  
सुताणुवीचिवयणं अविट्ठुरमकक्षं वयणं॥ (377)

आप भट्टारक! इत्यादि प्रकार बहुवचन का उच्चारण करना, पूजा वचन है। हितपथ्य वचन बोलना अर्थात् इस लोक और परलोक के लिए धर्म के कारणभूत वचन हितवचन है। मित परिमित बोलना जिसमें अल्प अक्षर हों किन्तु अर्थ बहुत हों, मित वचन है। मधुर मनोहर अर्थात् कानों को सुखदायी वचन मधुर वचन हैं। आगम के अनुकूल बोलना कि जिस प्रकार से पाप न हो सूत्रानुविच वचन है। तुम जलो, मरो, प्रलय को प्राप्त हो जाओ इत्यादि शब्दों से रहित वचन, अनिष्टुर वचन हैं। कठोरता रहित वचन अकर्कश वचन हैं अर्थात् उपर्युक्त प्रकार के वचन बोलना ही वाचिक विनय है।

उवसंतवयणमगिहत्थवयणमकिरियमहीलणं वयणं।  
एसो वाइयविणओ जहारिहं होदि कादब्बो॥ (378) (मूलाचार)

क्रोध, मान आदि से रहित वचन उपशांत वचन है। गृहस्थों के जो अभद्र आदि रूपवचन हैं, उनसे रहित वचन तथा बन्धन, त्रासन, ताइन आदि रहित वचन अगृहस्थ वचन है। असि, मषि, कृषि, आदि क्रियाओं रहित वचन अक्रिय वचन है अथवा सक्रिय, ऐसा भी पाठ है, जिसका अर्थ यह है कि क्रियायुक्त वचन बोलना, किन्तु अन्य की चिन्ता और अन्य के दोष रूप वचन नहीं बोलना चाहिये। जैसा करना, वैसा ही बोलना चाहिये। किसी का तिरस्कार करने वाले वचन नहीं बोलना, अहीलन वचन हैं और भी ऐसा वचन जहाँ होते हैं, वह सब वाचिक विनय है जो कि यथायोग्य करना चाहिये।

### मानसिक विनय का स्वरूप :

पापविसोत्ति अपरिणामवज्जनं पियहिदे य परिणामो  
णादब्बो संवेदेणेसो माणिसिअ विवओ॥ (379)



## अध्याय-५

### स्वाध्याय से तन-मन-आध्यात्मिक स्वास्थ्य एवं विकास

सत्साहित्यों का आत्म कल्याण के लिए अध्ययन करना स्वाध्याय है। स्वाध्याय से हिताहित का विवेक होने से अहित का परिहार होता है, हित का ग्रहण होता है। स्वाध्याय से क्षयोपशम बढ़ता है जिससे ज्ञान बढ़ता है, भावों में निर्मलता आती है, भोग, विषय, कषाय, दूषित भाव से जीव बचता है। स्वाध्याय में शरीर स्थिर रहता है, चक्षु शब्द देखने में लीन रहते हैं, कर्ण शब्द श्रवण में प्रवृत्त होता है, मन तत्त्व चिंतन में लीन रहता है। इसलिए स्वाध्याय को परमं तप कहा है और इससे असंख्यातगुणी पापकर्मों की निर्जरा होती है एवं सातिशय पुण्य कर्म का बंध भी होता है। स्वाध्यायशील व्यक्ति अन्य साधारण व्यक्ति से अधिक विवेकी, शालीन, नम्र, सरल, सत्यग्राही, धर्मशील, पापभीरु होता है।

स्वाध्याय केवल शुद्ध आगम अर्थात् द्रव्यश्रुत को पढ़ते रहना स्वाध्याय नहीं है, परन्तु द्रव्य श्रुत के माध्यम से भाव श्रुत द्वारा स्व आत्म-द्रव्य का अध्ययन करना, जानना, शोध करना, प्राप्त करना ही यथार्थ स्वाध्याय है।

**प्रज्ञातिशय, प्रशस्ताध्यवसायः, परमंतवमस्तपो वृद्धिरतिचार  
विशुद्धि रित्येव मार्यर्थः। (राजवार्तिक)**

प्रज्ञा में अतिशय लाने के लिए, अध्यवसाय को प्रशस्त करने के लिए, परम संवेग के लिए, तपवृद्धि, अतिचार, शुद्धि के लिए (संशयोच्छेद व परवादियों की शंका का अभाव) आदि के लिए स्वाध्याय तप आवश्यक है।

**दब्ब सुयादो भावं भावदो होई सब्ब सण्णाणं।  
संवेयण वित्ति केवलणाण तदो भणियो॥**

गाहिओ सो सुदणाणो पच्छा संवेयणण कायव्वो।

जो णहु सुदम बलंहाइ सो मुज्जइ अप्प संब्भावो ॥(34 नयचक्र)

द्रव्य श्रुत से भावश्रुत होता है। भाव श्रुत से भेद विज्ञान होता है। उससे संवेदन, आत्मसंविति और केवलज्ञान होता है। पहले श्रुतज्ञान के द्वारा आत्मा

को ग्रहण करके संवेदन के द्वारा उसका ध्यान करना चाहिए। जो श्रुत ज्ञान का अवलंबन नहीं होता है, वह आत्म स्वभाव में मूढ़ रहता है।

**जिणवयण मोसदमिणं विसय सुहं विरेयणं अमिद भूयं।  
जर मरण वाहि हरणं खयकरणं सब्बदुक्खाणं। (दंसण पाहुड)**

यह जिन वचन रूप औषधि इन्द्रिय विषय से उत्पन्न सुख को करने वाला है तथा जन्म मरण रूप रोग को दूर करने के लिए अमृत सदृश है और सर्व दुःखों के खय का कारण है।

**शास्त्रं वदोडे शांति सैरने निगर्व नीति मेल्वातु मुक्ति स्त्री चिंते।  
निजात्म चिंतने निल वेलक तेलुदा शास्त्रदिं।।  
दुस्त्रीचिंतने दुर्मुखं कलहमुं गर्व मनंगों ददें।**

**शास्त्र शस्त्रमें शास्त्रिकनला रत्नाकराधीस्वरा॥। कन्नड काव्य।**

शास्त्र का ज्ञान प्राप्त कर शांति और सहिष्णुता को धारण करना, अंहकार से रहित होना, धार्मिक बनना, मृदु बातें करना, मोक्ष चिंता तथा स्वात्म चिंता में निरत रहना, श्रेष्ठ कर्तव्य है। इसके विपरीत शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त कर स्त्रियों की चिंता, क्रोध, मान, माया आदि से विकसित स्पर्धा और अंहकार के उपयोग से शास्त्र शस्त्र बन जाता है और शास्त्रज्ञ भी शस्त्रधारी हो जाते हैं। अभिप्राय यह है कि शास्त्र ज्ञान का उपयोग आत्महित के लिए करना चाहिए।

**सतत अध्ययनशीलता से लाभ :**

णिउणं विउलं सुद्धं णिका चिद मणुत्तरं च सब्बहिदं।

**जिणवयणं कलुसहरं अहो य रत्ती य पठिदव्वं॥। (98 भ.आ.)**

निपुण, विपुल, शुद्ध, अर्थ से पूर्ण, सर्वोक्षिष्ट और सब प्राणियों का हित करने वाला द्रव्य कर्म, भाव कर्म रूपी मल का नाशक जिनवचन, दिन-रात पढना चाहिए।

जिनवचन रात-दिन पढना चाहिए। किस प्रकार जिनवचन पढना चाहिए? इसके उत्तर में कहते हैं-जो निपुणा हो अर्थात् जीवादि पदार्थों का प्रमाण और नय के अनुसार निरूपण करने वाला हो, पूर्वापि विरोध पुनरुक्तता आदि बत्तीस दोषों से रहित होने से शुद्ध हो। विपुल हो अर्थात् निष्क्रेप, निरुक्त, अनुयोगद्वार और नय इन अनेक विकल्पों से जो जीवादि पदार्थों का विस्तार

से निरूपण करता है। निकाचित अर्थात् अर्थ से भरपूर हो। अनुत्तर अर्थात् जिससे कोई उत्तर यानी उत्कृष्ट न हो। दूसरों के वचन पुनरुक्त, निरर्थक, बाधित और प्रमाण विरुद्ध है, अतः उनसे जिनवचन उत्कृष्ट हैं क्योंकि जो गुण उनमें सम्भव नहीं हैं उन गुणों से युक्त हैं।

सब प्राणियों का हितकारी है। दूसरों के मत तो किन्हीं की ही रक्षा सूचित करते हैं। ज्ञानावरण आदि द्रव्यकर्म और अज्ञानादि भाव मल का विनाश करने से जिनवचन पाप हरने वाला है। उसे रात-दिन पढ़ना चाहिए इससे निरन्तर अध्ययन करना सूचित किया है।

### जिनवचन की शिक्षा में गुण :

आदहिदपइण्णा भाव संवरो णवयबो य संवेगो।

णिक्कपदा तवो भावणा य परदेसि गतं च॥ (99) (भ.आ.)

आत्म हित का ज्ञान होता है। भाव संवर होता है। नवीन-नवीन संवेग होता है, रत्नत्रय में निश्चलता होती है। स्वाध्याय तप होता है और भावना होती है और दूसरों को उपदेश करने की क्षमता होती है।

जिनवचन के पढ़ने से आत्महित का परिज्ञान होता है। इन्द्रिय सुख अहितकर है, उसे लोग हितकर ग्रहण करते हैं। इन्द्रिय सुख दुःख का प्रतिकार मात्र है, अल्पकाल तक रहता है। पराधीन है, राग का सहकारी है, दुर्लभ है, भयकारी है, शरीर का आभासमात्र है, अपवित्र शरीर के स्पर्श से उत्पन्न होता है। उसको यह अज्ञानी सुख मानता है। समस्त दुःखों के विनाश से उत्पन्न हुआ स्वास्थ्य आत्मा में स्थिति भाव स्थायी सुख है, यह नहीं जानता। वह सुख जिनवचन के अभ्यास से प्राप्त होता है। भाव अर्थात् परिणाम का संवर अर्थात् निरोध भाव संवर है।

### ज्ञान से आत्महित परिज्ञान :-

णाणेण सव्वभावा जीवाजीवा सवादिया तथिगा।

णज्जदि इह परलोए अहिदं च तहा हियं चेव॥ (100)

ज्ञान के द्वारा जीव, अजीव, आस्त्र आदि सब पदार्थ तथ्यभूत जाने जाते हैं। उसी प्रकार से इस लोक और परलोक में अहित और हित जाना जाता है।

‘आत्महित परिज्ञा’ इस पद में तो हित को ही सूचित किया है। जीवादि के परिज्ञान को तो सूचित नहीं किया है तब पहले कहे गये हित का कथन न करके जीवादि परिज्ञान का व्याख्यान क्यों किया है?

आत्महित परिज्ञान का अर्थ आत्मा और हित का परिज्ञान लिया है, ‘आत्मा का हित’ अर्थ नहीं लिया है। अतः जीवादि का व्याख्यान करना युक्त है।

ऐसा अर्थ करने पर भी जीव का ही निर्देश किया है, तब अजीव आदि का उपन्यास क्यों किया है।

आत्म शब्द अजीवादि का उपलक्षणरूप होने से कोई दोष नहीं है। क्योंकि ‘जीवाजीवा’ इत्यादि सूत्र में जीव का प्रथम निर्देश प्रसिद्ध है, उससे आगे के अजीवादि का उपलक्षण किया है। अथवा आत्मा का ज्ञान हुए बिना उसके हित को जानना कठिन है। आत्मा का परिणाम हित है और वह स्वास्थ्य है। अतः स्वास्थ्य का ठीक ज्ञान होने पर स्वास्थ्य का सम्पूर्णज्ञान होता है। अतः आत्मा ज्ञातव्य है अथवा ऐसा कहा है- अनंत पदार्थों में व्याप्त और अवग्रह आदि के क्रम से रहित निर्मल सम्पूर्ण ज्ञान जो पर की सहायता के बिना स्वयं होता है, उसे एकांत से सुखरूप कहा है। इस कथन से यद्यपि अनंतज्ञान रूप सुख को हित स्वीकार किया है तथापि चेतना जीव है और केवलज्ञान चैतन्य अवस्था स्वरूप है। अतः आत्मा ज्ञातव्य ही है और मोक्ष कर्मों के विनाशरूप होने से जानने योग्य है। कर्मों का ज्ञान अजीव को जाने बिना नहीं होता, क्योंकि पुद्गल द्रव्य कर्मरूप होते हैं और उनका विनाश मोक्ष है। वह मोक्ष बंधपूर्वक होता है क्योंकि बंध के अभाव में मोक्ष नहीं होता तथा बंध आस्त्र के बिना नहीं होता और मोक्ष के उपाय संवर और निर्जरा है।

यदि अहित से दुःख लेते हैं तो इस लोक में होने वाला दुःख अनुभव से सिद्ध है, उसमें जिनवचन की क्या आवश्यकता? यदि अहित के कारण को अहित कहते हैं तो वह कर्म है और अजीव शब्द से उसका ग्रहण होता है। यदि परम्परा से दुःख का कारण होने से हिंसा आदि को अहित शब्द से लेते हैं तो भी अहित का पृथक् कथन अयुक्त है क्योंकि आस्त्र में उनका अन्तर्भाव होता है।

इस जन्म में अनुभूत भी दुःख को अज्ञानी भूल जाते हैं, इसी से वे सन्मार्ग में नहीं लगते। जिनवचन के द्वारा मनुष्य भव में होने वाली विपत्तियों को बतलाने से उनका स्मरण होता है। निन्दनीय कुल में जन्म होने पर वहाँ रोग

रूपी साँप के डसने से उत्पन्न हुई आपत्तियाँ आती हैं। दरिद्रता, भाग्यहीनता, अवन्धुता, अनाथता, इच्छित धन और परस्त्री की प्राप्ति न होने रूप अग्नि से चित्त का जलते रहना, धनिकों की निन्दनीय आज्ञा का पालन करने पर भी उनके गाली, गलौज, डॉट-फटकार, मारपीट, परवश मरण आदि को सहना पड़ता है। जब हित का अर्थ हित का कारण लिया जाता है तो इस लोक में दान, तप आदि हित है। जैसे जंगली औषधि हित का कारण होने से हित कही जाती है क्योंकि जो दान आदि सत्कार्य करते हैं, लोग उनकी स्तुति और वंदना करते हैं। कहा भी है- 'दान से लोक में चिरस्थायी यश होता है। दान से वैर भी नष्ट जो जाते हैं। दान से पराये भी बंधु हो जाते हैं। अतः सुदान सदा देना चाहिए।' तपोधनों को इन्द्र, चक्रवर्ती आदि भी नमस्कार करते हैं। परलोक में अहित से मतलब है, आगामी नरकगति और तिर्यज्वगति के भव में होने वाला दुःख और परलोक में हित से मतलब है, मोक्ष सुख। जिन भगवान् के द्वारा उपदिष्ट भारती इन सबका ज्ञान कराती है।

### आत्महित का ज्ञान न होने के दोष :

आदहिदम याणां तो मुज्ज्ञादि शूढो समादियदि कम्मं।  
कम्म णिमित्तं जीवो परीदि भव सायर मण्णतं॥ (101)

आत्मा के हित को न जानने वाला मोहित होता है। मोहित हुआ कर्म को ग्रहण करता है और कर्म का निमित्त पाकर जीव अनंत भवसागर में भ्रमण करता है।

आत्महित या आत्मा और हित को न जानने वाला, अहित को हित मानता है। यही मोह है। इस मोह में क्या दोष है? इसके उत्तर में कहते हैं कि मोही जीव कर्म को ग्रहण करता है। यहाँ पर यद्यपि कर्म सामान्य कहा है तथापि अशुभ कर्म ग्रहण में क्या दोष है? इसके उत्तर में कहते हैं कि कर्म के कारण जीव भव समुद्र में अनंतकाल तक भ्रमण करता है।

### आत्महित के ज्ञान का उपयोग :

जाणंतस्सादहिदं अहिद णियत्ती य हिद पवत्ती य।  
हो दिय तो से तम्हा आदहिदं आगमे दव्वं॥ (102)

आत्म हित को जानने वाले के अहित से निवृत्ति और हित में प्रवृत्ति होती है। हिताहित के ज्ञान के पश्चात् उसका हिताहित भी जानता ही है।

इसलिए (आदहिद) आत्महित को आगम से सीखना चाहिए।

आत्महित को जानने वाले की हित में प्रवृत्ति हो, किंतु अहित से निवृत्ति कैसे? जो अहित को जानता है, वह अहित से निवृत्त होता है तथा हित और अहित भिन्न है। जो जिससे भिन्न होता है, उसके जानने पर उससे भिन्न का ज्ञान नहीं होता। जैसे बंदर को जानने पर मगर का ज्ञान नहीं होता। और हित से अहित भिन्न है, अतः हित को जानने वाला अहित को नहीं जानता। तब वह कैसे नियम से अहित से निवृत्त होगा?

प्रत्येक वस्तु का जन्म स्व के भाव और पर के अभाव इन दोनों के आधीन है। जैसे घट बड़े पेट आदि आकार वाला होता है, पटादि रूप से उसका ग्रहण नहीं होता। यदि घट का पटरूप से ग्रहण हो तो विपरीत ज्ञान कहलायेगा। इसी तरह यहाँ भी जो हित से विलक्षण अहित को नहीं जानता वह उससे विलक्षण हित का ज्ञान नहीं हो सकता अतः जो हित को जानता है वह अहित को भी जानता है।

### शिक्षा अशुभ भाव के संवर में हेतु :

सज्जायं कुब्बंतो पंचिदिय सुबुडो तिगुतो यं।  
हवदि य एयगगमणो विणएण समाहिदो भिक्खू ॥ (103)

विनय से युक्त होकर स्वाध्याय करता हुआ साधु पाँचों इन्द्रियों के विषयों से संवृत और तीन गुप्तियों से गुप्त एकाग्रमन होता है।

वाचना, प्रश्न, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेश के भेद से स्वाध्याय के पाँच भेद हैं। उसके अर्थ का कथन करनेपूर्वक निर्दोष ग्रंथ के पढाने को वाचना कहते हैं। संदेह को दूर करने के लिए अथवा निश्चित को दृढ़ करने के लिए सूत्र और अर्थ के विषय में पूछना, प्रश्न है। जाने हुए अर्थ का चिंतन करना, अनुप्रेक्षा है। कंठस्थ करना आम्नाय है। कथा के चार प्रकार हैं- आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेदिनी और निर्वेदिनी। उनके करने को धर्मोपदेश कहते हैं। उस स्वाध्याय को करने वाला पंचेन्द्रिय संवृत होता है।

इन्द्रिय के अनेक भेद हैं :- द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय, किंतु यहाँ इन्द्रिय शब्द से रूपादि विषयक उपयोग कहा गया है। अतः यह अर्थ होता है कि स्वाध्याय को करने वाले का रूपादि विषयक उपयोग रुक जाता है।

रूपादि विषयक उपयोग को रोकने का क्या फल है? रागादि की प्रवृत्ति

नहीं होती। राग, द्वेष, मनोज्ञ और अमनोज्ञ रूपादि विषयक उपयोग का आश्रय पाकर होते हैं। जिस विषय को जाना नहीं, वह विषय केवल अपने अस्तित्व मात्र से राग द्वेष को पैदा नहीं करता। क्योंकि सोते हए या जिसका मन अन्य और है, उस मनुष्य में विषय के पास में होते हुए भी राग द्वेष नहीं देखे जाते। कहा है - गति में जाने पर शरीर बनता है। शरीर से इन्द्रियाँ बनती हैं। इन्द्रियों से विषयों का ग्रहण होता है और उससे राग और द्वेष होते हैं। जो विनयपूर्वक स्वाध्याय करता है, वह पंचेन्द्रिय संवृत्त और तीन गुप्तियों से गुप्त होता है क्योंकि उनका मन अप्रशस्त रागादि के विकार से रहित होता है, झूठ, रूक्ष, कठोर, कर्कश अपनी प्रशंसा पर निंदा आदि वचन नहीं बोलता तथा शरीर के द्वारा हिंसा आदि में प्रवृत्ति नहीं करता तथा स्वाध्याय में लीन साधु एकाग्र मन होता है अर्थात् ध्यान में भी प्रवृत्त करता है। जिसका श्रुत से परिचय नहीं है, उसके धर्म ध्यान, शुक्ल ध्यान नहीं होते हैं। अपायविचय, उपायविचय, विपाकविचय, लोकविचय आदि धर्म ध्यान के भेद हैं। अपाय आदि के स्वरूप का ज्ञान जिनागम के बल से ही होता है। कहा भी है- आदि के दो शुक्ल ध्यान और धर्मध्यान पूर्ववत् श्रुतकेवली के होते हैं।

### स्वाध्याय परमतप :-

बारस विहम्मि य तवे सब्भंतर बाहिरे कुसल दिष्टे।  
ण वि अत्थि ण वि हो हि दि सज्जाय समं तवो कम्मं॥ (106)

सर्वज्ञ के द्वारा उपदिष्ट आभ्यन्तर और बाह्य भेद सहित बारह प्रकार के तप में स्वाध्याय के समान तपक्रिया नहीं है और न होगी।

संसार और संसार के कारण बंध और बंध और बंध के कारण तथा मोक्ष और उसके उपाय इन वस्तुओं में जो कुशल सर्वज्ञ हैं उनके द्वारा उपदिष्ट तपों में स्वाध्याय के समान तप न है, न होगा, न था। इस प्रकार तीनों कालों में स्वाध्याय के समान अन्य तप का अभाव कहा है।

स्वाध्याय भी तप है और अनशन आदि भी तप है। दोनों में ही कर्म को तपने की शक्ति समान है। फिर कैसे कहते हैं कि स्वाध्याय के समान तप नहीं है।

कर्मों की निर्जरा में हेतु जितना स्वाध्याय है उतना अनशनादि तप नहीं है इस अपेक्षा से उक्त कथन किया है।

जं अण्णाणी कम्मं खवेदि भवसयसहस्स कोडी हिं।  
तं णाणी तिहिं गुत्तों खवेदि अंतोमुहतेण जा सोही॥ (107)  
द्वुमद सम दुबाल से हिं अण्णाणियस्स जा सोही।  
त त्तो बहुगुणदिरया होज्ज हु जिमिदस्स णाणिस्स॥ (108)

सम्यग्ज्ञान से रहित अज्ञानी जिस कर्म को लाखों-करोड़ों भवों में नष्ट करता है, उस कर्म का सम्यग्ज्ञानी तीन गुप्तियों से युक्त हुआ अन्तर्मुहूर्त मात्र में क्षय करता है। अज्ञानी को दो, तीन, चार, पाँच आदि उपवास करने से जितनी विशुद्धि होती है उससे बहुत गुणी शुद्धि जीमते हुए ज्ञानी को होती है।

इतनी शीघ्रता से कर्मों को काटने की शक्ति अन्य तप में नहीं है, यह स्वाध्याय का अतिशय है।

सज्जा य भावणाए य भाविदा होंति सब्ब गुत्तीओ।  
गुत्तीहिं भावि दाहिं य मरणे आराधओ होंदि॥ (109)

स्वाध्याय भावना से सब गुप्तियाँ भावित होती हैं और गुप्तियों की भावना से मरते समय रत्नत्रय रूप परिणामों की आराधना में तत्पर होता है।

स्वाध्याय करने पर मन-वचन काय के सब ही व्यापार जो कर्मों के लाने में कारण है चले जाते हैं। ऐसा होने से गुप्तियाँ भावित होती हैं और तीनों योग का निरोध करने वाला मुनि रत्नत्रय में लगता है अतः रत्नत्रय सुख पूर्वक साध्य होता है। इसका भाव यह है कि अनन्तकाल से जिन तीन अशुभ योगों का इस जीव ने अभ्यास किया हुआ है और कर्म का उदय जिसका सहायक है उससे अलग होना अत्यंत कठिन है। स्वाध्याय की भावना ही इसे करने में समर्थ है।

### स्वाध्याय शीलः स्व-पर प्रकाशक :

आद पर समुद्वारो आणा वच्छल्ल दीवणा भत्ती।  
होदि परदेसगते अब्बोच्छित्ती य तित्थस्स॥ (110)

अपने और दूसरों के उद्धार के उद्देश्य से जो स्वाध्याय में लगता है वह अपने भी कर्मों को काटता है और उसमें उपयुक्त दूसरों के भी कर्मों को काटता है। सर्वज्ञ भगवान् की जो आज्ञा है कि कल्याण के इच्छुक जिन शासन के प्रेमी को नियम से धर्मोपदेश करना चाहिए, उसका भी पालन होता है।

दूसरों को उपदेश करने पर वात्सल्य और प्रभावना होती है। जिनवचन के अभ्यास से जिन वचन में भक्ति प्रदर्शित होती है। दूसरों को उपदेश करने पर मोक्षमार्ग अथवा श्रुतरूप तीर्थ की अव्युच्छिती-परम्परा का अविनाश होता है। श्रुत भी रत्नत्रय के कथन में संलग्न होने से तीर्थ है। अतः स्वाध्याय पूर्वक परोपदेश करने से श्रुत और मोक्षमार्ग का विच्छेद नहीं होता। वे सदा प्रवर्तित रहते हैं।

## स्वास्थ्य एवं विकास के नियम

हिंसासत्यं स्तेयमोहादि सर्वं, त्यक्त्वा धीमांश्चारु चारित्र युक्तः।  
साधुन्संपूज्य प्राज्यवीर्याधियुक्ता नारोग्यार्थी योजयेद्योगराजान् (29)

(कल्याण कारक पृ.91)

स्वास्थ्य की इच्छा रखने वाला मनुष्य हिंसा, झूठ, चोरी, परिग्रह, परिग्रह, कुशील इत्यादि पापों को छोड़कर सदाचरण में तत्पर होवे, सज्जन संयमियों की सेवा करके अत्यन्त शक्तिवर्धक योगराजों का प्रयोग करें।

पूर्वोपर्जित पाप कर्म से एवं वर्तमान के अयोग्य विचार, आचार, आहार, उच्चार एवं दूषित वातावरणादि से रोग होने के कारण उस रोग को दूर करने के लिए जिस कारणों से हुआ है उससे विपरीत कारणों/उपायों/प्रणालियों को सेवन करना चाहिये। अर्थात् पवित्र विचार, आचार, आहार, उच्चार, पर्यावरण एवं औषधियों का सेवन करना चाहिये। केवल औषधियों की शीशी में, इन्जेक्शन में स्वास्थ्य को न ढूँढ़े। जिस प्रकार वृक्ष की वृद्धि के लिए उसके मूल में पानी सिंचन किया जाता है न केवल पत्रों में, उसी प्रकार स्वास्थ्य की रक्षा एवं वृद्धि के लिये मूल-भूत आदर्श विचारादि का पालन करना आवश्यक है न कि केवल भौतिक औषधि। दिग्म्बर जैनाचार्य उग्रादित्य ने कहा भी है-

### रोगी की दिनचर्या-

प्रातः समुत्थाय यथोचितात्मा, नित्यौषधाहारविचारधर्मः।  
आस्तिक्यबुद्धि स्तताप्रमत्सर्वात्मना वैद्यवचाञ्जुवर्ती (24) (पृ.110)

प्रातःकाल उठकर प्रतिदिन नित्य अपने योग्य औषधि और आहार के विषय में विचार करें कि किस समय कौन सी औषधि लेनी है, क्या खाना

चाहिये आदि। आस्तिक्य बुद्धि रखें और सदा सावधान रहें एवं सर्व प्रकार से वैद्य के अभिप्रायानुसार ही अपना आहार-विहार आदि कार्य करें।

सदातुरस्सर्वहितानुरागी, पापक्रियायाविनिवृत्तवृत्तिः।  
वृषान्विमुचन्लषदोहिनश्च, विमोचयन्बन्धनंपंजरस्थान् (27)

सदा रोगी सबका हितैषी बने और सबसे प्रेम रखे, सर्व पाप क्रियाओं को बिलकुल छोड़ देवे। बन्धन व पिंजर में बद्ध चूहे व अन्य प्राणियों को दया से छुड़ावे।

शास्योपशांतिं च नरश्चभक्त्या,  
निनादभक्त्यां जिन चन्द्र भक्त्या।  
एवंविधो दूरत एवं पापद्विमुच्येते,  
किं खलु रोग जालैः (28)

उपर्युक्त प्रकार के सदाचरणों से जो मनुष्य अपने आत्मा को निर्मल बना लेता है, एवं जो जिनागम व जिनेन्द्र के प्रति भक्तिकरता है, वह मनुष्य शान्ति वो सुख को प्राप्त करता है। उस मनुष्य को पाप भी दूर से छोड़कर जाते हैं, दुष्ट रोग जाल क्यों उसके पास में जावेंगे।

सर्वात्मनाधर्मपरो नरस्सया  
त्तमाशु सर्वं समुपेति सौख्यम्॥  
पापोदयात्ते प्रभवंति रोगा  
धर्मच्च पापाः प्रतिपक्षभावत् (29)  
नश्यन्ति, सर्वे प्रतिपक्षयोगा-  
द्विनाशमायांति किमत्रचित्रम्॥

जो व्यक्ति सर्व प्रकार से धर्म परायण रहता है उसे सम्पूर्ण सुख शीघ्र आकर मिलते हैं। (इसलिये रोगी को धर्म में रत रहना चाहिये) पाप के उदय से रोग उत्पन्न होते हैं। पाप और धर्म ये दोनों परस्पर विरोधी हैं। धर्म के अस्तित्व में पाप नाश होता है। क्योंकि धर्म पाप का प्रतिपक्षी है अर्थात् पाप अपना प्रभाव धर्म के सामने नहीं बतला सकता। प्रतिपक्ष की प्रबलता होने पर अन्य पक्ष के नाश होने में आश्चर्य क्या है?

## स्वाध्याय से सांसारिक एवं मोक्ष सुख

**बद्ध-बंध-बंधकारण-मुक्त - मोक्ष - मोक्षकारणाणि  
णिक्खेव-णयप्पमाणाणियोग-द्वारेहि अहिगम्म भविय-जणो जाणदु  
ति सुत्तमोदिण्णं अथदो तिथ्यरादो, गंथदो गणहर-देवादो त्ति।**  
(ध्वला पु. I पृ. सं. 56)

बद्ध, बन्ध, बन्ध के कारण, मुक्त, मोक्ष और मोक्ष के कारण इन छह तत्त्वों को निष्क्रेप, नय, प्रमाण और अनुयोग द्वारों से भलि-भाँति समझकर भव्यजन उनके ज्ञाता बनें, इसलिये यह सूत्र-ग्रंथ अर्थ-प्ररूपणा की अपेक्षा तीर्थकर से और ग्रन्थ रचना की अपेक्षा गणधर देव से अवतीर्ण हुआ है।

**शंका -** द्रव्य और भाव से अकृतिम होने के कारण सर्वदा एकरूप से अव्यवस्थित श्रुत का अवतार कैसे हो सकता है।

**समाधान-** यह शंका तो तब बनती जब यहाँ पर द्रव्यार्थिक नय की विवक्षा होती। परन्तु यहाँ पर पर्यार्थिक नय की अपेक्षा होने से श्रुत का अवतार तो बन ही जाता है।

**छद्वव-णव-पयत्थे सुय-णाणाइच्च-दिष्प-तेण।  
पस्संतु-भव्व-जीवा इय सुय-रविणो हवे उदयो (35)**

भव्य जीव श्रुतज्ञानरूपी सूर्य के दीप्त तेज से छह द्रव्य और नव पदार्थों को देखें अर्थात् भलि-भाँति जाने, इसलिये श्रुतज्ञानरूपी सूर्य का उदय हुआ है। अब हेतु का कथन किया जाता है।

हेतु दो प्रकार का है- (1) प्रत्यक्ष हेतु (2) परोक्ष हेतु।

**शंका -** यहाँ पर किसके हेतु का कथन किया जाता है?

**समाधान -** यहाँ सिद्धान्त के अध्ययन के हेतु का कथन किया जाता है।

उन दोनों प्रकार के हेतुओं में से प्रत्यक्ष हेतु दो प्रकार है, साक्षात्प्रत्यक्ष हेतु और परम्परा-प्रत्यक्ष हेतु। उनमें से अज्ञान का विनाश सम्यज्ञान की उत्पत्ति, देव, मनुष्यादि के द्वारा निरन्तर पूजा का होना और प्रत्येक समय में असंख्यात गुणित श्रेणीरूप से कर्मों की निर्जरा का होना साक्षात्प्रत्यक्ष हेतु (फल) समझना चाहिये।

**शंका-** कर्मों की असंख्यात-गुणित-श्रेणीरूप से निर्जरा होती है, यह किनके प्रत्यक्ष है?

**समाधान-** ऐसी शंका ठीक नहीं है? क्योंकि सूत्र का अध्ययन करने वालों की असंख्यात गुणित श्रेणीरूप से प्रति समय कर्म निर्जरा होती है, यह बात अवधिज्ञानी और मनःपर्यज्ञानियों को प्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध होती है।

शिष्य, प्रतिशिष्यादिक के द्वारा निरन्तर पूजा जाना परम्परा-प्रत्यक्ष हेतु है। परोक्ष हेतु दो प्रकार है, एक अभ्युदयसुख और दूसरा नैश्रेयससुख। इनमें से सातावेदनीय आदि प्रशस्त कर्म प्रकृतियों के तीव्र अनुभाग के उदय से उत्पन्न हुआ, इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश आदि देव संबन्धी दिव्य-सुख और चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण, अर्धमण्डलीक, मण्डलीक, महामण्डलीक, राजा, अधिराज, महाराजाधिराज, परमेश्वर आदि मनुष्य सम्बन्धी मानुष्य-सुख को अभ्युदयसुख कहते हैं।

जो नम्रीभूत अठारह श्रेणियों का अधिपति हो, मुकुट धारण करने वाला हो और सेवा करने वालों के लिये कल्पवृक्ष के समान हो उसे राजा कहते हैं।

घोड़ा, हाथी, रथ इनके अधिपति, सेनापति, मंत्री, श्रेष्ठी, दण्डपति, शूद्र, क्षत्रिय, ब्राह्मण, महत्तर, गणराज, अमात्य, तलवर, पुरोहित, स्वाभिमानी और पैदल सेना इस प्रकार सब मिलाकर अठारह श्रेणियाँ होती हैं।

अथवा हाथी, घोड़ा, रथ और पयादे ये चार सेना के अंग, दण्डनायक, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण वणिकपति, गजराज, महामात्र, मन्त्री, पुरोहित, सेनापति, अमात्य, तलवर, और महत्तर ये 18 श्रेणियाँ होती हैं।

लोक में पाँच सौ राजाओं के अधिपति को अधिराज कहते हैं और एक हजार राजाओं के अधिपति को महाराज कहते हैं।

पण्डितजन दो हजार राजाओं के स्वामी को अर्थ मण्डलीक कहते हैं और चार हजार राजाओं के स्वामी को मण्डलीक कहते हैं।

बहुजन आठ हजार राजाओं के स्वामी को महामण्डलीक कहते हैं और सोलह हजार राजा नमस्कार करते हैं उसे तीन खण्ड पृथ्वी का अधिपति अर्थात् नारायण कहते हैं।

इस लोक में वर्तीस हजार राजाओं से सेवित, नवनिधि आदि से प्राप्त होने वाले भागों के भण्डार, उत्तम चक्र-रत्नों को धारण करने वाले और भरत क्षेत्र के छह खण्ड के अधिपति को दिव्य मनुष्य अर्थात् चक्रवर्तीं समझना चाहिये।

जिनके ऊपर चन्द्रमा के समान ध्वल चौसठ चँवर दुरते हैं ऐसे सकल भूवन के अद्वितीय स्वामी को श्रेष्ठ मुनि तीर्थकर कहते हैं।

इस लोक में तीर्थकरपना, गणधरपना, देवेन्द्रपना, चक्रवर्तीपना और इसी प्रकार के अन्य अर्ह अर्थात् पूज्य पदों को अभ्युदयसुख समझना चाहिये।

अरिहंत और सिद्धों के अतीन्द्रिय सुख को नैश्रेयस सुख कहते हैं। कहा भी है- अतिशयरूप, आत्मा से उत्पन्न हुआ, विषयों से रहित, अनुपम, अनन्त और विच्छेद रहित सुख तथा शुद्धोपयोग सिद्धों को होता है।

**भाविय-सिद्धंताणं दिण्यर-कर-णिम्मलं हवइ णाणं।  
सिसिर-यर-कर-सरिच्छं हवइ चरितं स वस चित्तं (47) षट्खडा I**

जिन्होंने सिद्धान्त का उत्तम प्रकार से अध्ययन किया है ऐसे पुरुषों का ज्ञान सूर्य की किरणों के समान निर्मल होता है और जिसमें अपने चित्तको स्वाधीन कर लिया है ऐसा चन्द्रमा की किरणों के समान चारित्र होता है।

**मेरुब्ब णिष्पकंपं णदंठद्धमलं ति मूढ-उम्मुक्कं।  
सम्महंसणमणुवममुप्पज्जइ पवयणब्भासा॥ (48)**

प्रवचन अर्थात् परमागम के अभ्यास से मेरु के समान निष्कम्प, आठ मल रहित, तीन मूढ़ताओं से रहित और अनुपम सम्प्रदर्शन उत्पन्न होता है।

**तत्तो चेव सुहाइं सयलाइं देव मणुय खयराणं।  
उम्मूलियद्ध -कम्मं फुड सिद्ध-सुहं पि पवयणादो॥ (49)**

उस प्रवचन के अभ्यास से ही देव, मनुष्य और विद्याधरों के सर्व सुख प्राप्त होते हैं तथा आठ कर्म से उन्मूलित हो जाने के बाद प्राप्त होने वाला विशद सिद्ध सुख भी प्रवचन के अभ्यास से ही प्राप्त होता है।

**जिय मोहिंधन-जलणो अण्णाण-तमंधयार दिण्यरओ।  
कम्म-मल-कलुस-पुसओ जिण वयणामिवोवही सुंहयो (50)**

वह जिनागम जीव के मोहरूपी ईंधन को भस्म करने के लिये अन्नि के समान है, अज्ञानरूपी गाढ़ अंधकार को नष्ट करने के लिये सूर्य के समान है, कर्ममल अर्थात् द्रव्यकर्म और कर्मकलुष अर्थात् भावकर्म को मार्जन करने वाला समुद्र के समान है और परम सुभग है।

**अण्णाण-तिमिर हरणं सुभविय हियारविंद जोहण्यं।**

**उज्जोइय-सयल वहं सिद्धंत दिनायरं भजह (51) (षट् खंडागम I)**

अज्ञानरूपी अन्धकार को हरण करने वाले, भव्य जीवों के हृदयरूपी कमल को विकसित करने वाले और सम्पूर्ण जीवों के लिये पथ अर्थात् मोक्षमार्ग करने वाले ऐसे सिद्धान्तरूपी दिवाकर को भजो।

अथवा जिनपालित इस श्रुतावतार के निमित्त है और उसका हेतु मोक्ष है। अर्थात् मोक्ष के हेतु जिलपालित के निमित्त से इस श्रुत का अवतार हुआ है। यहां पर निमित्त और हेतु कथन करने से पाठकजनों को हर्ष का उत्पन्न करना ही प्रयोजन है।

जब परिमाण का व्याख्यान करते हैं, अक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्ति और अनुयोग द्वारों की अपेक्षा श्रुत का परिमाण संख्यात है और अर्थ अर्थात् तद्वाच्य विषय की अपेक्षा अनन्त है। पद की अपेक्षा अठारह हजार प्रमाण है। शिक्षकजनों को हर्ष उत्पन्न कराने के लिये और मतिसंबन्धी व्याकुलता दूर करने के लिये यहां पर परिमाण कहा गया है। (ध्वला I पृ.56 से 61 तक)

## **आध्यात्मिक विहीनता से विविध रोग-दुःख**

**(1) असंयम -** जीभ को असंयमी रखने से वह चाहे जैसे स्वाद में रस लेने लगती है और चाहे जितना खाने को आतुर रहती है। परिणाम स्वरूप पेट में अधिक अयोग्य भोजन जल्द चला जाता है और वह पेट या आँतिडियों में रोग उत्पन्न करता है। इसी प्रकार जीभ के असंयमी होने पर यदि वह चाहे जैसी वाणी उच्चारण करे तो भी जीभ द्वारा सम्बन्धित मस्तिष्क के ज्ञान तन्तुओं को हानि पहुँचाती है। कुछ समय पश्चात् जीभ कैंसर या लकवा हो जाने की स्थिति में पहुँच जाती है। जन्म से उत्पन्न गूंगे बालक वाणी के दुरुपयोग का दण्ड इस नये जन्म में पाते हैं। असंयमी व्यवहार से ही अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार चक्षु, कर्ण, स्पर्श, म्राण, मन, धन, समय, श्रम, वचन आदि के असंयम से भी तन-मन-धन-स्वास्थ्य-समय-

साधन सम्बन्धी अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। जैसा कि स्पर्शन इन्द्रिय, काम-चेतना के असंयम वेश्यारमण, परस्तीगमन से ऐस आदि भयङ्गर रोग होते हैं। जिसकी चिकित्सा एवं औषधि का शोध-बोध-आविष्कार अभी तक नहीं हो पाया है। इसी प्रकार यातायात आदि के असंयम से दुर्घटना होती है, जिससे धन-जन की क्षति होती है। इसी प्रकार मानसिक असंयम (तनाव, क्रोध, हीन-भावना, अहंभावना, निषेध परक चिन्तन आदि) से अनेक शारीरिक, मानसिक रोग हो जाते हैं।

(2) असत्य - असत्य बोलने वाले व्यक्ति की जीवन शक्ति नष्ट हो जाती है और वह सामान्य रोग का भी भोगी बन जाता है। जीवन शक्ति आधार 'तेज' है और वह तेज असत्य से नष्ट हो जाता है। असत्य बोलने वाला तेज हीन हो जाता है साथ ही असत्य बोलने से हृदय और मस्तिष्क के ज्ञान तन्तुओं की हानि होती है। कुछ समय पश्चात् वह हृदय के रोग, पागलपन, पथरी, लकवा आदि रोगों से भी दुःखी हो जाए तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। असत्य चिन्तन, कथन, व्यवहार, लेखन आदि से मस्तिष्क, बुद्धि को अतिरिक्त शक्ति का उपयोग अथवा यथार्थ से कहें तो दुरुपयोग करना पड़ता है। संक्लेश, तनाव, भय, व्यग्रता, ग्लानि, अस्थिरता, मानसिक चञ्चलता, अशान्ति आदि झेलना पड़ता है।

(3) अभिमान - मनुष्य में वायु, पित्त और कफ तीनों को एक-साथ सन्निपात के रूप में उत्पन्न करने वाला अभिमान है और इसी से किसी कवि ने कहा है कि- “पाप मूल अभिमान” यह अभिमान ही मनुष्यों के दुर्गुणों का राजा है। अभिमानी व्यक्ति वायु, पित्त और कफ के छोटे-बड़े अनेक रोगों से दुःखी रहता है। मनोविज्ञानानुसार अभिमान को अहम् ग्रन्थि कहते हैं। इसके कारण व्यक्ति स्वयं की छोटी-खोटी सी उपलब्धि को बहुत बड़ी मानता है और दूसरों की स्व शुद्धात्मा की महान् उपलब्धि को छोटी-खोटी मानता है, जिससे व्यक्ति का सर्वाङ्गीण सर्वोच्च विकास नहीं हो पाता है। अभिमान के कारण व्यक्ति के शरीर मन-वचन व्यवहार में विनम्रता, सरल-सहजता, परिवर्तनशीलता, अभझरता के परिवर्तन में अकड़पना, जकड़पना, कठोरता आदि दुर्गुण होते हैं। इससे कुण्ठा, तनाव, व्यग्रता, गर्व (अहङ्कार) का वर्ग (खण्डन) होने का भय आदि शारीरिक मानसिक रोग हो जाते हैं। इसलिए कहा है- “विद्या ददाति विनयम् विनयात् याति पात्रताम्। पात्रतात् धनमाप्नोति, धनात् धर्मं ततः सुखम्।”

(4) ईर्ष्या - ईर्ष्या करने वाले मनुष्य में पित्त बढ़ जाता है जिससे उस मनुष्य की इन्द्रियों की तेजस्विता नष्ट हो जाती है। ऐसे मनुष्य की बुद्धि और हृदय पित्त के तेजाव में जल जाते हैं एवं वह किसी काम में प्रगति नहीं कर पाता। ऐसे मनुष्य पित्त, पथरी, जलन, लीवर खराबी आदि रोगों से दुःखी होते रहते हैं। ईर्ष्या के कारण व्यक्ति दूसरों की अच्छाई, सच्चाई, प्रगति, प्रशंसा, सम्पत्ति, प्रशंसा, सम्पत्ति, बुद्धि, त्यागवृत्ति, सेवा आदि उत्तम प्रशंसनीय गुणों से भी जलता है। वह स्वयं की रेखा को बिना बढ़ाए दूसरों की रेखा को छोटा कर/मिटाकर स्वयं की रेखा को बढ़ा करना चाहता है। इसे विध्वंसात्मक प्रतिस्पर्धा कहते हैं।

(5) दम्भ - दम्भी लोग कफ के परिणाम में गड़बड़ उत्पन्न करते हैं। उनके दम्भी स्वभाव से उनमें कफ के समान भारीपन आ जाता है। उनकी समस्त इन्द्रियाँ तेजस्विता छोड़कर स्थूल होती जाती है। शरीर की पूरी बनावट भारीपन, गैस और इसी प्रकार कफजन्य अनेक रोग दम्भ के कारण ही होते हैं।

(6) क्रोध - बिगड़े हुए मन से अशक्य जैसी अनेक कामनाओं के पूर्ण न होने से अथवा उनमें विध्न आने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रुद्ध मनुष्य दूसरे को हानि कर सकेगा या नहीं यह तो दैवाधीन है परन्तु सर्वप्रथम वह स्वयं की हानि करता ही है। क्रोध करने में मनुष्य के मस्तिष्क को अपने बहुमूल्य ओज़: शक्ति का उपयोग करना पड़ता है। इस प्रकार अमूल्य ओज नष्ट हो जाता है और परिणाम स्वरूप जीवन शक्ति नष्ट होती चली जाती है। तदुपरान्त क्रोध के मस्तिष्क में आते ही ओज के विशाल एवं प्रवाह से मस्तिष्क के ज्ञानतन्तु क्षीण हो जाते हैं। विजली का प्रवाह घर में लगे हुए परिमाणिक मात्रा में आने पर बल्ब जलता है परन्तु अधिक मात्रा में आने पर बल्ब को नष्ट कर देता है और कभी-कभी तो घर को भी हानि पहुँचाता है। इससे रक्षा पाने के लिए घर के बाहर फ्यूज की व्यवस्था की जाती है। संयम और विवेक ही हमारे फ्यूज हैं। इन्हें त्याग देने पर ओज का अत्यधिक प्रवाह क्रोध के रूप में उत्पन्न हो जाता है और मस्तिष्क के कितने ही भागों को जोखिम में डाल देता है। विशेष रूप से क्रुद्ध मस्तिष्क को अधिक मात्रा में रक्त की आवश्यकता पड़ती है। वह रक्त राशि मस्तिष्क की ओर जाने वाले लघु रक्त प्रवाह को खींच लेती है। क्रोधी मनुष्य का मुख और आंखे कैसी लाल हो जाती है यह सबको अनुभव होगा। हँसते समय मुँह लाल होता है क्योंकि मुँह की समग्र पेशियाँ विकसित होने से हृदय की ओर से खून खिंच आने से

ऐसा होता है। विशेष शुद्ध खून मिलने से वैसी ही पेशियाँ पुलकित होने से यह लालिमा लाभप्रद है और सौंदर्य वर्धक भी है परन्तु ठीक इसके विपरीत क्रोधी की शक्ल बिगड़ती जाती है और उसके बुद्धि-बल भी धीरे-धीरे क्षीण होने लगते हैं।

**(7) हिंसा -** हिंसा क्रोध और अभिमान से उत्पन्न होती है। इसमें प्रवृत्त रहने वाला व्यक्ति का रक्त सदा खौलता एवं गर्म रहता है। हिंसा में मस्तिष्क और हृदय दोनों गन्दे होते हैं। अभिमान और क्रोध से उत्पन्न रोगों के उपरान्त ऐसे मनुष्य में हृदय से उत्पन्न रोग भी होते हैं। पराया दुःख देखकर जो हृदय एकदम नरम बनकर द्रवित होने लगता है, वही हृदय अपने दुःखों के सामने वज्र जैसा-कठोर भी बन जाता है। यह हृदय की सत्य और वास्तविक स्थिति का गुण है। हिंसा वाले मनुष्य हृदय के ये गुण नष्ट हो जाते हैं। वह लोगों का दुःख देखकर हँसता है और अपने ऊपर दुःख पड़ने पर निम्न श्रेणी का भीरु बन जाता है। तत्पश्चात् हृदय में और सम्पूर्ण शरीर में गर्म रक्त भ्रमण करने से शरीर में वायु, पित्त और कफ- इन तीनों को उत्पन्न करता है, जिससे वह महाभयङ्कर रोगों का शिकार बन जाता है। “क्रिया-प्रतिक्रिया सिद्धान्त” के अनुसार जो दूसरों की हिंसा करता है उसकी भी हिंसा होती है, दुर्घटना-रोग आदि से अपमृत्यु होती है।

**(8) छल-कपट -** कपट करने वाला व्यक्ति भी सूक्ष्मरूप से हिंसा ही करता है परन्तु उसकी हिंसा करने की युक्ति मायामय-कपटमय होने से दिखायी नहीं देती। वह असाधारण विष-जैसी होती है। इससे ऐसे मनुष्य भी ऊपर वर्णित हिंसा वाले व्यक्ति के समान ही रोगों का शिकार बन जाते हैं परन्तु उसे जो रोगों का दण्ड मिलता है, वह धीरे-धीरे असर करने वाले विष के समान ही होता है। छल-कपट करने वाला व्यक्ति इस भय से चिन्तित, व्यग्र, भयभीत रहता है कहीं मेरे छल-कपट प्रगट नहीं हो जावे-इससे अनेक दैहिक-मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जिसके कारण मुँह से अधिक दुर्गन्धी आती है, भोजन सही रूप से पाचन नहीं होता है, कब्जियत रहता है, मल-मूत्र का विसर्जन देरी से होता है।

पाप, अधर्म, असंयमादि से जायमान विविध कष्ट, दुःख, समस्या, रोग आदि का शोध-बोध करके प्राचीन भारतीय मनीषियों ने उससे बचने के उपायभूत पुण्य, धर्म, आध्यात्मिक, संयम, उदारता आदि का प्रतिपादन भी किया है।

## आध्यात्मिकता से स्व-पर विश्वकल्याण

**(1) सापेक्ष विचार, अनेकान्त सिद्धान्त, सहिष्णुता (उदारता):**

विश्व के प्रत्येक द्रव्य/घटक/घटनाओं के अनेक गुण-धर्म/पक्ष/कारण होने के कारण उन्हें उन-उन दृष्टियों से देखना चाहिए, समझना चाहिए, कथन करना चाहिए। इसे ही अनेकान्त सिद्धान्त, स्याद्वाद आदि कहते हैं। इसके कारण बौद्धिक विकास, भावात्मक विशालता, आत्मा की पवित्रता, कथन में लचीलापन/मृदुता आती है, जिससे सत्यग्राहिता, नम्रता, सहिष्णुता आती है तथा संकीर्णता, कटुता, झगड़ा, कलह, द्वेष, कूट, युद्ध, विग्रह, हिंसा, मानसिक रोग आदि घटते हैं। यह गुण उस व्यक्ति में प्रगट होता है जो अन्धविश्वास, संकीर्णता, घमण्ड, पूर्वग्रिह, हठग्राही, मायाचारी आदि दुर्गुणों से रहित होता है।

**(2) अहिंसा -** पवित्र भाव होना अहिंसा है, और भाव अहिंसा सहित स्व-पर का मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनुमति से क्षति नहीं पहुँचना द्रव्य अहिंसा है। इससे स्व-पर की समग्रता से सुरक्षा, समृद्धि होती है। स्व तथा भाव अहिंसा होने पर ही स्व-पर तथा द्रव्य अहिंसा का पालन हो सकता है। अहिंसा के कारण राग-द्वेष, अपना-पराया, भेद-भाव, ऊँच-नीच, ईर्ष्या-कलह, युद्ध, आतङ्कवाद, हत्या, आक्रमण आदि का अभाव हो जाता है जिसके कारण विश्व में सुख-शान्ति-समृद्धि होती है। इसीलिए “अहिंसा परमो धर्मः” “अहिंसामृतम्” है। इससे ‘सह अस्तित्व’, ‘सहयोग’, ‘आत्मवृत् सर्वभूतेषु’, ‘जीओ और जीने दो’, ‘पर्यावरण सुरक्षा’, ‘पारिस्थितिकी सिद्धान्त’ को बल मिलेगा, जिससे विश्व की समस्या स्वरूप विखराव, भेदभाव, संकीर्ण-कटूर राष्ट्रवाद, धर्मोन्माद के कारण जायमान हिंसा, आतङ्कवाद, राष्ट्रीय गृह कलह से लेकर विश्व युद्ध, पर्यावरण असन्तुलन से जायमान अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प, बवण्डर, चक्रवात, अकाल, बाढ़, मृदा-जल-वायु-ध्वनि-भाव प्रदूषण तथा विभिन्न रोग दूर होंगे।

**(3) सत्य -** सत्य ही सार्वभौम, सार्वकालिक, त्रैकालिक, अवाधित होने के कारण समस्त विश्व से लेकर राष्ट्रीय, सामाजिक, पारिवारिक एवं व्यक्तिगत प्रतिष्ठा, स्थिति, स्मृद्धि, शान्ति भी सत्य में निहित है। वस्तु स्वरूप, स्वशुद्ध आत्मस्वरूप सत्य होने के कारण सत्य में किसी भी प्रकार की विकृति, समस्या सम्भव नहीं है। निश्चयतः स्व-आत्मा स्वरूप में स्थित

होना परम सत्य है जिसे मोक्ष, निर्वाण, ईश्वरत्व कहते हैं। व्यवहारतः दूसरों की सत्ता, सम्पत्ति, विभूति, प्रसिद्धि, वृद्धि, कृति, जमीन आदि का अनैतिकता पूर्वक अपना नहीं मानना एवं नहीं बनाना सत्य है। दूसरों की सत्ता, सम्पत्ति आदि को स्वीकार करना एवं मान्यता देना भी सत्य है। पूर्वोक्त दोषों से रहित होकर यथार्थ स्वरूप को स्वीकार करना सत्य है। इससे व्यक्तिगत कलह, तनाव से लेकर राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय कलह, तनाव, कानूनी लड़ाई, वैमनस्य, पक्षपात आदि समस्याएँ समाप्त हो जाती हैं।

(4) अचौर्य - दूसरों की सत्ता, सम्पत्ति का अनैतिक रूप से बलात् या धोखाधड़ी से स्व-अधिकार में नहीं करना अचौर्य है। इससे चोरी, डैकैती, भ्रष्टाचारी, मिलावट, घोटाला, घुसपैठ, घूसखोरी, अपहरण, दूसरे देश पर आक्रमण, सेल्सटैक्स, इन्कमटैक्स चोरी, कर्तव्य चोरी आदि समस्याएँ दूर हो जाती हैं।

(5) अपरिग्रह - आध्यात्मिक दृष्टि से स्व-आत्म द्रव्य को छोड़कर अन्य किसी चेतन-अचेतन द्रव्य को ग्रहण करना परिग्रह है। व्यवहार से अनैतिक चेतन-अचेतन द्रव्यों को ग्रहण करना, अति संग्रह करना, अतिलालसा या गृद्धता रखना परिग्रह है। उपरोक्त परिग्रह से विपरीत अपरिग्रह है अर्थात् निश्चय से स्व-शुद्ध आत्मा ही अपरिग्रह है और व्यवहारतः आवश्यक वस्तु को छोड़कर अन्य वस्तुओं को ग्रहण नहीं करना अपरिग्रह है। इससे गरीब-अमीर, शोषक-शोषित, मजदूर-पूँजीपति, नौकर-मालिक, शोषण-मिलावट, चौरी-डैकैती, बेईमानी, रिश्वतखोरी, कालाबाजारी, मँहगाई, अभाव, भुखमरी आदि समस्याएँ सम्भव नहीं होती हैं।

महावीर भगवान् का अपरिग्रहवाद पूर्ण आध्यात्मिक, नैतिक, साम्यवाद, समाजवाद है। इसके लिए किसी प्रकार बल-प्रयोग, हिंसात्मक कार्यवाही की आवश्यकता ही नहीं होती क्योंकि यह सब स्वेच्छा से, आत्म प्रेरणा से होता है। परिग्रह के कारण जायमान बड़े-बड़े उद्योग, फैक्री, यान-वाहन से उपजी ध्वनि-वायु-जल-मृदा प्रदूषण, ग्रीन हाउस प्रभाव, ओजोन परत में छेद, कृत्रिम तापमान की वृद्धि आदि समस्याएँ नहीं होती हैं, जिससे शारीरिक-मानसिक रोग नहीं होते हैं।

(6) ब्रह्मचर्य - ब्रह्म यानि आत्मा में रमण करना ब्रह्मचर्य है। व्यवहारतः समस्त स्त्री-पुरुष जनित भोग का त्याग करना ब्रह्मचर्य है।

ब्रह्मचर्याणुत्रत में स्व-स्त्री या स्व-पुरुष से मर्यादित, नैतिक संभोग करना ब्रह्मचर्याणुत्रत है। इससे अब्रह्मचर्य से जायमान जनसंख्या वृद्धि, ऐस रोग आदि बीमारियाँ दूर होती हैं। जनसंख्या वृद्धि से उपजी अनेक समस्याएँ यथानिवास, यातायात, भोजन, पानी, शिक्षा, स्वास्थ्य, कुपोषण आदि का भी निराकरण होता है। इसलिए भगवान् महावीर ने पञ्चशील को अभ्युदय एवं मोक्ष का कारण कहा है तो पाँच पार्षों को “‘ दुःखमेव वा ” अर्थात् पाँच पाप दुःख स्वरूप ही हैं-

कहकर संक्षिप्ततः विश्व की सभी समस्याओं को गर्भित कर लिया तथा सम्पूर्ण निदान भी दे दिया।

उपर्युक्त दृष्टि से जैन सिद्धान्त विश्व के सर्वश्रेष्ठ, सामाजिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक, वैज्ञानिक, स्वास्थ्यकर, महान् क्रान्तिकारी सर्वोदयी सिद्धान्त हैं, इन्हें किसी भी काल, राष्ट्र, जाति, पंथ, परम्पराओं की सीमा में आबद्ध नहीं किया जा सकता है। इसलिए ये सिद्धान्त पहले जैसे प्रासङ्गिक, आधुनिक, समसामयिक थे, उसी प्रकार अभी भी हैं और आगे भी रहेंगे। क्योंकि परम सत्य सदा-सर्वदा अवाधित, अपरिवर्तनशील, नित्य-नूतन, चिर-पुरातन होता है। इसलिए हे विश्व मानवों! यदि शान्ति एवं स्वास्थ्य चाहिए तो समस्त सामाजिक, जातिगत, क्षेत्रगत, राष्ट्रगत संकीर्णिताओं को छोड़कर इन सिद्धान्तों को अपनाकर स्व-पर-विश्व को सुख-शान्ति एवं समृद्धिमय बनाओ।

## सदुदेश्य की पूर्ति = शान्ति की प्राप्ति के सूत्र

- आचार्य कनकनन्दी

- \* सदुदेश्य (सत्+उदेश्य=सच्चा, अच्छा लक्ष्य) शान्ति की रुचि, तदनुकूल परिज्ञान तथा सम्यक् सम्पूर्ण पुरुषार्थ से सदुदेश्य की पूर्ति एवं शान्ति की प्राप्ति होती है।
- \* सत्-समतामय उदेश्य ही सदुदेश्य है और तदनुकूल आत्मविश्वास-ज्ञान-आचरण के अनुपात से सदुदेश्य की पूर्ति तथा शान्ति की प्राप्ति होती है।
- \* एतद् सम्बन्धी रुचि स्व-जागृति से तथा रुचिवन्तु पुरुषों की प्रेरणा से उत्पन्न होती है।

## अध्याय-6

### उपदेशदाता वक्ता का स्वरूप (धार्मिक अध्यापक का स्वरूप)

प्रज्ञः प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदयः प्रव्यक्तलोकस्थितिः,  
प्रास्ताशः प्रतिभापरः प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तरः।  
प्रायः प्रश्नसहः प्रभुः परमनोहारी परानिन्दया,  
ब्रूयाद्वर्मकथां गणी गुणनिधिः प्रस्पष्टमिष्टाक्षरः॥ (5) -आत्मानुशासन  
धर्मकथा कहने का अधिकारी हो प्रज्ञायुत शास्त्रज्ञ।  
हो प्रतिभा-सम्पन्न, क्षीण-आशामय, लोक-स्थिति का विज्ञ॥।  
प्रश्न, प्रागदृष्टा प्रश्नों का, प्रश्न सहन करने वाला।  
प्रभुतायुत, गणनिधि, मूदुभाषी, सबका मन हरने वाला॥ (5)

धर्म कथा कहने वाले गणनायक आचार्य (गणी) में निम्न गुण होना चाहिए।

- (1) वह बुद्धिमान होना चाहिए क्योंकि बुद्धिहीन में वक्तापना संभव नहीं है।
- (2) वह समस्त शास्त्रों के रहस्य का जानकार होना चाहिए क्योंकि शास्त्रों के साङ्घोपाङ्घ ज्ञान बिना यथार्थ अर्थ भासित नहीं होता।
- (3) वह लोक व्यवहार का ज्ञाता होना चाहिए, क्योंकि लोक-रीति के ज्ञान बिना वह लोक विरुद्ध वर्तन करेगा।
- (4) वह आशावान् (महत्वकाँकी) नहीं होना चाहिए क्योंकि आशावान् होने पर वह श्रोताओं का मनोरञ्जन करना चाहेगा, यथार्थ अर्थ का प्रलृपण नहीं करेगा।
- (5) वह कान्तिमान् और प्रतिभाशाली होना चाहिए, क्योंकि शोभायमान् न होने पर यह महान् कार्य उसे शोभा नहीं देगा।
- (6) वह उपशम परिणाम वाला होना चाहिए, क्योंकि तीव्र कषायी व्यक्ति सबके लिए अनिष्टकारी और निन्दा का स्थान होगा।
- (7) वह श्रोताओं द्वारा प्रश्न करने के पहले ही उत्तर का जानकार होना चाहिए, क्योंकि स्वयं ही प्रश्नोत्तर करके समाधान करने से श्रोताओं

को उपदेश में दृढ़ता होगी।

- (8) वह प्रचुर प्रश्नों को सहने की क्षमता वाला होना चाहिए, क्योंकि यदि वह प्रश्न करने पर नाराज होगा तो श्रोता प्रश्न नहीं करेंगे तो उनका सन्देह कैसे दूर होगा ?
  - (9) वह प्रभुता सहित होना चाहिए, क्योंकि श्रोता उसे अपने से ऊँचा जानेंगे तभी उसका कहना मानेंगे।
  - (10) वह दूसरों का मन हरने वाला (उन्हें अच्छा लगने वाला) होना चाहिए, क्योंकि जो असुहावना लगे उसकी शिक्षा श्रोता कैसे मानेंगे ?
  - (11) वह गुणों का निधान होना चाहिए, क्योंकि गुणों के बिना गणनायकपना शोभा नहीं देता।
  - (12) वह स्पष्ट और मिष्ट वचन कहने वाला होना चाहिए, क्योंकि स्पष्ट वचन कहे बिना लोग समझेंगे नहीं और मिष्ट वचन कहे बिना श्रोताओं को सुनने में रुचि नहीं होगी।
- श्रुतमविकलं शुद्धा वृत्तिः पर प्रतिबोधने,  
परिणतिरुद्योगो मार्गप्रवर्तन सद्विधौ।  
बुधनुतिरनुत्सेको लोकज्ञता मूदुताऽस्पृहा,  
यतिपतिगुणा यस्मिन्नन्ये च सोऽस्तुगुरुःसताम्॥(6)

जिसमें निम्न गुण हों वह यतिपति-आचार्य सत्पुरुषों को उपदेश देने वाला गुरु होता है।

- (1) सम्पूर्ण सन्देह रहित शास्त्र ज्ञान हो।
- (2) शुद्ध, निर्दोष और यथायोग्य मन-वचन-काय की प्रवृत्ति हो।
- (3) दूसरों को सम्बोधित करने की भावना हो।
- (4) जिन-मार्ग का प्रवर्तन करने की भली (यथार्थ) विधि में भला उद्यम करने वाला हो।
- (5) ज्ञानीजनों द्वारा जिसे नमन (सम्मानित) किया जाता हो तथा जो विशेष ज्ञानियों को विनयभाव से नमन करता हो।
- (6) उद्धतपना तथा भयवान् न हो।

- (7) लोक व्यवहार (रीति) का ज्ञाता हो।
- (8) कोमलता सहित हो।
- (9) वाञ्छा रहित हो।
- (10) यतीश्वर सम्बन्धी अन्यगुण भी हों।

### सच्चे श्रोता का स्वरूप

(स्वाध्यायी का स्वरूप)

**भव्यः किं कुशलम् ममेति विमृशन् दुःखाद्भृशं भीतवान्,  
सौख्येषी श्रवणादिबुद्धिविभवः श्रुत्वा विचार्य स्फुटम्।  
धर्मं शर्मकरं दयागुणमयं युक्त्यागमाभ्यां स्थितं,  
गृह्णन्धर्मकथां श्रुतावधिकृतः शास्यो निरस्ताग्रहः॥ (7)**

धर्म कथा सुनने के अधिकारी शिष्य (श्रोता) में निम्न गुण होना चाहिए-

- (1) वह भव्य होना चाहिए, क्योंकि जिसकी होनहार भली न हो उसका सुनना कार्यकारी कैसे होगा।
- (2) उसे 'मेरा कल्याण किसमें है' - इसका विचार होना चाहिए, क्योंकि जिसे अपने भले-बुरे (हित-अहित) का विचार नहीं है, वह सीख (उपदेश) क्यों सुनेगा ?
- (3) वह दुःखों से बहुत अधिक डरता हो, क्योंकि जिसे नरकादि का भय नहीं है, वह पाप छुड़ाने वाला शास्त्र क्यों सुनेगा ?
- (4) वह सुख का अभिलाषी होना चाहिए, क्योंकि जो भविष्य में सुख चाहेगा, वही धर्म-साधन कराने वाला शास्त्र सुनेगा।
- (5) उसमें श्रवण आदि बुद्धि का वैभव (बौद्धिक विशेषताएँ) होना चाहिए, क्योंकि इनके बिना शिष्यपना नहीं होता। वे विशेषताएँ निम्नानुसार हैं:-
- (क) सुश्रूषा - सुनने की इच्छा
- (ख) श्रवण - सुनना
- (ग) ग्रहण - मन द्वारा जानना

- (घ) धारणा - नहीं भूलना
- (ङ.) विज्ञान - विशेष विचार करना
- (च) ऊहापोह - प्रश्नोत्तर करके निर्णय करना
- (छ) तत्त्वाभिनिवेश - तत्त्व-श्रद्धान का अभिप्राय
- (6) वह सुखदायक, दयागुणमय तथा अनुमान और आगम से सिद्ध धर्म को सुनकर, विचारकर, ग्रहण करने वाला होना चाहिए क्योंकि ऐसा ही धर्म शिष्य के लिए कार्यकारी है।
- (7) वह खोटे हठ (दुराग्रह) से रहित होना चाहिए, क्योंकि हठ करके आपाथापी (अपनी ही बात की स्थापना करना) करने वाले को सीख नहीं लगती।

उक्त गुणों से युक्त जीव ही धर्म कथा सुनने का अधिकारी है, उसी का भला (हित) होता है। इन गुणों के बिना धर्म कथा सुनना कार्यकारी नहीं होता है।

### रागादि छोड़ने की प्रेरणा

(कुज्ञानादि एवं सुज्ञानादि के फल)

**कुबोधरागादिविचेष्टितैः फलं त्वयापि भूयो जननादिलक्षणम्।  
प्रतोहि भव्य प्रतिलेमवृत्तिभिः ध्रुवं फलं प्रास्यसि तद्विलक्षणम्॥ (106) आत्मानुशासन**  
हे भव्य ! तूने स्वयं कुज्ञान और रागादिरूप विपरीत चेष्ठाओं के द्वारा जन्म-मरणादिरूप फल प्राप्त किया है। अतः अब तू ऐसी प्रतीति कर कि इनसे विपरीत प्रवृत्तियाँ करके उनक फल से विपरीत फल (मुक्ति)प्राप्त हो।

लोक में भी ऐसा नियम है कि जिस कारण से जो कार्य उत्पन्न होता है उससे विपरीत कारण से विपरीतफल उत्पन्न होता है। जैसे - गर्भी से उत्पन्न होने वाला रोग उससे विपरीत शीतल वस्तु से नष्ट हो जाता है। अतः हे भव्य ! तूने अज्ञान और असंयम से जन्म-मरणादि के दुःख स्वरूप फल पाये हैं। यदि किसी कारण से एक ही बार कोई कार्य उत्पन्न हुआ होगा, परन्तु संसारी जीव तो अनादि से बारम्बार अज्ञान और असंयम का सेवन कर रहे हैं और इन्हें जन्म-मरण का दुःख होता दिख रहा है इसलिए यहाँ कोई भ्रम भी नहीं है।

किसी पदार्थ को जब-जब खायें, तब-तब वही रोग उत्पन्न हो तो जानना चाहिए कि यह पदार्थ ही इस रोग का कारण है। यदि किसी और को रोग हुआ हो तो भी (रोग के कारण के सम्बन्ध में) भ्रम हो सकता है। अतः तू स्वयं ही विचार कर कि “मैं कैसा परिणमन कर रहा हूँ और क्या फल पा रहा हूँ।” इसलिए यदि तुझे यह फल बुरा लगता हो तो तू जैसे ज्ञान रूप परिणमन कर रहा है, वैसे परिणमन करना छोड़।

अज्ञान और असंयम से विपरीत सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र हैं, उनका सेवन करने पर जन्म-मरणादि फल से विपरीत अविनाशी सुखरूप मोक्ष-फल प्राप्त करने वाले जीव थोड़े हैं, उन्हें अज्ञान-असंयम जनित आकुलता मिटने तक्ताल ही कुछ सुख होता है तथा अधिक सेवन से बहुत सुख होता दिखता है। अतः जिस प्रकार किसी औषधि के सेवन से रोग घटता हुआ भासित हो तो जान लेना चाहिए कि इसके सेवन से रोग का सम्पूर्ण नाश भी होगा, उसी प्रकार यहाँ भी निश्चय करना चाहिए कि सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के सेवन से सभी दुःखों को नाश होगा इसलिए इनका सेवन करना युक्त है।

### स्वाध्याय के मूल से फल तक

सर्वःप्रेप्सति सत्सुखाप्तिमचिरात् सा सर्वं कर्मक्षयात्,  
सदवृत्तात् स च तच्च बोधनियतं सोऽप्यागमात् सश्रुतेः।  
स चाप्तात् स च सर्वदोष रहितो रागादयस्तेऽप्यतः,  
तं युक्तया सुविचार्य सर्वसुखदं सन्तःश्रयन्तु श्रिये॥ (9) आत्मा.

यह प्रत्यक्ष भासित होता है कि सभी जीव सच्चे सुख की शीघ्र प्राप्ति की अभिलाषा करते हैं। सुख की प्राप्ति सभी कर्मों का क्षय होने पर ही हो सकती है, क्योंकि सुख में बाधक कर्मों का क्षय हुए बिना सुख कैसे हो सकता है? उन कर्मों का क्षय सम्यक्चारित्र से होता है, क्योंकि बुरे आचरण से उत्पन्न होने वाले कर्मों का नाश भले आचरण के बिना कैसे होगा? वह सम्यक्चारित्र ज्ञान से ही होना निश्चित है, क्योंकि ज्ञान के बिना बुरे-भले आचरण का निश्चय कैसे होगा? वह ज्ञान आगम से ही होता है क्योंकि आगम के बिना बुरे-भले का ज्ञान नहीं होता।

आगम श्रुति अर्थात् वस्तु-स्वरूप के प्रकाशक मूल उपदेश उपदेश (दिव्य ध्वनि) के बिना नहीं होता, क्योंकि आगम की रचना का अनुसरण करने पर ही संभव है। श्रुति यथार्थ उपदेशदाता आप्त से ही होती है, क्योंकि

उपदेशदाता के बिना उपदेश कैसे सम्भव है? वे आप्त सर्व दोषों से रहित हैं, क्योंकि आप्तदोष सहित नहीं होते। वे दोष रागादि हैं, क्योंकि राग-द्रेष, काम, क्रोध, क्षुधा, निद्रा आदि दोषों के होते हुए कोई यथार्थ उपदेश नहीं दे सकता, इसलिए ये ही दोष आप्तपने के घातक हैं। इस प्रकार क्रमानुसार व्याख्यान किया। इसलिए सत्पुरुष युक्ति पूर्वक अच्छी तरह विचार करके सुख रूपी लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए सर्व सुखदाता आप्त का आश्रय करें।

श्रद्धानं द्विविधं त्रिया दशाविधं मौढयाद्यपोदं सदा,  
संवेगादिविवर्धितं भवहरं अज्ञानशुद्धि प्रदम्।  
निश्चन्वन् नवसप्ततत्त्वमचलप्रसादमारोहतां,  
सोपानं प्रथमं विनेयविदुषामाद्येयमाराधना॥(10)

आत्मा का विपरीत अभिप्राय रहित श्रद्धान सम्यग्दर्शन है, वह आत्मा का स्वरूप है। वह सम्यग्दर्शन निसर्जि और अधिगमज के भेद से दो प्रकार का है। जो उपदेशादि बाह्य निमित्तों के बिना होता है, उसे निसर्जि सम्यग्दर्शन कहते हैं और जो उपदेशादि बाह्य निमित्तों से होता है, उसे अधिगमज सम्यग्दर्शन कहते हैं।

अथवा वह सम्यग्दर्शन, तीन प्रकार का है। जो दर्शनमोह के उपशम से हो, वह औपशमिक सम्यग्दर्शन है। जो दर्शनमोह के क्षय से हो वह क्षायिक सम्यक् दर्शन है और जो दर्शनमोह के क्षयोपशम से हो वह क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन है। अथवा वह सम्यग्दर्शन दस प्रकार का है।

आज्ञामार्गसमुद्भवमुपदेशात् सूत्रबीजसंक्षेपात्।  
विस्तारार्थाभ्यां भस्मवपरमावादिगाढं च॥ (11)

आज्ञा, मार्ग, उपदेश, सूत्र, बीज, संक्षेप, विस्तार और अर्थ से उत्पन्न होने के कारण आठ भेद होते हैं तथा प्रारम्भ में अब और परमाव विशेषणयुक्त गाढ़पना होने से अवगाढ़ और परमावगाढ़ - ये दो भेद मिलाकर सम्यक्त्व के कुल दस भेद जानना चाहिए।

हेय, उपादेय तत्वों में विपरीत अभिप्राय रहित (श्रद्धानरूप) सम्यक्त्व तो एक ही प्रकार का है। आज्ञा आदि आठ कारणों से उत्पन्न होने की अपेक्षा उसके आठ भेद किए गये हैं। ज्ञान की प्रकृष्टता सहित होने की विशेषता की अपेक्षा अवगाढ़ और परमावगाढ़ ये दो भेद किये गये हैं। इस प्रकार सम्यक्त्व के दस भेद जानना चाहिए।

आज्ञासम्यक्त्वमुक्तं यदुत विरुचितं वीतरागाज्ञायैव,  
त्यक्तप्रग्रन्थप्रपञ्चं शिवममृतपथं श्रद्धधन्मोहशान्ते।  
मार्गश्रद्धानमाहुः पुरुषवरपुराणोपदेशोपजाता,  
या संज्ञानागमाब्धिप्रसृतिभिरुपदेशादिरादेशि दृष्टिः॥ (12)

हे भव्य! शास्त्र पठन के बिना वीतराग की आज्ञा से अर्थात् वचन सुनने मात्र से होने वाले श्रद्धान को आज्ञा सम्यक्त्व कहते हैं।

विस्तृत ग्रन्थों को सुने बिना, बाह्यभ्यन्तर परिग्रह रहित कल्याणकारी मोक्ष-मार्ग की श्रद्धा से दर्शनमोह उपशान्त होने के कारण होने वाले सम्यक्त्व को मार्ग सम्यक्त्व कहते हैं।

तीर्थकारादिक उत्कृष्ट पुरुषों के पुराण के उपदेश से उत्पन्न होने वाले सम्यग्ज्ञान द्वारा जो पुरुष आगम-समुद्र में प्रवीण है; उनके उपदेश से होने वाली दृष्टि को उपदेश सम्यक्त्व कहते हैं।

आकर्ण्याचारसूत्रं मुनिचरणविधेः सूचनं श्रद्धधानः,  
सूक्तासौ सूत्रदृष्टिं दुरधिगमगतेरर्थसार्थस्य बीजैः।  
कैश्चिज्जातोपलब्धेरसमशमवशाद् बीजदृष्टिः॥  
संक्षेपेणैव बुद्ध्वा रुचिमुपगतवान् साधु संक्षेपदृष्टिः॥ (13)

मुनियों के आचरण के विधान का प्रतिपादन करने वाले आचार सूत्रों को सुनने से उत्पन्न होने वाला श्रद्धान सूत्रदृष्टि वाला कहा जाता है।

गणितज्ञान के कारणभूत बीजों की उपलब्धि अर्थात् श्रद्धानरूप परिणति को बीज सम्यक्त्व कहते हैं। यह श्रद्धान दर्शनमोह के उपशम से होता है। इसके द्वारा जिनका जानना अत्यन्त कठिन है- ऐसे पदार्थों के समूह का ज्ञान होता है। इस ज्ञान से युक्त करणानुयोग के ज्ञानी भव्य जीव को बीज दृष्टि होती है। पदार्थों को संक्षिप्त रूप से जानने से होने वाले श्रद्धान को संक्षेप सम्यक्त्व कहते हैं। इस श्रद्धानयुक्त जीव को भले प्रकार संक्षेप दृष्टि होती है।

यः श्रुत्वा द्वादशाङ्गीं कृतरुचिरथं विद्धि विस्तारदृष्टिं,  
संज्ञाजार्थात् कुतश्चित् प्रवचनवचनान्यन्तरेणार्थं दृष्टिः।  
दृष्टिः साङ्गंज्ञबाह्यप्रवचनमवगाह्येत्थिता यावगाढः,  
कैवल्यालोकितार्थं रुचिरिह परमावदिगाढेति रुढाः॥ (14)

हे भव्य! तू द्वादशाङ्ग स्थान को सुनकर होने वाली रुचि को विस्तार

सम्यक्त्व जान! ऐसी रुचि वाले जीव को विस्तार दृष्टि कहते हैं।

जैन शास्त्रों के वचनों के बिना किसी अर्थ के निमित्त से होने वाली दृष्टि अर्थ दृष्टि है। इसे ही अर्थ सम्यक्त्व जानना चाहिए।

अङ्ग और अङ्गबाह्य सहित जैन शास्त्रों में अवगाहन करने से उत्पन्न होने वा दृष्टि अवगाढ़ दृष्टि है। इसी को अवगाढ़ सम्यक्त्व जानना चाहिए। इस प्रकार सम्यक्त्व के दस भेदों का स्वरूप कहा ।

जो श्रद्धान केवलज्ञान द्वारा जाने गये पदार्थों का श्रद्धान परमावगाढ़ दृष्टि के नाम से प्रसिद्ध है। इसी को परमावगाढ़ सम्यक्त्व जानना चाहिए। वीतराग के वचनों से ही उत्पन्न हो, वह आज्ञा सम्यक्त्व है। जो मोक्षमार्ग ही के श्रद्धान से उत्पन्न हो, वह मार्ग सम्यक्त्व है। उत्तम पुरुषों के पुराण आदि सुनने से उत्पन्न होने वाला श्रद्धान उपदेश सम्यक्त्व है। मुनियों के आचरण सुनने से उत्पन्न होने वाला श्रद्धान सूत्र सम्यक्त्व है। बीजगणित आदि के द्वारा करणानुयोग के निमित्तसे होने वाला श्रद्धान बीज सम्यक्त्व है। संक्षेपरूप से पदार्थों का स्वरूप सुनकर होने वाला श्रद्धान संक्षेप सम्यक्त्व है। द्वादशाङ्ग को सुनकर होने वाला श्रद्धान विस्तार सम्यक्त्व है। किसी दृष्टान्त आदि रूप पदार्थ से होने वाला श्रद्धान अर्थ सम्यक्त्व है। श्रुतकेवली को होने वाला श्रद्धान अवगाढ़ सम्यक्त्व है। केवलज्ञानी को होने वाला श्रद्धान परमावगाढ़ सम्यक्त्व है। इस प्रकार एक सम्यक्त्व के अन्य निमित्तों की अपेक्षा दस भेद जानने चाहिए।

### मोक्षमार्ग प्रदर्शक : ज्ञान

ज्ञानं यत्रपुरःसरं सहचरी लज्जा तपः संबलं  
चारित्रं शिविका निवेशनभुवः स्वर्गा गुणा रक्षकाः।  
पन्थाश्च प्रगुणः शमाम्बुबहुलश्छाया दयाभावना,  
यानं तं मुनिमापयेदभिमतं स्थानं बिना विप्लवैः॥ (125) आत्मा.

जहाँ ज्ञानरूपी मार्गदर्शक आगे-आगे चलता हो, लज्जारूपी सहचरी हो, तपरूपी सम्बल हो, चारित्ररूपी जैसा पालक हो, स्वर्ग जैसा विश्राम स्थल हो, गुणरूपी रक्षक हो, जो सीधा हो, जिसमें उपशमरूपी जल का बाहुल्य हो, दयारूपी छाया हो और भावनारूपी गमन हो-ऐसी सामग्रीयुक्त मार्ग में चलने वाले मुनि निरापदरूप से अभीष्ट स्थान को पहुँच जाते हैं।

जिस प्रकार कोई व्यक्ति किसी नगर को गमन करे और उसे योग्य मार्गदर्शक आदि अनेक सामग्री मिले तो वह निरापदरूप से उस नगर में पहुँच जाता है; उसी प्रकार किसी मोक्षाभिलाषी भव्य जीव को ज्ञानादिक सामग्री मिले तो वह निरापदरूप से मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

जिस प्रकार किसी यात्री को मार्गदर्शक मार्ग बताता है उसी प्रकार ज्ञान मोक्षमार्ग में हयोपादेय तत्वों का निर्णय कराता है।

जिस प्रकार स्त्री साथ में होने से मार्ग में सुखपूर्वक गमन होता है, उसी प्रकार धर्म सम्बन्धी लज्जा साथ में होने से मोक्षमार्ग में सुखपूर्वक प्रवर्तन होता है।

जिस प्रकार खर्च करने वाला व्यक्ति साथ हो तो शिथिलता नहीं होती उसी प्रकार तप का साधन होने से मोक्षमार्ग में शिथिलता नहीं रहती।

जिस प्रकार चढ़ाई आदि के समय पालकी में बैठकर गमन करने से थकान नहीं होती, उसी प्रकार निष्कषाय रूप चारित्र भाव से मोक्षमार्ग में प्रवर्तन करने पर खेद नहीं होता।

जिस प्रकार मार्ग में ठहरने के स्थान अच्छे हों तो वहाँ विश्राम हो सकता है, उसी प्रकार मोक्षमार्ग में ठहरने के स्थान स्वर्ग हैं, वहाँ सुखपूर्वक विश्राम हो सकता है।

जिस प्रकार रक्षा करने वाले साथ हों तो कोई लूटता नहीं है उसी प्रकार मोक्षमार्ग में क्षमादिक गुण रक्षा करने वाले हैं, अतः क्रोधादिक नहीं लूटते हैं।

जिस प्रकार मार्ग सीधा हो तो आसानी से गमन हो सकता है, उसी प्रकार मोक्षमार्ग सरल अर्थात् कपट रहित है इसलिए उसमें सुखपूर्वक प्रवृत्ति हो सकती है।

जिस प्रकार मार्ग में जगह-जगह जल उपलब्ध हो तो व्यास की तकलीफ नहीं होती उसी प्रकार मोक्षमार्ग में उपशम भावरूपी जल होने से तृष्णा का दुःख नहीं होता है।

जिस प्रकार मार्ग में छाया होने से धूप का कष्ट नहीं होता, उसी प्रकार मोक्षमार्ग में स्व-पर दया होने से सन्ताप नहीं होता।

जिस प्रकार गमन करने से गन्तव्य नगर में पहुँच जाते हैं, उसी प्रकार

शुद्ध भावना से मोक्षमार्ग में गमन करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

जिस प्रकार उपर्युक्त समस्त सामग्री मिलने पर पथिक अभीष्ट नगर में पहुँच जाता है उसी प्रकार मोक्षमार्गी भी इष्ट सामग्री (मार्गदर्शक आदि) मिलने पर मोक्ष पद को प्राप्त कर लेता है।

### शास्त्राभ्यास की प्रेरणा

अनेकान्तात्मार्थ प्रसवफल भारातिविनते, वचः पर्णकीर्ण विपुलनय शाखाशतयुते। समुतुज्ज्ञे सम्यक् प्रततमित्मूले प्रतिदिनं, श्रुतस्कन्धेधीमान् रमयतु मनो मर्कट ममु॥

(170) आत्मानुशासन

बुद्धिमान् पुरुषों को इस मनरूपी बन्दर को सदाकाल प्रतिदिन शास्त्ररूपी वृक्ष में रमाना चाहिए। यह शास्त्ररूपी वृक्ष अनेकान्तमय पदार्थ रूपी फूलों और फलों के भार से नमीभूत है, वचनरूपी पत्तों से व्याप्त है, नयरूपी सैकड़ों विशाल शाखाओं से युक्त है, अत्यन्त ऊँचा है और विस्तृत मतिज्ञान इसकी जड़ है। कोई कहेगा कि मन तो बन्दर के समान चब्बल है, इसलिए सावधानी रखने पर भी रागादिरूप परिणमित हो जाता है तो क्या करना चाहिए? ऐसा कहने वालों को शिक्षा देते हैं:-

जिस प्रकार बन्दर यदि खाली (फुरसत में) रहेगा तो कुछ न कुछ उत्पाद अवश्य करेगा, इसलिए उसे वृक्षों में रमा दो तो वह प्रसन्न भी रहेगा और किसी का कुछ नुकसान भी नहीं करेगा; उसी प्रकार मन को कोई आलम्बन नहीं रहेगा तो वह रागादि रूप प्रवर्तन अवश्य करेगा, इसलिए यदि उसे शास्त्राभ्यास में लगा दें तो वह रागादिरूप प्रवर्तन नहीं करेगा और प्रसन्न भी रहेगा।

यहाँ मात्र शास्त्रों के बाह्य पठन-पाठन आदि को ही शास्त्राभ्यास नहीं समझना चाहिए, परन्तु शास्त्र के कहे अनुसार स्वरूप का ध्यान आदि करना भी शास्त्राभ्यास ही है, क्योंकि शुक्लध्यान में भी वितर्क सहित ध्यान कहा गया है और वितर्क श्रुत को कहते हैं; इसलिए जब तक केवलज्ञान न हो तब तक शास्त्रों में मन लगाने से ही रागादि की हीनता होती है।

मनरूपी बन्दर को रमाने के लिए शास्त्रों को वृक्ष के समान कहा गया है। वृक्ष में फूल और फल सारभूत हैं और वह उनके भार से झुका रहता है। वह सघन पत्तों द्वारा सुशोभित होता है। वृक्ष की शाखाओं पर फूल और फल लगते हैं। वह अत्यन्त ऊँचा होता है। विस्तृत जड़ें ही उसके अस्तित्व का मूल

कारण हैं। वृक्ष के समान शास्त्र में भी स्याद्वाद रूप अर्थ सारभूत हैं और वे ही ग्रहण करने योग्य हैं। शास्त्र, युक्तिगर्भित वचनों से सुशोभित हैं, उनमें अनेक नयों के द्वारा कथानक करके पदार्थों का निरूपण किया जाता है। शास्त्र, तीनों लोकों में पूज्य होने से सर्वोच्च हैं। मतिज्ञान अथवा बुद्धि शास्त्रों के विस्तार में मूल कारण है। इस प्रकार वृक्ष के समान शास्त्र में बन्दर के समान मन को लगाना चाहिए।

### वस्तु का अनेकान्तिक स्वरूप

शास्त्ररूपी वृक्ष में मन लगाने वाले जीव किस प्रकार तत्त्व की भावना भाते हैं - यह बात आगमी छन्द में कहते हैं :-

**तदेव तदतद्रूपं प्राप्नुवन्न विरंस्यति।**

**इति विश्वमनाद्यन्तं चिन्तयेद्विश्ववित् सदा॥ (171)**

समस्त तत्त्वों को जानने वाले ज्ञानी अनादि निधन समस्त जीवादि वस्तुओं के बारे में चिन्तवन करते हैं कि वस्तु विवक्षित स्वरूप को तथा उससे प्रतिपक्षी स्वरूप को प्राप्त होने पर भी नष्ट नहीं होती।

शास्त्राभ्यास करने वाले ज्ञानी केवल शब्दों और अलंकारों में ही अलंकारों में ही मन को नहीं रमाते, वे वस्तु स्वरूप का चिन्तन करते हैं कि जीवादि वस्तुएँ नित्य भी हैं और अनित्य भी हैं; सत्तारूप भी हैं, असत्तारूप भी हैं; एक भी हैं, अनेक भी हैं; तत् स्वरूप भी हैं; अतत् स्वरूप भी हैं। इस प्रकार परस्पर विरुद्ध धर्म स्वरूप जीवादि वस्तुएँ कभी नष्ट नहीं होती, सदा अपने स्वाभावरूप रहती हैं। अनादि निधन समस्त जीवादि पदार्थों का यही स्वरूप है। तत्त्वज्ञानी जीव शास्त्र द्वारा इस प्रकार चिन्तवन करते हैं। ऐसे चिन्तवन से उन्हें वस्तु स्वरूप भासित होता है, जिससे सम्यग्दर्शन आदि प्राप्त करके वे अपना कल्याण कर लेते हैं।

### प्रमाण से सिद्ध वस्तु का अनेकान्तिक स्वरूप

**एकमेकक्षणे सिद्धं ध्रौव्योत्पादव्ययात्मकम्।**

**अबाधितान्यतत्प्रत्ययान्यथानुपपत्तिः॥ (172)**

एक ही वस्तु एक ही समय में ध्रौव्य-उत्पाद-व्यय-इन तीनों स्वरूप है, अन्यथा प्रमाण से अबाधित वस्तु में 'यह वही है' ऐसी प्रतीति और 'यह अन्य है' ऐसी प्रतीति सिद्ध नहीं होगी।

यदि एक ही अपेक्षा से वस्तु को तद्रूप भी कहा जाए और अतद्रूप भी कहा जाए तो भ्रम ही है, परन्तु यदि अन्य अपेक्षा से कहा जाए तो विरोध नहीं है। जैसे किसी पुरुष को एक ही व्यक्ति का पिता भी कहा जाए और पुत्र भी कहा जाए तो भ्रम ही है, परन्तु यदि उसे किसी व्यक्ति का पिता और अन्य व्यक्ति का पुत्र कहा जाए तो विरोध नहीं है, अपितु वस्तु स्वरूप की सिद्धि ही है।

एक ही वस्तु नित्य भी है और अनित्य भी है। जैसे कोई व्यक्ति पहले रंक था, फिर राजा हो गया, वहाँ उसकी अवस्था पलटने की अपेक्षा उसमें अन्यत्व भासित होता है, इसलिए 'यह अन्य है' - ऐसा माना जाता है; परन्तु मनुष्यपने की अपेक्षा पहले भी मनुष्य था और अब भी वही मनुष्य है-ऐसा एकत्र भासित होता है, इसलिए 'यह वही है' - ऐसा माना जाता है। ऐसी प्रतीति प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से बाधित नहीं है, वस्तु स्वरूप ऐसा भी भासित होता है, इसलिए वही पुरुष एक समय में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वरूप को धारण करता है। जिस समय वह रंक से राजा हुआ, उसी समय राजापने का उत्पाद है, रंकपने का व्यय है और मनुष्यपना ध्रुव है। इसी प्रकार कोई जीव मनुष्य से देव हुआ, उसमें मनुष्यपने और देवपने की अपेक्षा 'यह अन्य है'-ऐसी प्रतीति की जाती है, और जीवपने की अपेक्षा 'यह वही है' ऐसी प्रतीति की जाती है। इस प्रकार उसमें एक ही समय में देवपने का उत्पाद, मनुष्यपने का व्यय और जीवपने का ध्रौव्य ऐसे तीन भाव पाये जाते हैं।

इसी प्रकार जीवादि सभी वस्तुएँ एक ही समय में स्थूल और सूक्ष्म पर्यायों में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपने को धारण किए हुए हैं। इस प्रकार एक ही वस्तु में नित्यत्व और अनित्यत्व सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार एक ही वस्तु को स्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा सत्तारूप (अस्तित्व) और पर द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा असत्तारूप (नास्तित्व) मानना चाहिए। एक ही पुरुष, इस द्रव्यरूप है और इस द्रव्यरूप नहीं है, इस क्षेत्र में है और इस क्षेत्र में नहीं है, इस काल में है और इस काल में नहीं है तथा इस भावरूप है और इस भावरूप नहीं है-ऐसा माना जाता है, इसलिए एक ही वस्तु एक साथ सत्ता और असत्तारूप है।

इसी प्रकार वस्तु अंशी की अपेक्षा एकरूप और अंशों की अपेक्षा अनेक रूप मानना चाहिए। जैसे-एक ही पुरुष सम्पूर्ण शरीर के अपेक्षा एक रूप भी कहा जाता है और हाथ पैर आदि की अपेक्षा अनेक रूप भी कहा जाता है, 123

इसलिए एक ही वस्तु एक साथ एक-अनेक रूप है।

इसी प्रकार वस्तु तद्रूप है भी और तद्रूप नहीं भी है-ऐसा तत्त्व भासित है। अतः सम्यग्ज्ञानी जीव शास्त्रों द्वारा यथायोग्य प्रमाण से अविरुद्ध अपेक्षा से ऐसा ही विचार करते हैं।

### परस्पर विरुद्ध-धर्ममय सभी पदार्थ

कोई तर्क करता है कि वस्तु का उत्पाद-व्यय-धौव्यपना सिद्ध नहीं होता, क्योंकि उसमें सर्वथा नित्यादि एक स्वरूप ही पाया जाता है- इसका समाधान आगामी छन्द में करते हैं:-

न स्थास्तु न क्षणविनाशि न बोधमात्रं, न भावमप्रतिहत प्रतिभासरोधात्।  
तत्त्वं प्रतिक्षणभवत्तदतत्स्वरूप मायन्तहीनमखिलंच तथा यथैकम्॥ (173)

आत्मानुशासन

वस्तु सर्वथा नित्य अर्थात् स्थिर नहीं है और सर्वथा क्षणिक अर्थात् विनाशीक भी नहीं है। सर्वथा ज्ञानमात्र नहीं है और सर्वथा अभावरूप भी नहीं हैं क्योंकि सर्वथा अखण्ड एक ही धर्मरूप प्रतिभासित होने में विरोध है; अविरोध रूप से ऐसा भासित नहीं होता, क्योंकि वस्तु प्रतिसमय उस रूप (अपने स्वरूप) भी है और उस रूप नहीं भी है। वस्तु का अनादिनिधन स्वरूप ऐसा ही है। जैसे एक पदार्थ ऐसा अनेकान्तरूप भासित होता है, वैसे ही सभी पदार्थों का स्वरूप जानना चाहिए।

वस्तु का स्वरूप सर्वथा एकरूप नहीं है। अनेक अपेक्षाओं से अनेक स्वरूप है। एक ही वस्तु में अवस्था बदले बिना अर्थ-क्रिया की सिद्धि नहीं होती, इसलिए वह सर्वथा नित्य कैसे हो सकती है? और अन्य-अन्य अवस्थाएँ होने पर भी किसी भाव की नित्यता की अपेक्षा वस्तु सदैव एकरूप भासित होती है, इसलिए उसे सर्वथा क्षणिक कैसे माना जा सकता है।

इसी प्रकार ज्ञान का अस्तित्व भी भासित होता है और बाह्य पदार्थों का अस्तित्व भी भासित होता है। यदि बाह्य पदार्थों की सत्ता न मानी जाए तो प्रमाण और अप्रमाण ज्ञान का विभाग नहीं हो सकता, इसलिए सर्वथा ज्ञान की ही सत्ता नहीं है। पदार्थों का अस्तित्व तो प्रत्यक्ष भासित होता है, यदि उनका अभाव माने तो अभाव का प्रतिपादन करने वाले भी शब्दरूप पदार्थ हैं, अतः उनका भी अभाव ठहरेगा और प्रत्यक्ष को झूठा कहना उचित नहीं

है इसलिए वस्तु सर्वथा अभावरूप नहीं है।

इस प्रकार सर्वथा एकान्तरूप वस्तु का स्वरूप नहीं है। वस्तु का स्वरूप भी है और उस स्वरूप नहीं भी है। वस्तु द्रव्य की अपेक्षा नित्य है और पर्याय पलटने की अपेक्षा क्षण-विनश्वर है। ज्ञान में भासित होने की अपेक्षा ज्ञान मात्र है, बाह्य सत्तारूप वस्तुओं की अपेक्षा ज्ञानमात्र नहीं है, बाह्य वस्तु भी है। पद द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा नास्तिरूप होने से अभावरूप है और स्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा अस्तिरूप होने से अभावरूप नहीं है, सद्भावरूप है। इस प्रकार अनादि-निधन अनेकान्तरूप वस्तु का स्वरूप है।

एक पदार्थ में उक्त अनेकान्तरूप घटित होता है। जैसे-एक जीव चेतनत्वादि भावों की अपेक्षा नित्य भी है और नर-नारकादि पर्यायों की अपेक्षा अनित्य भी है। ज्ञान में प्रतिभासित जीव के आकार की अपेक्षा ज्ञानमात्र भी है। जीव अपने अस्तित्व को लिए हुए स्वतन्त्र पदार्थ भी है। पुद्गल आदि के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में जीव का अभाव भी है और अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में जीव का सद्ग्राव भी है। इस प्रकार जैसे जीव अनेकान्तरूप एक पदार्थ है, वैसे ही सभी पदार्थ अनादि निधन अनेक अपेक्षाओं से उस रूप भी है और उस रूप नहीं भी है। अतः जैसा वस्तु का स्वरूप है वैसा ही सम्यग्ज्ञान होता है, इसलिए वैसा ही मानना चाहिए।

### आत्मा का असाधारण स्वरूप

यदि अनेकान्तरूप सभी पदार्थों का साधारण स्वरूप है तो आत्मा का असाधारण स्वरूप क्या है जिसे भाने से आत्मा मुक्ति की साधना करता है- इस प्रश्न का उत्तर आगामी छन्द में कहते हैं।

ज्ञानस्वभावः स्यादात्मा स्वभाववाप्तिरच्युतिः।  
तस्मादच्युतिमाकांक्षन् भावयेज्ञान भावनाम्॥ (174)

ज्ञान आत्मा का असाधारण स्वभाव है और स्वभाव की प्राप्ति विनाश रहित है; इसलिए अविनाशी अवस्था को चाहने वाले विवेकियों को ज्ञान-भावना भाना चाहिए।

पूर्व सूत्रों में कहे गए नित्य-अनित्यादि धर्म सभी वस्तुओं में समान रूप से होते हैं, अर्थात् वे साधारण धर्म हैं, परन्तु ज्ञान अर्थात् ज्ञानना आत्मा में ही पाया जाता है, इसलिए यह आत्मा का असाधारण स्वभाव है। इसी लक्षण

से परद्रव्यों से भिन्न आत्मा के अस्तित्व का निर्णय होता है। यह नियम है कि वस्तु का अस्तित्व रहते हुए उसके स्वभाव का कभी अभाव नहीं होता, क्योंकि लक्षण का नाश होने पर लक्ष्य का अस्तित्व कैसे रहेगा?

जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने ही धन का स्वामी होकर प्रवर्तेगा तो उसकी स्थिति एक-सी रहेगी और यदि वह दूसरों के धन का स्वामी होकर प्रवर्तेगा तो उसकी स्थिति एक सी नहीं रहेगी; उसी प्रकार आत्मा का स्वभाव ज्ञान समयसार है, इसलिए उसे अपने ज्ञान का ही स्वामी होकर प्रवर्तना चाहिए। “ये पदार्थ जैसे परिणमते हैं वैसे परिणमे, मैं तो इन्हें जानने वाला ही हूँ” - ऐसी भावना रखने वाले की अवस्था अविनाशी (एकरूप) होती है, क्योंकि ज्ञान तो जीव का स्वभाव है, उसका कभी अभाव नहीं होता तथा जीव, ज्ञान से भिन्न अन्य असारभूत भावों का स्वामी नहीं होता इसलिए उसकी अवस्था भी नहीं पलटती (एकरूप रहती है)।

जो जीव पद द्रव्यों के स्वभाव का स्वामी होकर प्रवर्तता है, अपने स्वभावरूप परिणमने वाले शरीर, स्त्री, पुत्र, धनादि को अपना जानता है; उसकी अविनाशी अवस्था नहीं रहती, क्योंकि शरीरादि की अवस्था ही एकरूप नहीं रहती, इसलिए यह उनकी अवस्था पलटने परअपनी अवस्था पलटी-ऐसा मानता है, अतः अविनाशीपना नहीं रहता। इसलिए जो विवेकी अविनाशी अवस्था को चाहते हैं, उन्हें एक ज्ञान भावना ही भाना चाहिए।

### ज्ञान का फल और मोह की महिमा

पृथक्त्व-वितर्क और एकत्व-वितर्क के भेद वाले शुक्लध्यान स्वरूप और भावनारूप श्रुतज्ञान को भाने का फल क्या होगा? इस प्रश्न का उत्तर आगामी छन्द में -

**ज्ञानमेव फलं ज्ञाने ननु श्लाघ्यमनश्वरम्।  
अहो मोहस्स माहात्म्यमन्यदप्यत्र मृग्यते॥ (175)**

निश्चय से ज्ञान का फल ज्ञान ही है, वह सर्वथा प्रशंसनीय और अविनाशी है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि उससे लोग अन्य कुछ और फल चाहते हैं, इसे मोह की महिमा जानता चाहिए।

श्रुतज्ञान द्वारा पदार्थों को यथार्थ ज्ञाने का तात्कालिक फल तो उन पदार्थों का ज्ञानपना ही है और परम्पराफल केवलज्ञान है, वहाँ सर्व पदार्थों

का ज्ञानपना होता है। इस प्रकार ज्ञान का फल ज्ञान ही है, जो सर्व प्रकार से प्रशंसनीय है। निराकुलता सुख का लक्षण है और सभी जीव सुख चाहते हैं। इस सुख में पराधीनता आदि कोई दोष नहीं है। अन्य लोग उससे विषय-सामग्री रूप फल को चाहते हैं-यह मोह की महिमा है। जिस प्रकार खाज रोग होने पर रोगी का खुजाने की सामग्री अच्छी लगती है, उसी प्रकार मोह के कारण आत्मा में काम-क्रोधादि भाव उत्पन्न होने पर इस जीव को स्त्री-पुत्रादि सामग्री अच्छी लगती है, यह उन्हें चाहता है। इस जीव को ज्ञान के सिवाय अन्य फल की चाह होती देखकर ज्ञानियों को बड़ा आश्चर्य होता है। जैसे भूत लगे हुए व्यक्ति की चेष्ठा देखकर आश्चर्य होता है वैसे ही मोही जीव की चेष्ठा देखकर ज्ञानी को आश्चर्य होता है।

### भव्य और अभव्य में अन्तर

श्रुतज्ञान की भावना में प्रवृत्त भव्यों और अभव्यों को क्या-क्या फल होता है- यह बात आगामी छन्द में कहते हैं-

**शास्त्राग्नौ मणिवद्वयो विशुद्धो भाति निर्वृतः।**

**अङ्गारवत् खलो दीप्तो मली व भस्म वा भवेत्॥ (176)**

भव्य जीव शास्त्र रूपी अग्नि में असली पुष्पराग रत्न के समान मल रहित होते हुए विशुद्ध निर्मलता से सुशोभित होते हैं और दुष्ट अभव्य जीव अङ्गार के समान प्रकाशित होते हुए मलयुक्त ही रहते हैं या भस्म हो जाते हैं।

जिस प्रकार पद्मरागमणि पर लगे हुए मल का अग्नि द्वारा नाश होने पर वह शुद्ध भाव रूप प्रगट होता हुए शोभित होता है लेकिन ईंधन का अङ्गार अग्नि से प्रकाशित तो होता है, परन्तु बाद में या तो कोयलारूप मैला या काला हो जाता है अथवा भस्म होकर राख हो जाता है; उसी प्रकार धर्मात्मा भव्य जीव शास्त्राभ्यास द्वारा अज्ञान और रागादि मल का नाश होने से सिद्ध-पद को पाकर शुद्ध स्वभावरूप होता हुआ प्रशंसनीय होता है और अर्धमी अभव्यजीव शास्त्राभ्यास द्वारा पदार्थों को ज्ञानता हुआ प्रसिद्ध तो हो जाता है, परन्तु रागादि दोषों से मैला ही रहता है।

## लाभ और पूजादि की कामना का निषेध

सर्व सङ्ग के त्यागी, जन्म-मरण में समान बुद्धिवाले, सर्व शास्त्रों के ज्ञाता और दुर्द्वार तप करने वाले मुनियों को आगामी दो छन्दों में शिक्षा देते हैं :-

अधीत्य सकलं श्रुतं चिरमुपास्य घोरं तपो,  
यदीच्छसि फलं तयोरिह हिलाभपूजादिकम्।  
छिनत्सि सुतपस्तरोः प्रसवमेव शून्याशयः,  
कथं समुपलप्स्यसे सुरसमस्य पक्षं फलम्॥ (189)

सर्व शास्त्रों को पढ़कर और चिरकाल तक घोर तप की साधना करके यदि तू उनके फलस्वरूप इस लोक में ही यश, लाभ आदि फल चाहता है, तो तू विवेक रहित अभिप्राय वाला होता हुआ तपरूपी उत्तम वृक्ष के फूल को ही छेद रहा है, अतः तुझे इस तप के उत्तम रस वाले स्वर्ग-मोक्षादि उत्तम फल कैसे मिलेंगे ?

जिस प्रकार कोई व्यक्ति वृक्ष लगाता है तो उसमें पहले फूल होते हैं, बाद में फल लगते हैं; परन्तु जो फूल को ही तोड़कर ग्रहण करले उसे पके हुए मीठे फल नहीं मिलेंगे। उसी प्रकार कोई जीव बहुत शास्त्राभ्यास करे और उत्कृष्ट तपश्चरणादि करे तो उसे पहले लाभ-पूजादि प्राप्त होते हैं, अर्थात् भक्त लोग इच्छा पूरी कर देते हैं अथवा स्वयं ही ऋद्धियाँ और चमत्कारादि होते हैं-यह तो लाभ हुआ और विशेष महन्तता होती है-यह पूज्यपना हुआ। इस प्रकार लाभ-पूजादि की प्राप्ति होती है और मरने के बाद स्वर्ग-मोक्षरूप फल की प्राप्ति होती है। परन्तु जो जीव, लाभ-पूजादि को स्वयं को चाहकर अङ्गीकार करते हैं अर्थात् लोभी होकर भक्ता से कुछ लेना चाहते हैं या उनके द्वारा दिए गए धनादिक को अङ्गीकार करते हैं अथवा ऋद्धि-चमत्कारादि को चाहते हैं और उनके होने पर सन्तुष्ट होते हैं; तथा मानी होकर स्वयं महन्तपना, बड़पन चाहते हैं और अपनी महन्तता, बड़ाई होने पर मद करते हैं; अतः वे जीव परम सुखरूप रस सहित प्रगट होने वाले स्वर्ग-मोक्षरूप फल को नहीं पाते। इसलिए यह शिक्षा देते हैं कि शास्त्राभ्यास या तपश्चरणादि साधनों से लाभ-पूजादि की कामना नहीं करना चाहिए।

## तप और श्रुत का वास्तविक फल

तथा श्रुमिधीष्व शश्वदिह लोकपंक्ति बिना,  
शरीरमपि शोषय प्रथितकायसंक्लेशतैः।  
कषायविषयद्विषो विजयसे तथा दुर्जायान्,  
शमं हि फलमामनन्ति मुनयस्तपः शास्त्रयोः॥ (190)

हे भव्य ! तू लोक की पद्धति से अलग (लौकिक जीवों में शामिल हुए बिना) ऐसा शास्त्राभ्यास कर और विस्तृत काय-क्लेश के द्वारा शरीर को भी सुखा, जिससे तू दुर्जय विषय-कषायरूपी शत्रुओं को जीत सके, क्योंकि महामुनियों ने उपशमभाव को ही शास्त्राभ्यास और तप का फल कहा है।

मात्र शास्त्र पढ़ना और तप करना ही कार्यकारी नहीं है। कार्यकारी तो उपशम भाव है। जो जीव शास्त्र पढ़कर तत्त्वज्ञान से कषायों को घटाते हैं तथा तपश्चरण द्वारा इष्ट-अनिष्ट सामग्री मिलने पर भी राग-द्वेष न होने की साधना कर के कषाय को घटाते हैं, उनका शास्त्र पढ़ना और तप करना सफल है। लेकिन जो जीव शास्त्र पढ़कर और तपश्चरणादि करके विषय-कषाय के साधनों की पूर्ति करते हैं अर्थात् मन रमाने के लिए या मान बढ़ाई के लिए या भोजन-धनादि के लिए शास्त्र पढ़ते हैं और तप करते हैं, वे जीव तो लोक की पंक्ति में बैठे हैं। (लौकिक जनों की तरह हो गए हैं)। जैसे अन्य लोग विषय-कषायों के लिए व्यापार-नौकरी आदि कार्य करते हैं, वैसे इन्होंने यह उपाय किया है।

प्रश्नः - व्यापारादि में तो हिंसादि होती है और इस उपाय में हिंसादि नहीं होती, इसलिए व्यापारादि से यह उपाय तो अच्छा है ?

उत्तर : - व्यापारादि में बाह्य पाप विशेष दिखते हैं और इस उपाय में अन्तरङ्ग पाप बहुत होता है।

## कषाय-शत्रु को जीतना आसान

करोतु न चिरं घोरं तपः क्लेशासहो भवान्।  
चित्तसाध्यान् कषायारीन् न जयेद्यत्तदज्ञता॥ (212)

यदि तू काय-क्लेश सहन करने में असमर्थ होने से चिरकाल तक घोर तप नहीं कर सकता जो मन के द्वारा ही जीते जाते हैं - ऐसे क्रोध-मान-माया लोभ आदि शत्रुओं को तो जीत ! यदि इन्हें भी नहीं जीतता तो यह बड़ी

अज्ञानता है, क्योंकि कषाय जीतने में तो कोई काय-कलेश नहीं है, इसमें तो मन ही सुलटना है।

### कषायों के रहते हुए गुणों की प्राप्ति होना दुर्लभ

हृदयरसि यावन्निर्मलेऽप्यत्यगाधे,  
वसति खलु कषायग्राहचक्रं समन्तात्।  
श्रयति गुणगणोऽयं तत्र तावद्विशङ्कः  
सयमशमविशैस्तान् विजेतुं यतस्व॥ (213)

जब तक तेरे निर्मल हृदयरूपी अगाध सरोवर में निश्चय से कषायरूपी जलचरों के समूह का निवास है, तब तक उसमें गुणों का समूह निःशंक होकर प्रवेश नहीं कर सकता; इसलिए शम-दम-यम के भेदों से कषायों को जीतने का प्रयत्न करना चाहिए। शम अर्थात् रागादि के त्यागरूप समता भाव, दम अर्थात् मन और इन्द्रियों का निरोध तथा यम अर्थात् जीव हिंसा आदि का त्याग।

जब तक तेरे हृदय में कषायें विद्यमान हैं तब तक तू शम-दम आदि गुणों को लेशमात्र भी अङ्गीकार नहीं कर सकता, इसलिए अपना कल्याण करने के लिए कषायों को छोड़।

### मान के त्याग की प्रेरणा

सत्यं वाचि मतौ श्रुतं हृदि दया शौर्यं भुजे विक्रमे,  
लक्ष्मीर्दानमनूनमर्थिनिचये मार्गो गतिर्निर्वृते।  
येषां प्रागजनीह तेऽपि निरहङ्गारा श्रुतेगर्ऊचराः,  
चित्रं सम्प्रति लेशितोऽपि न गुणास्तेषां तथाप्युद्धता॥ (218)

इस लोक में पहले अनेक महापुरुष हुए हैं, वे वचनों में सत्य, शास्त्रों में बुद्धि, हृदय में दया, भुजाओं में शौर्य युक्त पराक्रम, लक्ष्मी के याचकों को पूर्णदान और निवृति मार्ग में गमन आदि अनेक गुण युक्त होने पर भी अहंकार रहित थे- ऐसा शास्त्रों में कहा है। लेकिन इस कलि-काल में लेशमात्र गुण नहीं होने पर भी लोग उद्धत होकर महार्गव में चूर हो रहे हैं-यह बड़े आश्चर्य की बात है।

**निकट भव्य जीवों को होने वाले भाव**

विषयविरतिः संगत्यागः कषायविनिग्रहः,  
शमयमदमास्तात्वाभ्यासस्तपश्चरणोद्यमः।  
नियमितमनोवृत्तिर्भवितर्जिनेषु दयालुता,  
भवति कृतिनः संसाराब्धेस्तटे निकटे सति॥ (224)

विवेकी जीवों को संसार-समुद्र का किनारा निकट आने पर विषयों से विरक्तता, परिग्रह का त्याग, कषायों का निग्रह, शम (शान्ति अर्थात् रागादि का त्याग) दम (मन और इन्द्रियों का निरोध) और यम (जीवन पर्यन्त हिंसादि पापों का त्याग)-इनका धारण, तत्त्व का अभ्यास, तपश्चरण का उद्यम, मन की वृत्तियों का निरोध, जिनेन्द्र भक्ति और जीवों की दया इत्यादि सामग्री प्राप्त होती है।

यमनियमनितान्तः शान्तबाह्यान्तरात्मा,  
परिणमितसमाधिः सर्वसत्त्वानुकम्पी।  
विहितहितमिताशी वलेशजालं समूलं,  
दहति निहतनिद्रो निश्चिताध्यात्मसारः॥ (225)

यम और नियम योग के मूल हैं, यम अर्थात् अयोग्य क्रियाओं का आजीवन त्याग और नियम अर्थात् घड़ी, पल, प्रहर, पक्ष, मास, चातुर्मास आदि की मर्यादा में संवर या त्याग। इनके पालन में साधु सदैव तत्पर रहते हैं। वे महाशान्त-चित्तवाले होते हैं। उनके भावों में देहादि बाह्य पदार्थों से निवृत्ति हो जाती है। समाधि अर्थात् निर्विकल्प दशा रूप परिणमित होते हैं। सभी जीवों के प्रति दया भाव रखते हैं। विहित अर्थात् शास्त्रोक्त विधि से योग्य अल्प आहार लेते हैं। निद्राजयी होते हैं। अध्यात्म के सारभूत आत्म-स्वभाव का निश्चय करने वाले होते हैं। निरन्तर आत्मानुभव में मग्न रहते हैं।

### गुणों से मण्डित मुनिराज ही मुक्ति के पात्र

समाधिगत समस्ताः सर्वसावद्यूराः,  
स्वहितनिहितचित्ताः शान्तसर्वप्रचाराः।  
स्वपरसफलजल्पाः सर्वसंकल्पमुक्ताः,  
कथमिह न विमुक्त्वर्भाजनं ते विमुक्ताः॥ (226) आत्मानुशासन

जो समस्त त्यागने योग्य और ग्रहण करने योग्य वस्तुओं का स्वरूप

भलीभाँति जानते हैं, हिंसादि सभी पापों से दूर हैं, जिनका चित्त आत्म-कल्याण के कारणभूत सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित है, सर्व इन्द्रियों के विषयों से निर्वृत्त हो गए हैं, जिनके वचन स्व-पर कल्याण करने वाले हैं और जो समस्त संकल्प-विकल्पों से रहित हैं- वे महापुरुष सर्व प्रपञ्चों से रहित होते हुए मुक्ति के भाजन (पात्र) क्यों न होंगे? अर्थात् वे निःसंदेह शिव-सुख के पात्र होंगे।

### तप और श्रुतरूपी निधि की रक्षा करने की प्रेरणा

**तपः श्रुतमिति द्वयं बहिरुदीर्घस्फृङ् यदा,**  
**कृषिफलमिवालये समुपलीयते स्वात्मनि।**  
**कृषीबल इवोज्जितः करणचौरबाधादिभिः,**  
**तदाहि मनुतेयतिः स्वकृतकृत्यां धीरधीः॥ (229)**

जैसे खेत में बीज बोकर खेती करने वाला किसान चोद आदि की बाधाओं से रहित होकर अपने घर में अन्न लाकर रखने पर ही अपने को कृतार्थ मानता है। वैसे ही साधु तप और श्रुत की वृद्धि करके इन्द्रियादिक चोरों की बाधाओं से रहित होता हुआ अपने आत्म-स्वरूप में लीन होकर ही अपने को कृतार्थ मानते हैं।

जैसे वह किसान भी अपने कर्तव्य का कृतार्थपना (पूर्ति होना) तभी मानता है जब विना किसी बाधा के अनाज घर में आ जाता है। वैसे ही धीर बुद्धि वाले साधु भी अपने संयम का कृतार्थपना तभी मानते हैं, जब इन्द्रिय आदि चोरों की बाधा से रहित तप-श्रुतरूपी बीज का ज्ञानरूपी फल अपने में धारण कर लेते हैं; अर्थात् आत्मस्वरूप में लीन हो जाते हैं।

### ग्रन्थ रचना एवं स्वाध्याय का फल -

#### अविद्या नाशक तथा आनन्द दायक

**अविद्या प्रसारोद् भूतग्रह निग्रहकोविदम्।**  
**ज्ञानार्णवमिमं वक्ष्ये सतामानन्दमन्दिरम्॥ (11) ज्ञाना.पृ.6**

आचार्य कहते हैं कि मैं इस ज्ञानार्णव नाम के ग्रन्थको कहूँगा। कैसा होगा यह ग्रन्थ अविद्या के प्रसार से (फैलाव से) उत्पन्न हुए आग्रह (हठ) तथा पिशाचकों : निग्रह करने में प्रवीण तथा सत्पुरुषों के लिए आनंद का मंदिर।

यहाँ अविद्या शब्द से मिथ्यात्म कर्म के उदय से अज्ञान का ग्रहण करना चाहिये। उस अज्ञान का प्रसार अनादिकाल से जीवों के हृदय में व्याप्त होने के कारण उत्पन्न हुआ जो एकान्तरूप हठ उसको यह ज्ञानार्णव नामक शास्त्र तथा इसका ज्ञान, निराकरण करने वाला है और अवस्तु में ध्याता ध्यान ध्येय फल कहे का? शास्त्रों में मिथ्यात्व दो प्रकार का कहा गया है। एक अग्रहीत दूसरा ग्रहीत। इनमें से अग्रहीत मिथ्यात्व तो जीवों के बिना उपदेश ही अनादिकाल विद्यमान है सो इनमें एकान्तपक्ष संसार देह भोगों को ही अपना हित समझ लेना है। इस प्रकार समझ लेने से जीवों को आर्त रौद्रध्यान स्वयमेव प्रवर्तते हैं और ग्रहीत मिथ्यात्व है सो उपदेश जन्य है उसके कारण, यह जीव वस्तु का स्वरूप सर्वथा सत् अथवा असत् सर्वथा नित्य तथा अनित्य तथा सर्वथा एक तथा अनेक, सर्वथा शुद्ध तथा अशुद्ध इत्यादि भिन्न धर्मियों का कहा हुआ सुनकर उसी पक्ष को दृढ़कर उसी को मोक्ष मार्ग समझ लेता है वा श्रद्धान कर लेता है। सो उस श्रद्धान से कुछ भी कल्याण कि सिद्धि नहीं है। इस कारण उस एकान्त हठ का निराकरण जब स्याद्वाद की कथनी सुने, तब ही सर्वथा नष्ट हो। वस्तु का यथार्थ स्वरूप जाने और श्रद्धान करे, तब ही ध्याता ध्यान ध्येय फल कि संभवता वा असंभवता का निश्चय हो। इसी अभिप्राय से आचार्य महाराज ने यह ज्ञानार्णव शास्त्र रचा है इसी में समस्त संभवासंभव जाना जायगा, ऐसा आशय व्यक्त होता है- (11)

**भवप्रभव दुर्वार क्लेश शसन्तापपीडितम्।**  
**योजयाम्यहमात्मानं पथि योगीन्द्रसेविते॥ 18॥**

आचार्य महाराज कहते हैं कि इस ग्रन्थ के रचने से संसार में जन्म ग्रहण करने से उत्पन्न हुए दुर्निवार क्लेशों के संताप से पीड़ित मैं अपने आत्मा को योगीश्वरों से सेवित ज्ञान ध्यान रूपी मार्ग में जोड़ता हूँ।

**यह अपना प्रयोजन संसार के दुःख दूर करने का ही जनाया है॥**  
**न कविन्वाभिमानेन न कोर्तिप्रसरेच्छया।**  
**कृतिः किन्तु मदीयेयं स्वबोधायैव केवलम्॥ 19॥**

अर्थ - यहाँ ग्रन्थ रूपी मेरी कृति (कार्य) है, सो केवल मात्र अपने ज्ञान की वृद्धि के लिए है। कविता के अभिमान से तथा जगत् में कीर्ति अभिप्राय से नहीं की जाती है।

यहाँ आचार्य महाराज ने ग्रन्थ रचने में लौकिक प्रयोजन साधने का निषेध किया है।

अयं जागर्ति मोक्षाय वेति विद्यां भ्रमं त्यजेत्।

आदते समसाम्राज्यं स्वतत्त्वाभिमुखीकृतः ॥20॥

न हि केनाप्युपायेन जन्मजातङ्कः संभवा।

विषयेषु महातृष्णा पश्य पुंसां प्रशास्यति ॥21॥

तस्याः प्रशान्तये पूज्यैः प्रतीकारः प्रदर्शितः।

जगज्जन्तुपकाराय तस्मिन्नस्यावधीरणा ॥22॥

अनुद्विग्नैस्तथाप्यस्य स्वरूपं बन्धमोक्षयोः।

कीर्त्यते येन निर्वेदपदवीमधिरोहति ॥23॥

निरूप्य सच्च कोऽप्युच्चैरुपदेशोऽस्य दीयते।

चैनादते परां शुद्धिं तथा त्यजति दुर्मतिम् ॥24॥

सत्पुरुष ऐसा विचारते हैं कि, यह प्राणी अपना निजस्वरूप तत्व के सन्मुख करने से मोक्ष के अर्थ जगता है। मोह निद्रा को छोड़ कर सम्यग्ज्ञान को जानता है तथा भ्रम कहिए-अनादि अविद्याको छोड़कर उपशम भाव रूपी (मन्द कथाय रूपी) साम्राज्य को ग्रहण करता है ॥20॥ और देखो कि पुरुषों की विषयों में महातृष्णा है। वह तृष्णा कैसी है? जो किसी भी उपाय से नष्ट नहीं होती (21) उस तृष्णा की प्रशान्ति के अर्थ पूज्य पुरुषों ने प्रतीकार (उपाय) दिखाया है और वह जगत् के जीवों के उपकारार्थ ही दिखाया है। किन्तु यह जीव उस प्रतिकारकी अवज्ञा (अनादर) करता है। तथापि उद्वेगरहित पूज्य पुरुषों के द्वारा इस प्राणी के हितार्थ बन्ध मोक्ष का स्वरूप वर्णन किया जाता है जिससे यह प्राणी वैराग्य पदवी को प्राप्त हो। इस कारण कोई अतिशय समीचीन उपदेश विचार करके इस प्राणी को देना चाहिए, जिससे यह प्राणी उत्कृष्ट शुद्धता को ग्रहण करे और दुर्बुद्धिको छोड़ दे। भावार्थ - सत्पुरुष इस प्रकार विचार कर जीवों के संसार सम्बन्धी दुःख दूर करने के लिए ऐसा उपदेश देते हैं, वा शास्त्रों की रचना करते हैं।

अहो सति जगपूज्ये लोकद्वयविशुद्धिदे।

ज्ञानशास्त्रे सुधीः कः स्वमसच्छास्त्रैर्विडम्बयेत् ॥ (25)

अहो! जगत्पूज्य और लोक परलोक में विशुद्धि के देने वाले समीचीन ज्ञानशास्त्रों के होते हुए भी ऐसा कौन सुबुद्धि है, जो मिथ्याशास्त्रों के द्वारा अपने आत्मा को विडंबनारूप करे।

मोक्ष के ज्ञाता-गुरु से आत्मज्ञान

गुरुपदेशाभ्यासात्संवित्तेः स्वपरान्तरम्।

जानाति यः स जानाति मोक्षसौख्यं निरन्तरम्॥ (इष्टो.पृ. 155)

He who has acquired the discrimination between the self and the not-self through the teaching of preceptor, by repeated meditation on the nature of things, or by direct inner self perception, that great soul enjoys the happiness appertaining of salvation constantly!

जो स्वयं को पर से भिन्न देखता और वह संविति लक्षण स्वरूप स्वलक्षण अनुभव से जानता है। यह इसका तात्पर्य है। यह अभ्यास से भावना के बल पर सम्भव होता है और यह सुदृढ़ स्वपर विवेक ज्ञान उत्पादक आध्यात्मिक गुरु के उपदेश के माध्यम से सम्भव होता है। इन प्रक्रियाओं से युक्त वह साधक दूसरों के अनुभव से रहित स्व अनुभव से भावित निरन्तर अर्थात् अंकित्यन्य रूप से अपनी आत्मा की भावना से जायमान होती है और कर्म से मुक्त वह अवस्था रहती है। तत्वानुशासन में कहा भी है- उस कर्म से भिन्न निर्मल आत्मा के ध्यान से परम एकाग्रता की प्राप्ति होती है और वचन से परे आत्मा का अधिक आनन्द का भी अनुभव करता है।

**समीक्षा:-** इस श्लोक में आचार्य श्री ने मोक्ष प्राप्ति में कारण भूत सद्गुरु का उपदेश सुनकर उस उपदेश से शिष्य में उत्पन्न हुआ भेदविज्ञान और भेद विज्ञान से प्राप्त हुआ मोक्ष सुख का व्यवस्थित क्रमबद्ध वर्णन किया है। सम्यग्दर्शन प्राप्ति के लिए अनेक बहिरंग कारण में गुरु-उपदेश भी एक कारण है और अन्तरंग कारण भी एक भाव की निर्मलता है। सम्यग्दर्शन के बाद ज्ञान सम्यग्ज्ञान हो जाता है तथापि आध्यात्मिक अनुभावात्मक सूक्ष्म रहस्य का परिज्ञान भी गुरु से प्राप्त होता है। इसके आधार पर शिष्य आध्यात्मिक साधना की गहराई में पहुँचता है और आत्मा में स्थिर होकर शाश्वतिक मोक्ष सुख को प्राप्त करता है। शिक्षा विज्ञान में मुख्य चार तत्व होते हैं। यथा-शिक्षा, शिक्षक, शिक्षार्थी, शिक्षाफल। जिसके द्वारा मनुष्य सुसंस्कृत सुसभ्य, सुसंस्कारित बनता है। उसे शिक्षा कहते हैं। शिक्षा का फल है आत्मा में निहित अनन्त शक्तियों का प्रकटीकरण। यथा-ज्ञान प्राप्ति, विनप्रता, समायोजना, सदाचार, स्वावलम्बन, रत्नत्रय आदि। इस प्रकरण में हम गुरु अथवा शिक्षक के बारे में विचार विमर्श करेंगे। प्राचीन काल में शिक्षकों को विशेषतः गुरु नाम से ही सम्बोधित किया जाता था। गुरु की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि ---

गुरुभिकारस्तु 'रु' तस्य निरोधकम्।  
अन्धकारः निरोधत्वात् गुरुः इत्यभिधियते॥

गुरु=गु=अंधकार, रु=प्रकाश। जो अज्ञान रूपी अन्धकार को हटाकर प्रकाश में ला दे वही गुरु है। वही तारण-तरण है। अपने आप भी तिरते हैं दूसरों को भी तिराते हैं। गुरु गुणों से भारी यानि जिसमें गुण भरे हो उसे गुरु कहते हैं। जो गुणों से खाली है वह गुरु नहीं है। अज्ञान महान् अन्धकार है। भौतिक अन्धकार में केवल हमें भौतिक वस्तु चक्षु से नहीं दिखाई देती है। परन्तु अज्ञान रूपी महान् अन्धकार में व्यक्ति सूर्य के प्रकाश में भी केवल चक्षु से ही नहीं अन्य चारों ज्ञानेन्द्रियों से एवं मन से भी सत्यस्वरूप को वस्तु स्वरूप को कुछ नहीं देख सकता है। कुछ नहीं जान सकता है। इसलिये अज्ञान को महातिमिर, महान्धकार कहा गया है। गुरु ज्ञान रूपी शलाका से उस अन्धकार को दूर करता है।

अज्ञान तिमिरान्धानां, ज्ञानांजनशलाक्या।  
चक्षुरुच्छमीलितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः॥

अज्ञान रूपी अन्धकार से आच्छन्न विवेक रूपी चक्षु को जो ज्ञानरूपी शलाका से उद्धाटित करता है उस गुरु को नमस्कार हो। भारतीय परम्परा में गुरु का स्थान सर्वोपरि है। भारतीय परम्परा में कुछ लोग मूर्ति पूजा को विश्व का कर्ता मानते हैं। तो कुछ लोग मूर्तिपूजा को नहीं मानते हैं। कुछ लोग ईश्वर को कुछ आत्मा को मानते हैं। तो कुछ ईश्वर को विश्व का कर्ता नहीं मानते हैं। तो कुछ आत्मा को नहीं मानते हैं परन्तु गुरु को तो सब लोगों ने किसी न किसी रूप में अवश्य माना है। धार्मिक एवं दार्शनिक सम्प्रदाय में गुरु का महत्व तो है ही लौकिक कार्य में भी गुरु का महत्व है। जो दर्जी का कार्य सीखता है और वह जिससे सीखता है उसको है इसी प्रकार संगीत, नृत्य, चित्र, शिल्प, पाकशास्त्र आदि जिससे सीखते हैं उसे वह गुरु (उस्ताद) मानते हैं। भारतीय परम्परा में गुरु के लिए एक श्लोक बोलते हैं जो निम्न है।

गुरुब्रह्मः गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।  
गुरु साक्षात् परमब्रह्म तस्मैः श्री गुरुवे नमः॥

अर्थात् - गुरु ब्रह्म है गुरु विष्णु है, गुरु महेश्वर है गुरु साक्षात् परम-

ब्रह्म है इसलिए गुरु को नमस्कार है। गुरु शिष्य का निर्माण करता है इसलिए गुरु ब्रह्म है, शिष्य का नैतिक एवं शैक्षणिक पोषण गुरु करता है। इसलिए गुरु विष्णु है और गुरु शिष्य में स्थित अज्ञान, प्रमाद, अनुशासन-विहीनता, जड़ता आदि को दूर करता है इसलिए गुरु महेश्वर है। गुरु प्रत्यक्ष रूप से हमें परम ब्रह्म का स्वरूप बताते हैं और वे स्वयं परम ब्रह्म के बारे में अनुसंधान, शोध एवं उपलब्धि के लिए प्रयासरत रहते हैं तो कुछ आत्मा से परमात्मा को प्राप्त कर लेते हैं इसलिए साक्षात् परम ब्रह्म है। इसलिए कबीर ने कहा है।

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागु पाय।  
बलिहारी गुरु आपकी गोविन्द दियो बताय॥

गुरु हमें सत्य स्वरूप का वस्तु, स्वरूप का परिज्ञान देते हैं इसलिए भगवान् से पहले गुरु को नमस्कार किया गया। क्योंकि गुरु के उपदेश एवं मार्गदर्शन से भगवान् का ज्ञान होता है एवं उनका साक्षात्कार होता है। जैन धर्म के अनुसार जीव की प्रथम बार जो सम्यक् दर्शन होता है। वह सम्यक् दर्शन गुरु के उपदेश बिना नहीं होता है। जो तीर्थकर भी बने हैं। वे भी पहले कभी न कभी गुरु के उपदेश से सम्यक् दर्शन को प्राप्त किये हैं। बिना सम्यक् दर्शन ज्ञान, सम्यक् ज्ञान नहीं होता है एवं चारित्र सम्यक् नहीं होता है। तीर्थकर भी जब दीक्षा लेते हैं तब सिद्ध भगवान् का स्मरण करके उन्हें गुरु रूप में स्वीकार करके 'नमःसिद्धेम्यः बोल करके दीक्षा लेते हैं। इससे गुरु का महत्व कितना है परिज्ञान हो जाता है। जैन धर्म में तो अरिहन्त भी गुरु है तो सिद्ध भी गुरु हैं। आचार्य, उपाध्याय, साधु भी गुरु हैं। उन्हें पंच गुरु या पंच परमेष्ठी कहते हैं। प्रत्येक देश में, काल में समाज में जो क्रान्ति हुई उसका मूल कारण गुरु ही है। गुरु एक क्रांतिकारी सत्य-शोधक, नवीन-नवीन तथ्य के उन्नायक महापुरुष होते हैं। गुरु के बिना यह कार्य नहीं हो सकता है। अलेक्झेंडर (सिकन्दर) महान् बना गुरु अरस्तु के कारण। चन्द्रगुप्त मौर्य दिग्विजयी बना गुरु कोटिल्य चाणक्य के कारण। शिवाजी, छत्रपति बना गुरु समर्थ रामदास के कारण। मोहनदास महात्मा गांधी बने रामचन्द्र जैन के कारण। इस प्रकार ऐतिहासिक काल के पहले ही राजा, महाराजा, सम्राट् भी गुरुओं के चरण के सानिध्य में जाकर ज्ञान-विज्ञान, आत्मविद्या, राजनीति, अर्थशास्त्र, युद्धविद्या, कलाकौशल, गुरुओं से ग्रहण करते आ रहे हैं। "गुरु बिना सर्वे भवति पशुभिः सनिभः" गुरु के बिना मनुष्य पशु के सदृश है। पशुओं

के कोई गुरु नहीं होते हैं। इसलिए पशुओं की उन्नति नहीं होती है। इस ही प्रकार मनुष्य-समाज में गुरु नहीं होते तो मनुष्य समाज भी पशुवत् हो जाता।

‘गुरु बिना कौन दिखावे वाट, अबघड़ डोंगर घाट’

गुरु के बिना यथार्थ मार्ग प्रदर्शन कौन करेगा? यह संसार कंटकाकीर्ण, अत्यन्त दुरुह, भयंकर जंगलधाटी के समान है। उसको पार करने के लिये गुरु रुपी मार्गदर्शक की नितान्त आवश्यकता है।

### बुद्धिमानों के उपदेश

कोषेषु मूल्यवान् कोषः कर्णकोषोऽस्ति सर्वथा।  
सम्पदासु च सर्वासु स श्रेष्ठो नात्र संशय (1) कुरल काव्य पृ.42

सबसे बहुमूल्य, निधियों में कानों की निधि है, निस्सन्देह वह सब प्रकार की सम्पत्तियों से श्रेष्ठ सम्पत्ति है।

कर्णयोर्मधुरं पेयं प्राप्तं नैव सदा भवेत्।  
कुक्षेरपि तदा तृप्त्यै दानीयं स्यात् सुभोजनम् (2)

जब कानों को देने के लिए भोजन न रहेगा तो पेट के लिये भी कुछ भोजन दे दिया जायेगा।

सुक्तयो बहवो नित्यं यैः श्रुताः श्रुतशालिनाम्।  
महीतले ही ते सन्ति देवतास्पधारिणः (3)

देखो, जिन ने बहुत से उपदेशों को सुना है वे पृथ्वी पर प्रत्यक्ष देवता स्वरूप हैं।

नैवाधीतं श्रुतं येन शृण्यात् सोऽपि सद्वचः।  
विपदां सन्निधाने हि शान्तिस्तेनैव जायते (4)

यदि कोई मनुष्य विद्वान् न हो तो भी उसे उपदेश सुनने दो क्योंकि जब उसके ऊपर संकट पड़ेगा तब उनसे ही उसे कुछ सान्त्वना मिलेगी।

धार्मिकानां शुभा वाणी दृढ्यष्टिरिवाहिता।  
विपत्तिकाले सम्प्राप्ते पतनाद् या सुरक्षति (5)

धर्मत्माओं के उपदेश, एक दृढ़लाठी के समान हैं क्योंकि जो उनके अनुसार काम करता है उसे वे गिरने से बचाते हैं।

अपि स्वल्पं महद्वाक्यं श्रोतव्यं युक्तचेतसा।

एकाकिना यतस्तेन क्रियते भूवि मान्यता (6)

अच्छे शब्दों को ध्यानपूर्वक सुनो, चाहे वे थोड़े से ही क्यों न हों, क्योंकि वे थोड़े शब्द भी तुम्हारी प्रतिष्ठा में सचमुच वृद्धि करेंगे।

समभ्यस्य श्रुतं येन स्वयञ्च मननं कृतम्।

विस्मृत्यापि बुधः सोऽयमवाच्यं नैव भाषते (7)

जिस पुरुष ने खूब मनन किया है और बुद्धिमानों के वचन सुनसुन कर अनेक उपदेशों को जमाकर रखा है, वह भूल से भी कभी निर्यक्त तथा बाहियात बातें नहीं करता।

बधिरावेव तौ कर्णौ श्रवणक्षमतायुतौ।

अनभ्यासो ययोरस्ति श्रोतुं विज्ञसुभाषितं (8)

सुन सकने पर भी वे कान बहरे ही हैं जिनको उपदेश सुनने का अभ्यास नहीं है।

न श्रुतं विदुषां येन कलापूर्णं सुभाषितम्।  
तस्य भाषणैपुण्यं स्वयमेवातिदुर्लभम् (9)

जिन लोगों ने बुद्धिमानों के चातुरी भरे शब्दों को नहीं सुना है, उनके लिये भाषण की नम्रता प्राप्त करना कठिन है।

जिह्वारसन्तु यो वेत्ति कर्णयोः किन्तु नो रसम्।

को गुणो जन्मना तस्य हानिर्वा मरणेन का (10) कु.का. 43

जो लोग जिह्वा से तो चखते हैं, पर कानों की सुरसता से अनभिज्ञ हैं, वे चाहें जिये या मरे इससे जगत् का क्या आता जाता है?

### शिक्षा :-

अधिगम्यं हि यज्ञानं सामस्त्येन तदर्जयेत।

आचरेच्च तथा नित्यं विधाप्राप्तेरनन्तरम् (1) कुरल का पृ.44

प्राप्त करने योग्य जो ज्ञान है, उसे सम्पूर्ण रूप से प्राप्त करना चाहिये और प्राप्त करने के पश्चात् तदनुसार व्यवहार करना चाहिये।

द्वे चक्षुषी मनुष्याणां जातेजीवित जागृते।

एवं वर्णसमाभ्नायो द्वितीयज्ञाङ्कः संग्रहः (2)

मानव जाति की जीती जागती दो आँखें हैं, एक को अंक कहते हैं और दूसरे को अक्षर।

यः शिक्षितः स एवास्ति चक्षुष्मानिह भूतले।

अयेषान्तु मुखे नूनमस्ति गर्तद्वयाकृतिः (3)

शिक्षित लोग ही आँख वाले कहलाये जा सकते हैं, अशिक्षितों के शर में केवल दो गड्ढे होते हैं।

सहैव नयते मोदं विद्वान् यत्रापि गच्छति।

प्रमोदोऽपि ततो याति यतश्चायां निर्वर्तते (4)

विद्वान् जहाँ कहीं भी जाता है अपने साथ आनन्द ले जाता है, लेकिन जब वह विदा होता है तो पीछे दुःख छोड़ जाता है।

न्यकृतोऽपि भवज्ञशिष्टैर्धनिकैरिव भिक्षुकः।

प्रथत्नेन पठेद् विद्यां हृधमा ज्ञानदूरगाः। (5)

यद्यपि तुम्हें गुरु या शिक्षक के सामने उतना ही अपमानित और नीचा बनना पड़े जितना कि एक भिक्षुक को धनवान् के समक्ष बनना पड़ता है, फिर भी तुम विद्या सीखो। मनुष्यों में अधम वे ही लोग हैं जो विद्या सीखने से विमुख होते हैं।

तावदेव जलं भूरि यावत् स्रोतो निखन्यते।

एवज्ज्व तावती विद्या यावति सा हि पथ्यते (6)

स्रोते को तुम जितना खोदोगे उतना ही अधिक पानी निकलेगा। ठीक प्रकार तुम जितना ही अधिक सीखोगे उतना ही तुम्हारी विद्या में वृद्धि होगी।

सर्वत्र विदुषां गेहं स्वदेशश्च महीतलम्।

यावज्जीवं पुनर्मर्त्याः कथं न ज्ञानरागिणः (7)

विद्वान् के लिये सभी जगह उसका घर है और सभी जगह उसका स्वदेश है। फिर लोग मरने के दिन तक विद्या प्राप्त करते रहने से असावधानी क्यों करते हैं?

एक जन्मनि यज्ञानं गृहीनं देहधारिणा।

उन्नतं तत् करोतीह जीवमागामिजन्मसु (8) कुरल काव्य पृ.40

मनुष्य ने एक जन्म में जो विद्या प्राप्त कर ली है वह उसे समस्त आगामी जन्मों में भी उच्च और उन्नत बना देगी।

इयं विद्या तथा मेऽस्ति पुष्कलानंददायिनी।

तथैवेयं परस्यापि सुप्रियातो बुधस्य सा (9)

विद्वान् देखता है कि जो विद्या उसे आनन्द देती है वह संसार को भी आनन्दप्रद होती है इसलिये वह विद्या को और भी अधिक चाहता है।

मनुष्याणां कृते ज्ञानमविनाशी महानिधिः।

दोषत्रुटिविहनञ्च यस्मादन्यन्न वैभवम् (10) कु.का. 40

विद्या मनुष्य के लिये त्रुटिहीन एवं अविनाशी निधि है, उसके सामने दूसरी सम्पत्ति कुछ भी नहीं है।

## सभायां प्रौढ़ता

वाक्कला शिक्षिता येन सुरुच्या च समन्विता।

स वाग्मी विदुषामग्रे सुब्रवीति च्युतिं विना (1)

जिन व्यक्तियों ने भाषण कला का अध्ययन किया है और सुरुचि प्राप्त की है वे जानते हैं कि भाषण किस प्रकार देना चाहिये। और वे बुद्धिमान् श्रोताओं के समक्ष भाषण देने में किसी प्रकार की चूक नहीं करते।

सिद्धान्तदृढ़ता यस्य राजते विज्ञसंसदि।

स प्राज्ञो विदुषां मध्ये समाग्नातो विदाम्बरे (2)

जो व्यक्ति ज्ञानी मनुष्यों के समूह में अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ रह सकता है। वही विद्वानों में विद्वान् माना जाता है।

सन्ति शूरा महेष्वासा बहवो रणकोविदाः।

विरला किन्तु वक्तारः सभायां लब्धकीर्तयः (3)

रणक्षेत्र में खड़े होकर वीरता के साथ मृत्यु का सामना करने वाले लोग बहुत हैं परन्तु ऐसे लोग बहुत ही थोड़े हैं जो विना काँपे श्रोताओं के समक्ष सभामञ्च पर खड़े हो सकें।

यदुपातं स्वयं ज्ञानं तद्विद्वत्सु प्रकाशयताम्।  
अनुपात्तमथज्ञानं विजेभ्यः साधु शिक्षयताम् (4)

तुमने जो ज्ञान प्राप्त किया है, उसको विद्वानों के सामने खोल कर रखो और जो बात तुम्हें मालूम नहीं है वह उन लोगों से सीख लो जो उसमें दक्ष हों।

अधीष्वसाधुरीत्या त्वं तर्कशास्त्रमसंशयम्।  
न विभेति हि तर्कज्ञो भाषितुं लोक संसदि (5)

तर्कशास्त्र को तुम भली प्रकार सीख लो जिससे की मानव समुदाय के सामने बिना भयातुर हुए बोल सको।

कोऽर्थस्तस्य कृपाणेन शक्तिर्यस्य न विद्यते।  
किं वा शास्त्रेण भीतस्य तिष्ठतो विदुषां पुरः (6)

उन व्यक्तियों के लिए कृपाण की क्या उपयोगिता है जिनमें शक्ति ही नहीं है, इसी प्रकार उन मनुष्यों के लिए शास्त्र का क्या उपयोग जो कि विद्वानों के समक्ष आने में ही काँपते हैं?

श्रोतृणां पुरतो ज्ञानं विभ्यतो न हि राजते।  
रणक्षेत्रे यथा खड्गो वलीबहस्ते न शोभते (7)

श्रोताओं के सामने आने से भयभीत होने वाले व्यक्ति का ज्ञान उसी प्रकार का है जैसे युद्ध क्षेत्र में नपुंसक के हाथ कृपाण।

विद्वद्गोष्ठयां निजज्ञानं यो हि व्याख्यातुमक्षमः।  
तस्य निस्सारतां याति पाण्डित्यं सर्वतोमुखम् (8)

जो लोग विद्वानों की सभा में अपने सिद्धान्तों को श्रोताओं के हृदय में नहीं बिठा सकते उनका अध्ययन चाहे कितना ही विस्तृत हो निरुपयोगी ही है।

सन्ति ये ज्ञानिनः किन्तु स्थातु शास्त्रविदां पुरः।  
न शकुवन्ति ते नूनमनेभ्योऽपि घृणावहा: (9)

जो मनुष्य ज्ञानी है लेकिन विज्ञानों के सामने आने में डरते हैं वे अज्ञानियों से भी गये बीते हैं।

सभ्यानां पुरो यातुं ये भवन्ति भयान्विताः।  
सिद्धान्तवर्णनाशत्तेस्ते श्वसन्तो मृताधिकाः (10) कुरल काव्य पृ.73

जो व्यक्ति मानव समुदाय के सामने आने में डरते हैं और अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने में असमर्थ हैं वे जीवित होकर मृतकों से भी गये बीते हैं।

### श्रोताओं का निर्णय

चित्ते सुरुचिसम्पन्नो वाक्लायां विशारदः।

श्रोतृभावं विदित्वादावनुरूपं वदेद् वचः (1) कुरल का. पृ.72

जिसने वक्तुता का उत्तम अभ्यास किया है और सुरुचि प्राप्त कर ली है उसे प्रथम श्रोताओं की पूरी परख करनी चाहिये पीछे उनके अनुरूप भाषण देना चाहिये।

भो भोः शब्दार्थवेत्तारः शास्तारः पुण्यमानसाः।

श्रोतृणां हृदयं वीक्ष्यं तदर्हा ब्रूत भारतीम् (2)

ए! शब्दों का मूल जानने वाले पवित्र पुरुषों! पहले अपने श्रोताओं की मानसिक स्थिति को समझ लो और फिर उपस्थित जनसमूह की अवस्था के अनुसार अपनी वक्ता देना आरम्भ करो।

श्रोतृणां प्रकृतिं वेत्तुं यस्य नैवास्ति पाटवम्।

वक्तुक्लानभिज्ञः स निष्कर्मा चान्यकर्मसु (3)

जो व्यक्ति श्रोतुर्वर्ग के स्वभाव का अध्ययन किये बिना भाषण देते हैं वे भाषण कला जानते ही नहीं और न वे किसी अन्य कार्य के लिये उपयोगी हैं।

ज्ञानचर्चा तु कर्तव्या विदुषामेव संसदि।

मौर्ख्ये च दृष्टिमाधाय वक्तव्यं मूर्खमण्डले (4)

बुद्धिमान् और विद्वान् लोगों की सभा में ही ज्ञान और विद्वत्ता की चर्चा करो, किन्तु मूर्खों को उनकी मूर्खता का ध्यान रख कर ही उत्तर दो।

त्यज्यते येन नेतृत्वकामना मान्यसंसदि।

स गुणोष्वस्ति विख्यातो धन्यो वचनसंयमः (5)

धन्य हैं वह आत्म-संयम जो मनुष्य को वृद्धजनों की सभा में आगे बढ़कर नेतृत्व ग्रहण करने से मना करता है। यह एक ऐसा गुण है जो अन्य

गुणों से भी अधिक समुज्ज्वल है।

यस्यास्ति नैव सामर्थ्यं साफल्यञ्चापि भाषणे।  
न विभाति बुधाग्रे स धर्मञ्चष्टो नरो यथा (6)

बुद्धिमान् लोगों के सामने असमर्थ और असफल सिद्ध होना धर्म मार्ग से परित हो जाने के सामने है।

लोकातिशायिपाण्डित्यं विदुषां पूर्णं वैभवैः।  
उद्योतते सभामध्ये विदुषामेव रागिणाम् (7)

विद्वानों की विद्वता अपने पूर्ण तेज के साथ सुसम्पन्न गुणियों की सभा में ही चमकती है।

धीमतं ननु सान्निध्ये विदुषो ज्ञानकीर्तनम्।  
जीविते तरुसंघाते भाति नीरनिषेकवत् (8)

बुद्धिमान् लोगों के सामने उपदेशपूर्ण व्याख्यान देना जीवित पौधों को पानी देने के समान है।

व्याख्यान यशोलिप्सो श्रुत्वेदं स्ववधार्यताम्।  
विस्मृत्याग्रे न वक्तव्यं व्याख्यानं हतचेतसाम् (9)

ए! वक्तवा से विद्वानों का प्रसन्न करने की इच्छा रखने वाले लोगों! देखो, कभी भूलकर भी मूर्खों के सामने व्याख्यान न देना।

विरुद्धानां पुरस्तात् भाषणं विद्यते तथा।  
मालिन्यदूषिते देशे यथा पियूषपातनम् (10) कुरल काव्य पृ.72

अपने मतभेद रखने वाले व्यक्तियों के समक्ष भाषण करना ठीक उसी प्रकार अमृत को मलिन स्थान पर ढाल देना।

## अध्याय-7

### स्वाध्याय तप के 5 भेद

वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः। (25)

स्वाध्याय	: Study is of 5 kinds.
वाचना	: Reading
पृच्छना	: Questioning Inquiry on a doubtful point
अनुप्रेक्षा	: Reflexion or meditation on what is read.
आम्नाय	: Memorizing and proper recitation
धर्मोपदेश	: Lecturing or deliberating sermons.

वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेश यह पाँच प्रकार का स्वाध्याय है।

1. वाचना - निपेक्ष भाव से तत्त्वार्थज्ञ के द्वारा पात्र के लिये जो निर्दोष ग्रन्थ वा ग्रन्थ के अर्थ या दोनों (ग्रन्थ और अक्षर इन) का प्रतिपादन किया जाता है वह वाचना है।

2. पृच्छना - संशयच्छेद या निर्णय की पुष्टि के लिये ग्रन्थ, अर्थ या उभय के लिये दूसरों से पूछना पृच्छना है।

3. अनुप्रेक्षा - अधिगत (जाने हुए) अर्थ का मन के द्वारा अभ्यास करना अनुप्रेक्षा है। वस्तु के स्वरूप को जानकर संतप्त लोहपिण्ड के समान चित्त को तदूप बना लेना और बार-बार मन से उनका अभ्यास करना अनुप्रेक्षा नाम का स्वाध्याय है।

4. आम्नाय - विशुद्ध घोष से पाठ का परिवर्तन करना आम्नाय है आचार पारगामी व्रती का लौकिक फल की अपेक्षा किये बिना द्रुत विलम्बित आदि उच्चारण दोषों से रहित होकर विशुद्ध पाठ का फेरना, घोष करना आम्नाय स्वाध्याय है, ऐसा कहा जाता है।

5. धर्मोपदेश - धर्मकथा आदि का अनुष्ठान करना धर्मोपदेश है। लौकिक ख्याति, लाभ आदि दृष्ट प्रयोजन के बिना, उन्मार्ग की निवृत्ति के लिये, संशय को दूर करने के लिये तथा अपूर्व पदार्थ के प्रकाशन के लिये धर्मकथा आदि का अनुष्ठान कथन करना धर्मोपदेश नामक स्वाध्याय कहलाता है।

## स्वाध्याय के भेद तथा उद्देश्य :

वाचना पृच्छनाऽम्नायाङ्गुप्रेक्षा धर्मदेशना।

स्वाध्यायः पञ्चधारूत्यः पञ्चमीं गतिमिच्छता॥ (81) श्रा.सं.1पृ.391

पंचमी गति मुक्ति को चाहने वाले पुरुषों को वाचना, पृच्छना, आम्नाय, अनुप्रेक्षा और धर्मदेशना रूप पाँच प्रकार का स्वाध्याय करना चाहिये।

**विशेषार्थ -** आगम के निर्दोष शब्द और अर्थ का भव्यों को पढ़ाना-सिखाना वाचना स्वाध्याय है। संयत के दूर करने के लिये तत्त्व का रहस्य गुरुजनों से पूछना पृच्छना स्वाध्याय है। आगम के पाठ का शुद्ध उच्चारण करना कंठस्थ याद करना आम्नाय स्वाध्याय है। पदार्थ के शास्त्र-प्रस्तुति स्वरूप का बार-बार चिन्तवन करना अनुप्रेक्षा स्वाध्याय है। दूसरों के लिये धर्म का उपदेश देना धर्मदेशना नाम का स्वाध्याय है। इन पाँच प्रकारों में से जहाँ जब जो संभव एवं आवश्यक हो, वहाँ पर उस स्वाध्याय को करते रहना चाहिये।

## स्वाध्याय के समान अन्य तप नहीं :

तपोऽन्तरानन्तर भेद भिन्ने तपोविधौ किञ्चन पापहारि।

स्वाध्यायतुत्यं न विलोक्यतेऽन्यद् धृषीक दोष प्रशम प्रवीणम् (82)

अन्तरंग और बाह्य के भेद से विभिन्न बारह प्रकार के तपों-विधान में पापों का दूर करने वाला और इन्द्रियों के दोषों के प्रशमन करने में प्रवीण ऐसा स्वाध्याय के समान अन्य कोई तप नहीं है।

## चंचल मन को रोकने में समर्थ :

स्वाध्यायमत्यस्य चलस्वभावं न मानसं यन्वयितुं समर्थः।

शक्नोति नोन्मूलयितुं प्रवृद्धं तमः परा भास्करमन्तरेण (83)

इस चंचल स्वभाव वाले मन को नियंत्रित करने के लिये स्वाध्याय को छोड़कर अन्य कोई तप समर्थ नहीं है। बढ़े हुए अन्धकार को उन्मूलन करने के लिए सूर्य के अतिरिक्त और कौन समर्थ हो सकता है।

## स्वाध्याय के बिना उपवास पाप नाशक नहीं :

यां स्वाध्यायः पापहानि विधत्ते कृत्वैकाग्र्यं नोपवास क्षमस्ताम्।

शक्तः कर्तुं संयतानां न कार्यं लोके दृष्टोऽसंयतो दृष्ट चेष्टः (84)

एकाग्र होकर किया हुआ स्वाध्याय जितनी पाप हानि को करता है, उतनी पाप हानि को करने के लिए उपवास समर्थ नहीं है। क्योंकि संयत पुरुषों के कार्यों को करने के लिये लोक में दुष्ट चेष्टावाला असंयत मनुष्य समर्थ नहीं हो सकता है। प्रतियों में संवृत पाठ भी पाया जाता है, तदनुसार संवर-मुक्त पुरुषों के कार्य को संवर-रहित दुष्ट-चित्त पुरुष नहीं कर सकता, ऐसा अर्थ होता है।

## स्वाध्याय से विभिन्न लाभ :

विज्ञातनि:शेषपदार्थजातः कर्मसिवद्वारपिधानकारी।

भूत्वा विधत्ते स्वपरोपकारं स्वाध्यायवर्ती बुधपूजनीयः (85)

स्वाध्याय करने वाला पुरुष श्रुतज्ञान के बल से समस्त पदार्थ समूह को जानता है, कर्मों के आने के द्वारों को बंद करता है और अपना तथा पराया उपकार करता है, अतएव वह विद्वज्जनों के द्वारा पूजनीय होता है।

## अज्ञानी के भवकोटिलक्ष तप से श्रेष्ठ स्वाध्यायः

यद्बुद्धतत्त्वो विधुनोति सद्यो विधंसिताशेष हृषीकदोषः।

तपोविधानैभवकोटिलक्षैर्नूनं तदज्ञो न धुनोति कर्म (86) श्रा.सं.1पृ.391

जो तत्त्वों का ज्ञाता है और जिसने इन्द्रियों के समस्त दोषों को विघ्वस्त कर दिया है, ऐसा ज्ञानी पुरुष शीघ्र (एक अन्तर्मुहूर्त) जितने कर्म का विनाश करता है, उतने ही कर्म का विनाश अज्ञानी पुरुष लाखों करोड़ों भवों में सहस्र तपों विधानों के द्वारा निश्चय से नहीं कर सकता है।

## साम्यभावी का स्वाध्याय मोक्षप्रद :-

निरस्तसर्वाक्षकपायवृत्तिर्विधीयते येन शरीरिर्वर्गः।

प्ररुद्धजन्माइकुरशोषपूषा स्वाध्यायतोऽन्योस्ति ततो न योगः (87)

जिस स्वाध्याय के द्वारा प्राणिवर्ग समस्त इन्द्रियों और कषायों की प्रवृत्ति से रहित किया जाता है और जो बढ़ते हुए भवाङ्कर के सुखाने के लिये सूर्य

सदृश है, ऐसे स्वाध्याय से अन्य कोई योग (ध्यान) नहीं है।

### सर्व गुणों के मूलः ज्ञान-

गुणः पवित्रः शमसंयमाद्या विबोधीनाः क्षणतश्वलन्ति।

कालं कियन्तं दलपुष्पपूर्णस्तिष्ठन्ति वृक्षाः क्षतमूलबन्धाः (88)

कथायों की मन्दता रूप प्रशमभाव और संयम आदिक जितने भी पवित्र गुण हैं, वे सब यदि ज्ञान से रहित हैं, तो क्षणमात्र में चलायमान हो जाते हैं। जिन वृक्षों का मूल जड़ बन्धन विनष्ट हो गया है, ऐसे पत्र-पुष्पों से परिपूर्ण भी वृक्ष कितने समय तक खड़े रह सकते हैं। भावार्थ-सर्व गुणों का मूल आधार ज्ञान है, उसके बिना अन्य गुण अधिक काल तक ठहर नहीं सकते। अतः स्वाध्याय के द्वारा ज्ञानार्जन करना आवश्यक है।

### अज्ञानीः हित-अहित विवेक शून्य-

ज्ञानात्यकृत्यं न जनो न कृत्यं जैनेश्वरं वाक्यमबुध्यमानः।

करोत्यकृत्यं विजहाति कृत्यं ततस्ततो गच्छति दुःखमुग्रम् (89)

जिनराज के कहे वचनों को नहीं जानने वाला मनुष्य कृत्य (करने योग्य) और अकृत्य (नहीं करने योग्य) को नहीं जानता है इसलिए वह अकृत्य कर्म को करता है और कृत्य कार्य को छोड़ देता है। और इसी से वह उग्र दुःख को प्राप्त होता है।

### स्व-हितकांक्षीः स्वाध्यायशील -

अनात्मनीनं परिहर्तुकामा गृहीतुंकामाः पुनरात्मनीनम्।

पठन्ति शश्वज्जिननाथवाक्यं समस्तकल्याणविधायि सन्तः (90)

जो सन्तपुरुष आत्मा के अकल्याणकारी मिथ्यात्वादि को छोड़ने के इच्छुक हैं तथा आत्मा के कल्याणकारी सम्यक्त्वादि को ग्रहण करने के अभिलाषी हैं, वे सर्वप्रकार कल्याणों को करने वाले जिनेन्द्र देव के वचनों को निरन्तर पढ़ते हैं।

### मूढः मिथ्यासाहित्य पाठक :

सुखाय ये सूत्रमपास्य जैनं मूढाः प्रयन्ते वचनं परेषाम्।

तापच्छिदे ते परिहृत्य तोयं भजन्ति कल्पक्षयकाल वहिम् (91)

विहाय वाक्यं जिनचन्द्रदृष्टं परं न पीयूषमिहास्ति किञ्चित्।  
मिथ्यादृशां वाक्यमपास्य नूनं पश्यामि नो किञ्चन कालकूटम् (92)

जो मूढ़जन सुखपाने के लिये जैन सूत्र (आगम) को छोड़कर अन्य मिथ्यादृष्टियों के वचनों का आश्रय लेते हैं, वे मानों वे अपने संताप को दूर करने के लिये जल को छोड़कर कल्पान्त के समय वाली प्रलयकाल की अग्नि का सेवन करते हैं। (91) जिनेन्द्र चन्द्र के द्वारा उपदिष्ट वाक्यों को छोड़कर इस लोक में अन्य कुछ भी उत्तम नहीं है तथा मिथ्यादृष्टियों के वाक्य को छोड़कर निश्चय से मैं अन्य कोई कालकूट विष को नहीं देखता हूँ।

### विश्व कल्याणकारी : स्वाध्याय :-

विधीयते येन समस्तमिष्टं कल्पद्रुमेनेव महाफलेन।

आवर्ज्य यां विश्वजनीनवृत्तिर्मुक्त्वा परं कर्म जिनागमोऽसो (93)

(श्राव. संग्रह 1 पृ. 392)

जिस जिनागम के अभ्यास से महान् फलदायक कल्पवृक्ष के समान समस्त इष्ट अर्थ प्राप्त होते हैं, ऐसे इस विश्व-कल्याणकारी जिनागम का अन्य सब कार्य छोड़कर निरन्तर अभ्यास करना चाहिये।

### श्रुतज्ञान के भेद और पठनविधि

अवखर सन्नी सम्मं, साइअं खलु सपज्जवसिअं च।

गमिअं अंगपविदुं, सत्त्वि एए सपदिवक्खा॥ (1) नंदीसूत्र वृ. 206  
आगमसत्थगहणं, जं बुद्धिगुणेहिं अद्वहिं दिदुं ।

विंति सुअनाणलंभं, तं पुव्वविसारया धीरा ॥ (2)

सुस्सूसङ्ग पडिपुच्छइ, सुणेइ गिणइ अ ईहए याउवि।

तत्तो अपोइए वा, धारेइ करेइ वा सम्मं (3)

मूअं हुंकारं वा, बाढ़ंकार पडिपुच्छ वीमसां।

तत्तो पसंगपारायणं च परिणिद्वा सत्तमए (4)

सुत्तथो खलु पढमो, बीओ निणुत्तिमीसिओ भणिओ।

तद्वारा य निखसेसो, एस विही होइ अणुओगे (5)

से तं अंगपविदुं, से तं सुअनाणं, से तं परोक्खनाणं, से तं नन्दी।

(1) अक्षर, (2) संज्ञी, (3) सम्यक्, (4) सादि, (5) सपर्यवसित,

(6) गमिक, (7) और अङ्गप्रविष्ट ये सात और इनके सप्रतिपक्ष सात मिलकर

श्रुतज्ञान के चौदह भेद हो जाते हैं।

वे आठ गुण इस प्रकार हैं-विनययुक्त शिष्य गुरु के मुखारविन्द से निकले हुए वचनों को सुनना चाहता है। जब शंका होती है तब पुनः विनम्र होकर गुरु को प्रसन्न करता हुआ पूछता है। गुरु द्वारा कहे जाने पर सम्यक् प्रकार से श्रवण करता है, सुनकर उसके अर्थ-अभिप्राय को ग्रहण करता है, ग्रहण करने के अनन्तर पूर्वपर अविरोध से पर्यालोचन करता है। ग्रहण करने के पश्चात् यह ऐसे ही है जैसा गुरुजी फरमाते हैं, यह मानता है। इसके बाद निश्चित अर्थ को हृदय में सम्यक् रूप से धारण करता है। फिर जैसा गुरु ने प्रतिपादित किया था, उसके अनुसार आचरण करता है।

### शास्त्र सुनने की विधि

शिष्य मौन रहकर सुने, फिर हुंकार-'जी हां' ऐसा कहे। उसके बाद बाढ़कर अर्थात् 'यह ऐसे ही है जैसा गुरुदेव फरमाते हैं' इस प्रकार श्रद्धापूर्वक माने। अगर शंका हो तो पूछे कि "यह किस प्रकार है?" फिर मीमांसा करें अर्थात् विचार-विमर्श करें। तब उत्तरोत्तर गुण-प्रसंग से शिष्य पारगामी हो जाता है। तत्पश्चात् वह चिन्तन-मनन आदि के बाद गुरुवत् भाषण और शास्त्र की प्ररूपणा करे। ये गुण शास्त्र सुनने के कथन किए गए हैं।

### व्याख्या करने की विधि :

प्रथम वाचना में सूत्र और अर्थ कहे। दूसरी में सूत्रस्पृशिक नियुक्ति का कथन करे। तीसरी वाचना में सर्व प्रकार नय-विक्षेप आदि से पूर्ण व्याख्या करे। इस तरह अनुयोग की विधि शास्त्रकारों ने प्रतिपादन की है। यह श्रुतज्ञान का विषय समाप्त हुआ। इस प्रकार यह अङ्गप्रविष्ट और अङ्गबाह्य श्रुत का वर्णन सम्पूर्ण हुआ। यह परोक्षज्ञान का वर्णन हुआ। इस प्रकार श्रीनन्दी सूत्र भी परिसमाप्त हुआ।

विवेचन -सूत्रकारों की यह शैली सदाकाल से अविच्छिन्न रही है कि जिस विषय का उन्होंने भेद-प्रभेदो सहित निरूपण किया, अन्त में उसका उपसंहार भी अवश्य किया। इस सूत्र में भी श्रुत के चौदह भेदों का स्वरूप बताने के पश्चात् अन्तिम एक ही गाथा में श्रुतज्ञान के चौदह भेदों का कथन किया है। जैसे - (1) अक्षर, (2) संज्ञा, (3) सम्यक्, (4) सादि, (5) सपर्यवसित (6) गमिक (7) अङ्ग-प्रविष्ट (8) अनक्षर (9) असन्ती

(10) मिथ्या (11) अनादि (12) अपर्यवसित (13) अगमिक और (14) अनंगप्रविष्ट। इस प्रकार सामान्य श्रुत के मूल भेद चौदह हैं, फिर भले ही वह श्रुत सम्यक् ज्ञानरूप हो अथवा अज्ञानरूप (मिथ्याज्ञान) हो। श्रुत एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय छद्मस्थ जीवों तक सभी में पाया जाता है।

### श्रुतज्ञान किसे दिया जाय?

आचार्य अथवा गुरु श्रुतज्ञान देते हैं, किन्तु उन्हें भी ध्यान रखना होता है कि शिष्य सुपात्र है या कुपात्र। सुपात्र शिष्य अपने गुरु से श्रुतज्ञान प्राप्त करके स्व एवं पर के कल्याणकार्य में जुट जाता है किन्तु कुपात्र या कुशिष्य उसी ज्ञान का दुरुपयोग करके प्रवचन अथवा ज्ञान की अवहेलना करता है। ठीक सर्प के समान जो दूध पीकर भी उसे विष में परिणत कर लेता है। इसीलिए कहा गया है कि अविनीत, रसलोलुप, श्रद्धाविहीन तथा अयोग्य शिष्य तो श्रुतज्ञान के कंथचित् अनधिकारी हैं, किन्तु हठी और मिथ्यादृष्टि श्रुतज्ञान के सर्वथा ही अनधिकारी हैं उनकी बुद्धि पर विश्वास नहीं किया जा सकता है।

बुद्धि चेतना की पहचान है और दूसरे शब्दों में स्वतः चेतना रूप है। वह सदा किसी न किसी गुण या अवगुण को धारण किये रहती है। स्पष्ट है कि जो बुद्धि गुण ग्राहिणी है वही श्रुतज्ञान की अधिकारिणी है। पुरुधर और धीर पुरुषों का कथन है कि पदार्थों का यथार्थ विद्यपूर्वक उनका अध्ययन किया सकता है, जबकि बुद्धि के आठ गुणों सहित विधिपूर्वक उनका अध्ययन किया जाय। गाथा में आगम और शास्त्र, इन दोनों का एक पद में उल्लेख किया गया है। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि जो आगम है वह तो निश्चय ही शास्त्र भी है, किन्तु जो शास्त्र है वह आगम नहीं भी हो सकता है। जैसे - अर्थ शास्त्र, कोकशास्त्र आदि। ये शास्त्र कहलाते हैं किन्तु आगम नहीं कहे जा सकते। धीर उपसर्ग- परिषहों से कदापि विचलित नहीं होते।

### बुद्धि के गुण

बुद्धि के आठ गुणों से सम्पन्न व्यक्ति ही श्रुतज्ञान का अधिकारी बनाता है। श्रुतज्ञान आत्मा का ऐसा अनुपम धन है, जिसके सहयोग से वह संसार मुक्त होकर शाश्वत सुख को प्राप्त करता है और उसके अभाव में आत्मा चारों गतियों में भ्रमण करता हुआ जन्म मरण आदि के दुःख भोगता रहता है।

इसलिए प्रत्येक मुमुक्षु को बुद्धि के आठों गुण ग्रहण करके सम्यक् श्रुत का अधिकारी बनना चाहिए। वे गुण निम्न प्रकार हैं -

(1) सुस्सुसइ - शुश्रूषा का अर्थ है - सुनने की इच्छा या जिज्ञासा।

शिष्य अथवा साधक सर्वप्रथम विनयपूर्वक अपने गुरु के चरणों की वन्दना करके उनके मुखारविन्द से कल्याणकारी सूत्र व अर्थ सुनने की जिज्ञासा व्यक्त करे। जिज्ञासा के अभाव में ज्ञान प्राप्ति नहीं हो सकती।

(2) पडिणुच्छइ - सूत्र या अर्थ सुनने पर अगर कहीं शंका पैदा हो तो विनय सहित मधुर वचनों से गुरु के चित्त को प्रसन्न करते हुए गौतम के समान प्रश्न पूछकर अपनी शंका का निवारण करें। श्रद्धापूर्वक प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने से तर्क-शक्ति वृद्धि को प्राप्त होती है तथा ज्ञान निर्मल होता है।

(3) सुणेइ - प्रश्न करने पर गुरुजन जो उत्तर देते हैं, उन्हें ध्यानपूर्वक सुने। जब तक समाधान न हो जाय तब तक विनय सहित उनसे समाधान प्राप्त करे, उनकी बात दत्तचित्त होकर श्रवण करे किन्तु विवाद में पड़कर गुरु के मन को खिल न करे।

(4) गिणहइ - सूत्र, अर्थ तथा किये हुए समाधान को हृदय से ग्रहण करे, अन्यथा सुना हुआ ज्ञान विस्मृत हो जाता है।

(5) ईहते - हृदयंगम किये हुए ज्ञान पर पुनः पुनः चिन्तन मनन करे, जिससे ज्ञान मन का विषय बन सके। धारणा को दृढ़तम बनाने के लिए पर्यालोचन आवश्यक है।

(6) अपोहए - प्राप्त किये हुए ज्ञान पर चिन्तन-मनन करके यह निश्चय करे कि यही यथार्थ है जो गुरु ने कहा है, यह अन्यथा नहीं है, ऐसा निर्णय करे।

(7) धारेइ - निर्मल एवं निर्णीत सार-ज्ञान की धारणा करे।

(8) करेइ वासम्मं - ज्ञान के दिव्य प्रकाश से ही श्रुतज्ञानी चारित्र की सम्यक्-आराधना कर सकता है। श्रुतज्ञान का अन्तिम सुफल यही है कि श्रुतज्ञानी सन्मार्ग पर चले तथा चारित्र की आराधना करता हुआ कर्मों पर विजय प्राप्त करे।

बुद्धि के ये सभी गुण क्रियारूप हैं क्योंकि गुण क्रिया के द्वारा ही व्यक्त होते हैं। ऐसा इस गाथा से ध्वनित होता है।

## श्रवण विधि के प्रकार

शिष्य अथवा जिज्ञासु जब अञ्जलिबद्ध होकर विनय पूर्वक गुरु के समक्ष सूत्र अर्थ सुनने के लिए बैठता है तब उसे किस प्रकार सुनना चाहिए? सूत्रकार ने उस विधि का भी गाथा में उल्लेख किया है, क्योंकि विधिपूर्वक न सुनने से ज्ञानप्राप्ति नहीं होती है और सुना हुआ व्यर्थ चला जाता है।

श्रवण विधि इस प्रकार है-

(1) मूअं - जब गुरु अथवा आचार्य सूत्र या अर्थ सुना रहे हों, उस समय प्रथम श्रवण के समय शिष्य को मौन रहकर दत्तचित्त होकर सुनना चाहिए।

(2) हुंकार - द्वितीय श्रवण में गुरु - वचन श्रवण करते हुए बीच-बीच में प्रसन्नतापूर्वक 'हुंकार' करते रहना चाहिए।

(3) बाढ़कार - सूत्र व अर्थ गुरु से सुनते हुए तृतीय श्रवण में कहना चाहिए - 'गुरुदेव! आपने जो कुछ कहा है, सत्य है' अथवा 'तहति' शब्द का प्रयोग करना चाहिए।

(4) पडिपुच्छइ - चौथे श्रवण में जहाँ कहीं सूत्र या अर्थ समझ में न आए अथवा सुनने से रह जाय तो बीच-बीच आवश्यकतानुसार पूछ लेना चाहिए, किन्तु निरर्थक तर्क-वितर्क नहीं करना चाहिए।

(5) मीमांसा - पंचम श्रवण के समय शिष्य के लिए आवश्यक है कि गह - वचनों के आश्रय को समझते हुए उसके लिए प्रमाण की जिज्ञासा करे।

(6) प्रसंगपारायण - छठे श्रवण में शिष्य सुने हुए श्रुत का पारगामी बन जाता है और उसे उत्तरोत्तर गुणों की प्राप्ति होती है।

(7) परिणिट्ठा - सातवें श्रवण में शिष्य श्रुतपरायण होकर गुरुवत् सैद्धान्तिक विषय का प्रतिपादन करने में समर्थ हो जाता है। इसलिये प्रत्येक जिज्ञासु को आगम-शास्त्र का अध्ययन विधि-पूर्वक ही करना चाहिए।

### सूत्रार्थ व्याख्यान - विधि

आचार्य, उपाध्याय या बहुश्रुत गुरु के लिए भी आवश्यक है कि वह शिष्य को सर्वप्रथम सूत्र का शुद्ध उच्चारण और अर्थ सिखाए। तत्पश्चात् उस आगम के शब्दों की सूत्रस्पर्शी निर्युक्ति बताए। तीसरी बाद पुनः

उसी सूत्र को वृत्तिभाष्य, उत्सर्ग-अपवाद और निश्चय-व्यवहार, इन सबका आशय नय, निक्षेप, प्रमाण और अनुयोगद्वारा आदि विधि से व्याख्या सहित पढ़ाए। इस क्रम से अध्यापन करने पर गुरु शिष्य को श्रुतपारंगत बना सकता है।

### - : बुद्धि :-

आकस्मिके विपच्चक्रेबुद्धिः सन्नाहसन्निभा।

अजप्यः प्रतिभादुर्गः समवेत्यापि शत्रुभिः। (1) कुर.का.पृ.43

बुद्धि समस्त अचानक आक्रमणों को रोकने वाला कवच है, वह ऐसा दुर्ग है जिसे शत्रु भी घेरकर नहीं जीत सकते।

सबुद्धया करणग्रामो विषयेभ्यो निवर्तते।

अशुभाच्च शुभे मार्गे नियुड्न्ते सा यथाविधि। (2)

यह बुद्धिः ही है जो इन्द्रियों को इधर-उधर भटकने से रोकती है, उन्हें बुराई से दूर रखती है और शुभ कार्य की ओर प्रेरित करती है।

अस्ति बुद्धेरियत्कार्यं यत्सत्यासत्यनिर्णयः।

तद्वक्ताऽस्तु पुनः कोऽपि सुप्रियो दुष्प्रियोऽथवा। (3)

समझदार बुद्धि का काम है कि हर एक बात में झूठ को सत्य से पृथक् कर दे, फिर उस बात का कहने वाला कोई क्यों न हो।

मतिमान् भाषते नित्यं सुबोध्यामेव भारतीम्।

परेषां वचसां सारं स्वयञ्चापि स बुध्यति। (4)

बुद्धिमान् मनुष्य जो कुछ कहता है इस तरह से कहता है कि उसे सब कोई समझ सके और दूसरों के मुख से निकले हुए शब्दों के आन्तरिक भाव को वह शीघ्र समझ लेता है।

सर्वसौहार्दवृत्तित्वात् सर्वादियः सुधीः सदा।

यस्यैकरूपता सर्वे चित्ते चातिव्यवस्थितिः। (5)

बुद्धिमान् पुरुष सबके साथ मिलनसारी से रहता है और उस की प्रकृति सदा एक सी रहती है, उसकी मित्रता न तो पहले अधिक बढ़ जाती है और न एकदम घट जाती है।

लोकरीत्यनुसारेण व्यवहारोऽपि सर्वदा।

आख्याति बुद्धिसङ्घावमिति लोकज्ञभाषणम्। (6)

यह भी एक बुद्धिमानी का कार्य है कि मनुष्य लोक नीति के अनुसार व्यवहार करे।

बुद्धिमान् बुद्धिसामर्थ्यात् किमुदके भविष्यति।

इति पूर्वं स्वयं वेति न चैव बुद्धिवर्जितः। (7)

समझदार आदमी पहले से ही जान जाता है कि क्या होने वाला है, मूर्ख आगे आने वाली बात को नहीं जान सकता।

भीतिस्थाने हठादेव प्रवृत्तिर्बुद्धिनता।

भयहेतोर्विभीतिश्च प्रबुद्धेरेव सूचिका। (8)

संकट के स्थान से सहसा दौड़ पड़ना मूर्खता है। बुद्धिमानों का यह भी कहना है कि जिससे डरना चाहिये उससे डरता ही रहे।

सर्वेषामेव कार्याणां कृते यः पूर्वसञ्चितः।

तस्य कम्पकदुःखानां ना धातो दूरदर्शिनः। (9) कु.का.

जो दूरदर्शी आदमी हर एक विपर्ति के लिये पहले से ही सचेत रहता है वह उस वार से बचा रहेगा जो अत्यन्त भयंकर है।

अखिल तस्य कल्याणं यस्यास्ति बुद्धिवैभवम्।

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा तस्य किञ्चिन्न विद्यते। (10) कु.का.

जिसके पास बुद्धि है उसके पास सबकुछ है, पर मूर्ख के पास सब कुछ होने पर भी कुछ नहीं है।

### अयोग्य-शिष्य-श्रोता

सेलघण-भग्नघड-अहि-चालणि-महिसाऽवि जाहव सुएहि।

मट्टिय-मसय-समाणं वक्खाणइ जो सुदं मोहा (62)

दढ-गारव-पद्मिव्यो विस्यामिस-विस-वसेण धुम्मंतो।

सो भट्ट-बोहि-लाहो भमड चिरं भव-वणे मूढो (63) धवला। पृ.69

(1) शैलघन, (2) भग्नघट, (3) अहि (सर्प), (4) चालनी, (5) महिष

(6) अवि (मेंढा), (7) जाहक (जोंक), (8) शुक, (9) माटी, और (10) मशक के समान श्रोताओं को जो मोह से श्रुत का व्याख्यान करता है,

वह मूढ़ दृढ़ लोलुपतारूपी विष के वश से मूर्च्छित हो, बोधि अर्थात् रत्नत्रय की प्राप्ति से भ्रष्ट होकर भव-वन में चिरकाल तक परिभ्रमण करता है।

1. **शैलघन** :- शैल नाम पाषाण का है और घन नाम मेघ का है। जिस प्रकार पाषाण, मेघ के चिरकाल तक वर्षा करने पर भी आद्र या मृदु नहीं होता है, उसी प्रकार कुछ ऐसे श्रोता होते हैं, जिन्हें गुरुजन चिरकाल तक भी धर्ममित के वर्षण या सिंचन द्वारा कोमल परिणामी नहीं बना सकते हैं ऐसे शिष्यों (श्रोताओं) को शैलघन शिष्य कहते हैं।
2. **भग्नघट** :- भग्नघट फूटे घड़े को कहते हैं। जिस प्रकार फूटे घड़े में ऊपर से भरा गया जल नीचे की ओर से निकल जाता है भीतर कुछ भी नहीं ठहरता है, इसी प्रकार जो उपदेश को एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देते हैं उन्हें भग्नघट शिष्य कहते हैं।
3. **अहि (सर्प)** :- अहि नाम साँप का है। जिस प्रकार मिश्री मिश्रित-दुग्ध के पान करने पर भी सर्प विष का ही वमन करता है, उसी प्रकार जो सुन्दर, मधुर और हितकर उपदेश के सुनने पर भी विष वमन करते हैं अर्थात् प्रतीकूल आचरण करते हैं, उन्हें अहि समान शिष्य समझना चाहिये।
4. **चालनी** :- चालनी जैसे उत्तम आटे को नीचे गिरा देती है और भूसा या चोकर को अपने भीतर रख लेती है, इसी प्रकार जो उत्तम सारयुक्त उपदेश को तो बाहर निकाल देते हैं और निःसार तत्त्व को धारण करते हैं वे चालनी समान शिष्य, श्रोता है।
5. **महिषा** :- महिषा अर्थ भैंसा जिस प्रकार जलाशय से जल तो कम पीता है परन्तु बार-बार दुबकी लगाकर उसे गंदला कर देता है, उसी प्रकार जो श्रोता, शिष्य सभा में उपदेश तो अल्प ग्रहण करते हैं पर प्रसंग पाकर क्षोभ या उद्वेग उत्पन्न कर देते हैं वे महिषा समान श्रोता, शिष्य है।
6. **अवि** :- अवि नाम मेष (मेढ़ा) का है। जैसे मेढ़ा पालने वाले को ही मारता है, उसी प्रकार जो उपदेशदाता की ही निंदा करते हैं और समय आने पर घात तक करने को उद्यत रहते हैं उन्हें अवि के समान शिष्य समझना चाहिये।

7. **जाहक** :- जाहक नाम से ही आदि अनेक जीवों का है पर प्रकृत में जोंक अर्थ ग्रहण किया है। जैसे जोंक को स्तन पर भी लगावें तो भी वह दूध न पीकर खून ही पीती है, इसी प्रकार जो उत्तम आचार्य या गुरु के पास रहकर भी उत्तम तत्त्व को ग्रहण नहीं करते, पर अधम तत्त्व को ही ग्रहण करते हैं वे जोंक के समान श्रोता (शिष्य) हैं।

8. **शुक** :- शुक नाम तोते का है। तोते को जो कुछ सिखाया जाता है वह सीख तो जाता है पर उसे यथार्थ अर्थ प्रतिभासित नहीं होता, उसी प्रकार उपदेश स्मरण कर लेने पर भी जिनके हृदय में भाव भासना नहीं होती है वे शुक समान शिष्य हैं।

9. **मिट्टी** - मिट्टी जैसे जल के संयोग मिलने पर तो मृदु हो जाती है, पर जल के अभाव में पुनः कठोर हो जाती है, इसी प्रकार जो उपदेश मिलने तक तो मृदु परिणामी बने रहते हैं और बाद में पूर्ववत ही कठोर हृदय हो जाते हैं वे मिट्टी के समान शिष्य हैं।

10. **मशक** - मशक अर्थात् मच्छर पहले कानों में आकर गुनगुनाता है, चरणों में गिरता है किन्तु अवसर पाते ही काट खाता है, उसी प्रकार जो श्रोता, शिष्य पहले तो गुरु या उपदेशदाता की प्रशंसा करेंगे, चरण-वन्दना भी करेंगे, पर अवसर आते ही काटे बिना नहीं रहेंगे उन्हें मशक के समान श्रोता, शिष्य समझना चाहिये।

उक्त सभी प्रकार के श्रोता, शिष्य अयोग्य हैं, उन्हें उपदेश देना व्यर्थ है।

(ध्वला I पृष्ठ 69-70)

### सदुदेश्य की पूर्ति = शान्ति की प्राप्ति के सूत्र

- आचार्य कनकनन्दी

- \* रुचि होने से तत् सम्बन्धी ज्ञानार्जन में उत्साह होता है तथा तदनुकूल आचरण में प्रवृत्ति होती है।
- \* संकीर्णता-स्वार्थपरता-पूर्वग्रिह-परपीड़न-मानसिक विभ्रम से रहित रुचि ही यथार्थ रुचि है, जो कि आत्मविश्वासमय है।
- \* आत्मविश्वास तथा यथार्थ ज्ञान से युक्त होकर समता पूर्वक आचरण करना ही सम्यक् पुरुषार्थ है।

## अध्याय - 8

**यथार्थ से शास्त्राध्ययन-स्वाध्यायी तथा उसका फल-  
-आगमानुसार आचरण करने वाला मुनि श्रेष्ठ है-**

एयगदो समणो एयगं णिच्छिदस्स अत्थेसु।

णिच्छिती आगमदो आगमचेट्टा-तदो जेट्टा॥ (323) प्रव. सार

He, Who is concentrated on one thing alone, is a shramana such a concentration is possible for him whose comprehension of the objectively is certain; this certainly (of knowledge) is possible from the study of scriptures; therefore application to the (study of) scriptures is of the highest importance.

जो अपने स्वरूप में एकाग्र है वही श्रमण है तथा वह एकाग्रता आगम के ज्ञान से ही होती है।

(एयगदो) जो रत्नत्रय की तन्मयता को प्राप्त है वह (समणो) साधु है। (अत्थेसुणिच्छिदस्स) जिसके पदार्थों में श्रद्धा है उसके (एयग) एकाग्रता होती है। (आगमदो णिच्छिती) पदार्थों का निश्चय आगम से होता है (तदो) इसलिए (आगमचेट्टा) शास्त्रज्ञान में उद्यम करना (जेट्टा) उत्तम है प्रधान है। तीन जगत् व तीन कालवर्तीं सर्व द्रव्यों के गुण और पर्यायों को एक काल में जानने को समर्थ सर्व तरह से निर्मल केवलज्ञान लक्षण के धारी अपने परमात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान ज्ञान और चारित्र से तन्मयता को एकाग्रता कहते हैं। उस तन्मयता को जो प्राप्त हुआ है सो श्रमण है। वह एकाग्रता निश्चय से साधु के होती है। टांकी में उकेरे के समान ज्ञाता/दृष्टा एक स्वभाव का धारी जो परमात्मा पदार्थ है उसको आदि लेकर सर्व पदार्थों का निश्चय करने वाला जो साधु है उसी के एकाग्रता होती है तथा इन जीवादि पदार्थों का निश्चय आगम के द्वारा होता है। अर्थात् जिस आगम में जीवों के भेद तथा कर्मों के भेदादि का कथन हो उसी आगम के अभ्यास से पदार्थों का निश्चय होता है, केवल पढ़ने का ही अभ्यास न करें किन्तु आगम में सारभूत जो चिदानन्द रूप एक परमात्म तत्त्व का प्रकाशक अध्यात्म ग्रन्थ है व जिसके अभ्यास से पदार्थ का यथार्थ ज्ञान होता है उसका मनन करें। इसी कारण से ही उस ऊपर कहे गए आगम तथा परमागम में जो उद्योग है वह श्रेष्ठ है। ऐसा अर्थ है।

**समीक्षा -** भाव की व्यग्रता से, चञ्चलता से या संकल्प विकल्प से कर्मसिव एवं बन्ध होता है। इसके विपरीत भाव की स्थिरता से संवर एवं निर्जरा होती है। यह एकाग्रता/स्थिरता पदार्थ के यथार्थ स्वरूप को जानने वाले भेद विज्ञानी को होती है। यह भेद विज्ञान आगम से होता है इसलिए एकाग्रता तथा भेद विज्ञान के लिए आगम कारण है अतः आगम का अभ्यास एवं आगम के अनुसार आचरण श्रेष्ठ है, ज्येष्ठ है, प्रशस्त है क्योंकि बिना आगम छद्मस्थों को ज्ञान नहीं होगा, ध्यान नहीं होगा एवं चारित्र नहीं होगा। इसलिए ज्ञान, ध्यान और चारित्र के लिए आगम का अवलम्बन श्रेष्ठ कहा गया है।

**-आगमहीन श्रमण का कर्मक्षय नहीं होता है-**

आगमहीणो समणो णेवप्पाणं परं वियाणादि।

अविजाणांतो अट्टे खवेदि कम्माणि किध भिक्खू॥ (233) प्रव.सार

The Shramana, who is talking in the study of scriptures, does not know his self and the things other than his self; without knowing the objectivity how can the monk destroy the karmas ?

जिसको आगमज्ञान नहीं है उसके कर्मों का क्षय नहीं हो सकता है। (आगमहीणो) शास्त्र के ज्ञान से रहित (समणो) साधु (णेवप्पाणं परं) न तो आत्मा को न पर को (वियाणादि) जानता है। (अट्टे अविजाणांतो) परमात्मा आदि पदार्थों को नहीं जानता हुआ (भिक्खू) साधु (किध) किस तरह (कम्माणि) कर्मों का (खवेदि) क्षय कर सकता है।

भिण्णउ जेण ण जाणियउ णियदेहहंपरमत्थ।

सो अंधउ अवरहं किम दरसावइ पंथु॥

इस दोहा सूत्र का भाव यह है कि जिसने अपनी देह से परम पदार्थ आत्मा को भिन्न नहीं जाना, वह आर्तरौद्रध्यानी किस तरह अपने आत्म पदार्थ को देख सकता है इस प्रकार के आगम में सारभूत अध्यात्मशास्त्र को जिसने नहीं जाना अर्थात् बीस प्रलृपणाओं के शास्त्र को और अध्यात्मशास्त्र इन दोनों शास्त्र को नहीं जाना, वह पुरुष रागादि दोषों से रहित तथा अव्यावाध सुख आदि गुणों के धारी अपने आत्मद्रव्य को भावकर्म के वाच्य राग-द्वेषादि नाना प्रकार विकल्प जालों से वास्तव में भिन्न नहीं जानता है और न कर्मरूपी शत्रुओं को विघ्नंस करने वाले अपने ही परमात्म-तत्त्व को ज्ञानावरण आदि द्रव्य कर्मों से जुदा समझता है; न अशरीरी शुद्ध-आत्म पदार्थ को शरीरादि नो कर्म से जुदा समझता है।

इस तरह भेद-ज्ञान के न होने पर उसके शरीर में विराजित अपने शुद्धात्मा की रुचि नहीं होती है और न उसकी भावना सर्व रागादि का त्याग करने की होती है, ऐसी दशा में उसके कर्मों का क्षय किस तरह हो सकता है? अर्थात् कदापि नहीं हो सकता है। इसी कारण से मोक्षार्थी पुरुष को परमागम का अभ्यास ही करना योग्य है, ऐसा तात्पर्य है।

वास्तव में आगम के बिना परात्मज्ञान या परमात्मज्ञान नहीं होता और परात्मज्ञान शून्य के या परमात्म ज्ञान शून्य के मोहादि द्रव्य भाव कर्मों का या ज्ञानि परिवर्तन (ज्ञान रूप) क्रिया का परिवर्तन रूप कार्य का क्षय नहीं होता। वह इस प्रकार है कि प्रथम तो, आगमहीन यह जगत् कि, जो निरवधि (अन्त) संसार रूप नदी के प्रवाह को बहाने वाले (पञ्च परिवर्तन करने वाले) महा मोह मल से मलीन है, वह धृतूरा पिये हुए मनुष्य की भाँति विवेक के नाश को प्राप्त होने से अविवित्त ज्ञान ज्योति से यद्यपि देखता है तथापि उसे स्व-पर निश्चयक आगमोपदेश पूर्वक स्वानुभाव के अभाव के कारण, जिसके त्रिकाल परिपाठी में विचित्र पर्यायों का समूह प्रकट होता है, ऐसे अगाध गम्भीर स्वभाव वाले विश्व को ज्ञेय रूप करके प्रतापावन् ज्ञान स्वाभावी एक परमात्मा का ज्ञान भी सिद्ध नहीं होता। इस प्रकार जो, 1. परात्मज्ञान से 2. परमात्मज्ञान से शून्य है उसे (1) द्रव्य कर्म से होने वाले शरीरादि के साथ तथा तत्सम्बन्धी मोहराग-द्वेषादि भावों के साथ एकता का अनुभव करने के कारण वध्यधातक (द्रव्य कर्म) के विभाग का अभाव होने से मोहादि द्रव्य-भाव कर्मों का क्षय सिद्ध नहीं होता तथा (2) ज्ञेयनिष्ठता के अतिरिक्त अनिवार्य होने से ज्ञानि परिवर्तन रूप कार्य का क्षय भी सिद्ध नहीं होता। इसलिए कर्म क्षयार्थियों को सर्व प्रकार से आगम की पर्याप्तासना करना योग्य है।

**समीक्षा** - जिस प्रकार घने अन्धकार में ग्रहणीय एवं त्यजनीय वस्तु का स्पष्ट प्रतिभास नहीं होता है इसलिए कभी-कभी रसीदों को चाहने वाला भी सर्प को भी ग्रहण कर लेता है। उसी प्रकार आगम ज्ञान से रहित जीव स्व-स्वरूप एवं पर स्वरूप को न जानने के कारण पर स्वरूप को त्याग नहीं कर पाता है एवं स्व-स्वरूप को ग्रहण नहीं कर पाता है क्योंकि जीव अनादि काल से मिथ्यादृष्टि होने के कारण वस्तु स्वरूप को नहीं जानता है। सम्यग्दर्शन के लिए बाह्य निमित्त में देशना लब्धि अनिवार्य है। बिना देशना लब्धि कभी किसी को प्रथम उपशम सम्यक्त्व प्राप्त नहीं हो सकता है। बिना

सम्यग्दर्शन ज्ञान सम्यक् ज्ञान नहीं हो सकता है। बिना सम्यग्ज्ञान के श्रेय-अश्रेय, ग्रहणीय-अग्रहणीय को नहीं ज्ञान सकता है जब श्रेय-अश्रेय, ग्रहणीय को नहीं ज्ञान सकेगा तब किसे ग्रहण करेगा, किसे त्याग करेगा। इसलिए मोक्षमार्ग के लिए आगम ज्ञान होना अनिवार्य है।

### -विभिन्न जीव की विभिन्न चक्षु-

आगम चक्खू साहू इंदियचक्खूणि सव्वभूदाणि।

देवा य ओहिचक्खू सिद्धा पुण सव्वदो चक्खू॥ (234) प्रव. सार

The Saints have scriptures as their eyes; all the living beings have sense-organs as their eyes; the gods have clairvoyance as their eyes; and the Siddhas have eyes in every way.

मोक्ष मार्ग पर चलने वालों के लिए आगम ही चक्षु है-

(साहू) साधु महाराज (आगमचक्खू) आगम के नेत्र से देखने वाले हैं। (सव्वभूदाणि) सर्व संसारी जीव (इंदियचक्खूणि) इन्द्रियों के द्वारा जानने वाले हैं (देवाय ओहिचक्खू) और देवगण अवधिज्ञान से जानने वाले हैं। (पुण) परन्तु (सिद्धसव्वदो चक्खू) सिद्ध भगवान् सब तरफ से सब देखने वाले हैं।

निश्चय-रत्नत्रय के आधार से निज शुद्धात्मा के साधने वाले साधुगण की चक्षु शुद्धात्मा आदि पदार्थों का कथन करने वाला परमागम है। सर्व संसारी जीव निश्चयनय से अतीन्द्रिय और अमूर्त केवलज्ञानादि गुण स्वरूप है। व्यवहार नय से अनादि कर्मबन्ध के वश से इन्द्रियाधीन है अतः वे संसारी जीव इन्द्रियों के द्वारा जानते हैं। चार प्रकार के देव भी सूक्ष्म मूर्तिक पुद्गल द्रव्य को जानने वाले अवधिज्ञान के द्वारा देखते हैं। सिद्ध भगवान् शुद्ध बुद्ध एक स्वभावमयी जीव-अजीव से भरे हुए लोकाकाश के प्रमाण, जो अपने शुद्ध असंख्यात प्रदेश-उन सर्व प्रदेशों से देखते हैं। इससे यह बात कही गई है कि सर्व शुद्धात्मा के प्रदेशों से देखते हैं। इससे यह बात कही गई है कि सर्व शुद्धात्मा के प्रदेशों से देखने की योग्यता के लिए मोक्षार्थी पुरुषों को उस स्वसंवेदन ज्ञान की ही भावना करनी चाहिए। वह स्वसंवेदन ज्ञान निर्विकार है और परमागम के उपदेश से उत्पन्न होता है।

प्रत्येक जीव द्रव्य दृष्टि से अनन्त दर्शन से एवं अनन्त ज्ञान से युक्त होने पर भी ज्ञानावरणीय एवं दर्शनावरणीय कर्म रूपी आवरण से आवृत्त होने के कारण जितने-जितने अंश में क्षयोपशम होता है उतने-उतने अंशों से वह

देखता है एवं जानता है। सिद्ध जीव समस्त कर्म आवरणों से रहित होने के कारण वे समस्त आत्म-प्रदेशों से देखते हैं एवं जानते हैं। इसलिए सिद्ध को सर्वतः चक्षु कहा गया है। क्योंकि सिद्ध के प्रत्येक आत्म प्रदेश में अनन्त ज्ञान-दर्शन की शक्ति होती है। देव पर्याय में भव प्रत्यय अवधिज्ञान सब देवों को अवश्य होता है और वे अपने-अपने अवधिज्ञान से स्व-स्व मूर्तिक वस्तु को देखते हैं एवं जानते हैं। यदि सम्यग्दृष्टि देव है तो उसका ज्ञान सुअवधि होगा और मिथ्यादृष्टि देव है तो उसका ज्ञान कुअवधि होगा। परन्तु होगा अवश्य ही, भले कुछ देव के अल्पज्ञान रहता है तो कुछ देव के अधिक। यहाँ जो देव को अवधि चक्षु वाला बताया गया है इसका यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि इनकी चक्षु इन्द्रियाँ नहीं होती हैं। परन्तु इनकी भी चक्षु इन्द्रियाँ अवश्य होती हैं क्योंकि सब देव पञ्चेन्द्रिय होते हैं। और प्रथम गुणस्थान से लेकर चतुर्थ गुणस्थानवर्ती होते हैं। परन्तु यहाँ पर मुख्यता से अवधिज्ञान को स्वीकार किया गया है क्योंकि इन्द्रिय चक्षु से इनका अवधिज्ञान अधिक प्रबल होता है इसलिए यहाँ अवधिज्ञान को स्वीकार किया गया है। साधु मनुष्य गति के होने के कारण वे संज्ञी पञ्चेन्द्रिय अवश्य होते हैं। वे सम्यग्दृष्टि होने के कारण मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञान के धारी होते हैं। तथापि यहाँ पर जो 'आगम चक्षु साहू' कहा उसका एक विशेष आध्यात्मिक रहस्य है। वह रहस्य यह है कि साधु आगम से ही समस्त विषयों को जानता है, भेद-विज्ञान करता है, हित-अहित का विवेक करता है। षट् द्रव्य, सप्त तत्त्व, नव पदार्थ, मोक्ष मार्ग का परिज्ञान करता है, साधु चारित्र का परिज्ञान करके उसके अनुसार आचरण करके मोक्ष प्राप्त करता है। यह सब इन्द्रियों से, मतिज्ञान से तथा सामान्य श्रुतज्ञान से भी नहीं हो सकता है इसलिए साधु की चक्षु आगम होती है। इतना ही नहीं, कुन्दकुन्द आचार्य देव ने कहा है- 'आगम चेद्वा तदो जेद्वा' अर्थात् आगम के अनुसार जो चेष्ठा करता है, चारित्र पालन करता है वह ज्येष्ठ है, श्रेष्ठ है। इससे सिद्ध होता है आगम में तो सिद्धान्तिक मुनि धर्म का वर्णन है परन्तु श्रमण प्रायोगिक मुनि धर्म है, और भी एक सिद्धान्त फलित यह होता है कि जिस प्रकार हम आगम सिद्ध को सर्वतः चक्षुरूप से जानते हैं उसी प्रकार हमें भी आगम के अनुकूल साधना करते हुए सर्वत्र चक्षु बनना चाहिए।

-आगम चक्षु से श्रमण सर्व अर्थ को जानता है-

(आगम के लोचन से सर्व दिखता है)

सब्वे आगम सिद्धा अत्था गुणपञ्जएहिं चत्तेहि।

जाणांति आगमेण हि पेच्छित्ता ते वि ते समणा। (235)

All the objects, with their various qualities and modification, are known from the scriptures; those, who know them learning from the scriptures, are the shramanas.

**त्रिगुप्तिधारी ज्ञानी मुनि प्रचुर कर्मक्षय करता है-**

जं अणाणी कम्मं खवेदि भवसय सहस्सकोडीहिं।

तं णाणी तिहिं गुत्तों खवेदि उस्सासमेत्तेण॥ (238)

The man of knowledge, who is controlled in three ways, destroy within a breath the karma which a man devoid of knowledge could destroy in hundred thousand Crores of lives.

परमागम ज्ञान, तत्त्वार्थश्रद्धान तथा संयमीपना इन भेदरूप रत्नत्रयों के मिलाप होने पर भी जो अभेद रत्नत्रय स्वरूप निर्विकल्प समाधिमय आत्मज्ञान है वही निश्चय से मोक्ष का कारण है- (अणाणी) अज्ञानी (जं कम्मं) जिस कर्म को (भवसयसहस्स कोडीहिं) एक लाख करोड़ों भवों में (खवेदि) नाश करता है। (तं) उस कर्म को (णाणी) आत्मज्ञानी (तिहिं गुत्तो) मन-वचन-काय तीनों गुप्ति सहित होकर (उस्सास मेत्तेण) एक उच्छ्वास मात्र में (खवेदि) क्षय कर देता है। निर्विकल्प समाधिरूप निश्चय रत्नत्रय विशेष भेदज्ञान को न पाकर अज्ञानी जीव करोड़ों जन्मों में जिस कर्मवन्ध को क्षय करता है, उस कर्म को ज्ञानी जीव तीन गुप्ति में गुप्त होकर एक उच्छ्वास में नाश कर डालता है। इस का भाव यह है कि बाहरी पदार्थों के सम्बन्ध में जो सम्यग्ज्ञान परमागम के अभ्यास बल से होता है तथा जो उनका श्रद्धान होता है और श्रद्धान ज्ञान पूर्वक व्रत आदि का चारित्र पाला जाता है, इन तीन रूप रत्नत्रय के आधार से सिद्ध परमात्मा के स्वरूप में सम्यक् श्रद्धान तथा सम्यग्ज्ञान होकर उनके गुणों का स्मरण करना इसी के अनुकूल जो चारित्र होता है। फिर भी इसी प्रकार तीन के आधार से जो उत्पन्न होता है। निर्मल अखण्ड एक ज्ञानाकार रूप अपने ही शुद्धात्मा में जानने रूप सविकल्पज्ञान तथा शुद्धात्मा ही ग्रहण करने योग्य है, ऐसी रुचि सो विकल्प रूप सम्यग्दर्शन और इसी ही आत्मा के स्वरूप में रागादि विकल्पों से रहित सो सविकल्प

चारित्र उत्पन्न होता है फिर भी इन तीनों के प्रसाद से विकल्प रहित समाधि रूप निश्चय रत्नत्रयमय विशेष स्वसंवेदन ज्ञान उत्पन्न होता है। उस ज्ञान को न पाकर अज्ञानी जीव करोड़ों जन्मों में जिस कर्म का क्षय करता है, उस कर्म को ज्ञानी जीव पूर्वोक्त ज्ञान गुण के सदभाव में मन-वचन-काय की गुप्ति में लबलीन होकर एक श्वास मात्र में लीला मात्र से ही नाश कर डालता है। इससे यह बात जानी जाती है कि परमागमन ज्ञान तत्त्वार्थ श्रद्धान् तथा संयमीपना इस भेद रत्नत्रय के होने पर भी अभेद या निश्चय रत्नत्रय स्वरूप स्वसंवेदन ज्ञान की मुख्यता है।

**समीक्षा -** जिस प्रकार लेन्स को चिरकाल तक सूर्य किरण में रखने पर भी जब तक सूर्य किरण बिखर कर रहती है तब तक अग्नि उत्पन्न नहीं होती है परन्तु सूर्य की किरण एक कागज के केन्द्र में केन्द्रित होते ही अग्नि उत्पन्न हो जाती है। उसी प्रकार अज्ञानी जिस कर्म को शत सहस्र कोटि भव (100,000,000000) में ध्वनि करता है, नष्ट करता है, निर्जरण करता है, उसी कर्म को रत्नत्रय से युक्त मुनि उच्छ्वास मात्र में नष्ट कर देता है। यहाँ पर ज्ञानी उसे स्वीकार किया गया है जो विशिष्ट भेद-विज्ञान से युक्त, निश्चय रत्नत्रय से संयुक्त निर्विकल्प समाधि में स्थित मुनि है। इससे विपरीत अज्ञानी है। इससे सिद्ध होता है कि आगम की अपेक्षा मिथ्या दृष्टि अज्ञानी होते हुए भी अध्यात्म की दृष्टि से निर्विकल्प समाधि से च्युत मुनि भी अज्ञानी है। यदि मुनि भी अज्ञानी है तो पञ्चम गुणस्थानवर्ती श्रावक, चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अविरत सम्यग्दृष्टि जीव तो अज्ञानी है ही, क्योंकि पञ्चम गुणस्थान में तो पूर्ण व्यवहार चारित्र नहीं है और चतुर्थ गुणस्थान में आंशिक भी चारित्र नहीं है, जब व्यवहार रत्नत्रय ही नहीं है तब निश्चय रत्नत्रय की सम्भावना ही नहीं है और निश्चय रत्नत्रय के बिना जीव आध्यात्मिक दृष्टि से अज्ञानी है ही। मिथ्या दृष्टि तो आध्यात्म की बात तो दूर रहे आगम की दृष्टि से भी अज्ञानी है ही, इसलिए अज्ञानी की परिभाषा जयसेनाचार्य ने समयसार व प्रवचनसार में उपरोक्त प्रकार से ही दी है। यथा- “जं अण्णाणी कम्मं खवेइ” - “निर्विकल्प समाधिरूप निश्चय रत्नत्रयात्मक विशिष्ट भेद ज्ञानाभावादज्ञानीजीवो यत्कर्म क्षपयति” अर्थात् निर्विकल्प समाधिरूप निश्चय रत्नत्रयात्मक विशिष्ट भेद-ज्ञान के अभाव वाला अज्ञानी जीव विशेष क्षपणा करता है। पुनः आचार्य श्री ने “तण्णाणी तिहिं गुत्तों खवेइ उस्सासमेतेण” की समीक्षा करते हुए लिखा है कि “ततो ज्ञायते परमागमज्ञान तत्त्वार्थश्रद्धान् संयतत्वानां भेदरत्नत्रयरूपाणां सदभावेऽप्य भेदरत्नत्रय रूपस्य स्वसंवेदन ज्ञानस्यैव प्रधानत्वमिति” इससे यह

सिद्धान्त प्रतिफलित होता है कि परमागमन, तत्त्वार्थश्रद्धान् तथा संयमीपना इस भेद रत्नत्रय के होने पर भी अभेद रत्नत्रय स्वरूप स्वसंवेदन ज्ञान की मुख्यता है अर्थात् अभेद रत्नत्रयधारी तीन गुप्ति से गुप्त मुनि ही उच्छ्वास मात्र में उन कर्मों को नष्ट कर देता है और जब तक शुक्लध्यान नहीं होता है तब तक मोक्ष प्राप्त योग्य कर्मों का विध्वंस नहीं होता है। इस अवस्था से निचली-निचली अवस्था में मन-वचन-काय में परिस्पंदन होने के कारण आत्मा में पूर्ण स्थिरता एवं लीनता नहीं आती है जिसके कारण कुछ कर्म की तो निर्जरा होती है पर कुछ नवीन कर्मों का बन्ध भी हो जाता है। इसलिए निचली भूमिका के जीव उतना कर्म नष्ट नहीं कर पाते जितना त्रिगुप्तिधारी मुनि करते हैं।

**-आगमन् भूच्छावान् भी मोक्ष प्राप्त नहीं करता है-**

परमाणु पपाणं वा मुच्छा देहादिरेसु जस्स पुणो।

विज्जदि जदि सो सिद्धिं ण लहदि सव्वागमधरो वि॥ (239) प्रव.सार.

Further, he, who has an atom of attachment toward body etc., can not attain liberation, even if he knows all the scriptures.

निज शुद्धात्मा को ग्रहण करके और बाहरी भीतरी 24 प्रकार के परिग्रह की निवृत्ति सो त्याग है। निष्क्रिय निज शुद्धात्म द्रव्य में ठहर कर मन-वचन-काय के व्यापारों से छूट जाना सो अनारम्भ है। इन्द्रिय विषय रहित अपने आत्मा की भावना से उत्पन्न सुख में तृप्त होकर पञ्चेन्द्रियों के सुख की इच्छा का त्याग सो विषय-विराग है। निःकषाय निजशुद्धात्मा की भावना के बल से क्रोधादि कषायों का त्याग सो कषाय क्षय है। इन गुणों से संयुक्तपना संयम है, ऐसा कहा गया है। यह सामान्य संयम का लक्षण है। तपश्चरण की अवस्था में विशेष संयम होता है। यहाँ अभ्यन्तर परिणामों की शुद्धि को भाव संयम तथा बाह्य त्याग को द्रव्य संयम कहते हैं।

**समीक्षा -** ‘सिद्धि स्वात्मोपलब्धि’ अर्थात् आत्मा की पूर्ण उपलब्धि ही सिद्धि है। आत्मा की पूर्ण उपलब्धि तब होती है जब सम्पूर्ण मोह-राग-द्वेषादिरूप वैभाविक परिणाम नष्ट हो जाते हैं। जब तक सूक्ष्म मात्र भी वैभाविक भाव होता है तब तक केवलज्ञान को प्राप्त नहीं कर सकता है। जिसकी मूल्चाशरीरादि में रहती है तब तक वह निर्विकल्प नहीं हो सकती है क्योंकि मूल्चाश्री भाव में चञ्चलता उत्पन्न कर देती है। जब चञ्चलता रहती है तब अभेद रत्नत्रय की उपलब्धि नहीं होती है। जब अभेद रत्नत्रय नहीं

होता है तब स्व-संवेदन ज्ञान पूर्ण रूप से नहीं होता है। और जब तक स्वसंवेदन ज्ञान पूर्ण नहीं होता है तब तक सिद्धि की उपलब्धि नहीं होती है। भले वह सम्यग्दर्शन आगम ज्ञान तथा संयम को धारण करने वाला मुनि ही क्यों न हो? अकलङ्ग देव स्वामी ने स्वरूप सम्बोधन में कषायरूपी रङ्ग से रङ्ग हुआ चित्त आत्म-स्वभाव में लीन नहीं हो जाता है। यथा-

**कषायैः रज्जितं चेतस्तत्वं नौवावगाहते।**

**नीलीरक्तऽम्ब्रेर रागो, दुराधेयों हि कौंकुमः॥ (17) पृ. 274**

शुद्ध आत्मा का स्वरूप तभी विचारा जा सकता है जब कि चित्त में कषाय भावों का गहरा मैल न चढ़ा होवे, कषाय मन्द हो, विवेक शक्ति जागृत हो जैसे कुंकुम का लाल रङ्ग सफेद या हल्के रङ्गे हुए कपड़े पर चढ़ सकता है। गहरे नीले रङ्ग से रङ्गे हुए कपड़े पर कुंकुम का रङ्ग नहीं चढ़ सकता है, इस कारण सदा अपने कषाय भावों को अच्छे प्रयत्न के साथ दबा करके रखना चाहिए जिससे आत्मा का विवेक कार्य करता रहे।

**ततस्त्वं दोषनिर्मुक्त्यै निर्मोहो भव सर्वतः।**

**उदासीनत्वं माश्रित्य, तत्त्वचिन्तापरो भव॥ (18)**

आत्मा में विवेक भाव को लुप्त करने वाला कषाय भाव तब ही प्रबल होता है, जबकि आत्मा इन्द्रियों या शरीर के इष्ट यानी-प्रिय विषयों में राग भाव करता है और इन्द्रियाँ तथा शरीर के अनिष्ट यानी-अप्रिय विषयों में द्रेष करता है। यदि सांसारिक शारीरिक तथा एन्द्रिय (इन्द्रियों के) विषयों में इष्ट-अनिष्ट की विचारधारा छोड़कर आत्मा उदासीन बन जावे तो अपना आत्म-स्वरूप प्राप्त किया जा सकता है, आत्मा को विषय मैल से स्वच्छ हो कर संसार से छुटकारा मिल सकता है।

## अध्याय - 9

### -सा विद्या या विमुक्तये-

जावन्तऽविज्ञापुरिसा सब्वे ते दुखसंभवा।

लुप्तन्ति बहुसो मूढा संसारंमि अणन्तए॥ (उत्त.पृ.100 गा.1)

अविद्यावान् पुरुष की तीन व्याख्याएँ - (1) जो कुत्सित ज्ञान युक्त हों, (जिनका चित्त मिथ्यात्व से ग्रस्त हो) वे अविद्या पुरुष हैं। (2) जिनमें तत्त्वानात्मिका विद्या न हो, वे अविद्या हैं। अविद्या का अर्थ यहाँ मिथ्यात्व से अभिभूत कुत्सित ज्ञान है। अतः अविद्या प्रधान पुरुष-अविद्या पुरुष हैं। (3) अथवा विद्या शब्द प्रचुर श्रुतज्ञान के अर्थ में है। जिनमें विद्या न हो, वे अविद्या पुरुष हैं। इस दृष्टि से अविद्या का अर्थ सर्वथा शून्यता नहीं, किन्तु प्रभृत श्रुतज्ञान (तत्त्वज्ञान) का अभाव है, क्योंकि कोई भी जीव सर्वथा ज्ञान शून्य तो होता ही नहीं, अन्यथा जीव और अजीव में कोई भी अन्तर न रहता।

### -विद्यार्जन के प्रमाद से सर्वनाश-

एक भाग्यहीन दरिद्र धनोपार्जन के लिए परदेश गया। वहाँ उसे कुछ भी द्रव्य प्राप्त न हुआ। वह वापिस स्वदेश लौट रहा था। रास्ते में एक गाँव के बाहर शून्य देवालय में रात्रि विश्राम के लिए ठहरा। संयोगवश वहाँ एक विद्यासिद्ध पुरुष मिला। उसके पास कामकुम्भ था, जिसके प्रताप से वह मनचाही वस्तु प्राप्त कर लेता था। दरिद्र ने उसकी सेवा की। उसने सेवा से प्रसन्न होकर कहा- “तुझे मंत्रित कामकुम्भ दूँ या कामकुम्भ प्राप्त करने की विद्या दूँ?” विद्यासाधना में कायर दरिद्र ने कामकुम्भ ही माँग लिया। कामकुम्भ पाकर वह मनचाही वस्तु पाकर भोगासक्त हो गया। एक दिन मद्यपान से उन्मत्त होकर वह सिर पर कामकुम्भ रख कर नाचने लगा। जरा सी असावधानी से कामकुम्भ नीचे गिरकर टुकड़े-टुकड़े हो गया। उसका सब वैभव नष्ट हो गया, पुनः दरिद्र हो गया। वह पश्चाताप करने लगा- “यदि मैंने विद्या सीख ली होती तो मैं दूसरा कामकुम्भ बनाकर सुखी हो जाता।” परन्तु अब क्या हो? जैसे विद्यारहित वह दरिद्र दुःखी हुआ वैसे ही अध्यात्मविद्या रहित पुरुष अनन्त संसार में जन्म-जरा, मृत्यु, व्याधि-आधि आदि के कारण दुःखी होता है।

समिक्ख पंडिए तम्हा पासजाईपहे ब्रह्म।  
 अप्पणा सच्चमेसेज्जा मेति भूएसु कप्पए॥ (2)  
 माया पिया णहुसा भाया भज्जाना पुत्ता य औरसा।  
 नालं ते मम ताणाय लुप्पन्तस्स सकम्मुणा॥ (3)  
 एयमद्वं सपेहाए पासे समियदंसणे।  
 छिन्द गेहिं सिणेहं च न कंखे पुव्वसंथवं॥ (4)  
 गवासं मणिकुण्डलं पसवो दासपोरुसं।  
 सब्बमेयं चइत्ताणं कामदवी भाविस्ससि॥ (5)  
 थावरं जंगमं चेव धणं धणं उवक्खरं।  
 पच्चमाणस्स कम्मेहिं नालं दुक्खाउमोयणे॥ (6)  
 अज्जत्थं सब्बओ सब्बं दिस्स पाणे पियायए।  
 न हणे पाणिणो पाणे भयवेराओ उवरए॥ (7)

इसलिए साधक पण्डित (विद्यावान्) बहुत से पाशों (बन्धनों) और जातिपंथों (एकेन्द्रियादि में जन्म-मरण के मोह जनित कारणों-स्रोतों) की समीक्षा करके स्वयं सत्य का अन्वेषण करें और विश्व के सभी प्राणियों के प्रति मैत्री भाव का संकल्प करें।

(फिर सत्य दृष्टा पण्डित यह विचार करे कि) अपने कृत कर्मों से लुप्त (पीड़ित होते समय माता-पिता, पुत्रवधु, भाई, पत्नी औरस (आत्मज) पुत्र ये सब (स्वकर्म समुद्भूत दुःखों से मेरी रक्षा करने में समर्थ नहीं हो सकते।

सम्यग्दर्शन-युक्त साधक अपनी प्रेक्षा (स्वतन्त्र बुद्धि) से इस अर्थ (उपर्युक्त तथ्य) को देखे (टटस्थ दृष्टा बनकर विचारे) (तथा अविद्याजनित) गृह्णि, आसक्ति और स्नेह का छेदन करे। (किसी के साथ) पूर्व परिचय की आकांक्षा न रखता हुआ ममत्वभाव का त्याग कर दे।

गौ (गाय-बैल आदि), अश्व और मणिकुण्डल, पशु, दास (अन्य सहयोगी या आश्रित) और पुरुष-समूह इन सब (पर अविद्याजनित ममत्व) का परित्याग करने पर ही (हे साधक!) तू काम-रूपी (इच्छानुसार रूपधारक) होगा।

अपने कर्मों से दुःख पाते (पचते) हुए जीव को स्थावर (अचल) और जङ्गम (चल) सम्पत्ति, धन, धान्य, उपस्कर (गृहोपकरण-साधन) आदि सब पदार्थ की (अविद्योपर्जित कर्मजनित) दुःख से मुक्त करने में समर्थ नहीं होते।

सबको सब प्रकार के अध्यात्म (सुख) इष्ट है, सभी प्राणियों को अपना जीव प्रिय है; यह भय और वैर (द्वेष) उपतर (निवृत्त) साधक किसी भी प्राणी के प्राणों का हनन न करो।

इहमेगे उ मन्नन्ति अपच्चक्खाय पावगं।  
आयरियं विदित्ताणं सब्ब दुक्खा विमुच्चई॥ (9)

इस संसार में (या आध्यात्मिक जगत् में) कुछ लोग यह मानते हैं कि पापों का प्रत्याख्यान (त्याग) किये बिना ही केवल आर्य (तत्त्वज्ञान) अथवा आचार (स्वस्वमत के बाह्य आचार) को जानने मात्र से मनुष्य सभी दुःखों से मुक्त हो सकता है।

भणन्ता अकरेन्ता य बन्ध-मोक्ख पइण्णिणो।  
वाया विरियमेत्तेण समासासेन्ति अप्पयं ॥ (10)

जो बन्ध और मोक्ष के सिद्धान्तों की स्थापना (प्रतिज्ञा) तो करते हैं, (तथ्ज्ञान से ही मोक्ष होता है, इस प्रकार से) कहते बहुत कुछ हैं, तदनुसार करते कुछ नहीं हैं, वे (ज्ञानवादी) केवल वाणी की वीरता से अपने आपको (झूठा) आश्वासन देते रहते हैं।

न चिन्ता तायए भासा कओ विज्जाणुसासणं?  
विसन्ना पाव-कम्मेहिं बाला पंडियमाणिणो॥ (11)

विभिन्न भाषाएँ (पापों या दुःखों से मनुष्य की) रक्षा नहीं करतीं; (फिर व्याकरण-न्याय-मीमांसा आदि) विद्याओं का अनुशासन (शिक्षण) कहाँ सुरक्षा दे सकता है? ये इन्हें संरक्षक (त्राता) मानते हैं, वे अपने आपको पण्डित मानने वाले (पण्डितमानी) अज्ञानी (अतत्त्वज्ञ) जन पापकर्म रूपी कीचड़ में (विविध प्रकार से) फँसे हुए हैं।

जे केई सरीरे सत्ता वणे रुवे य सब्बसो।  
मणसा कायवक्केणं सब्बे ते दुक्खसंभवा॥ (12)

जो मन, वचन और काय से शरीर में तथा वर्ण और रस आदि विषयों में सब प्रकार से आसक्त हैं, वे सभी अपने लिए दुःख उत्पन्न करते हैं।

आवन्ना दीहमध्दाणं संसारम्मि अणंतए।  
तम्हा सब्बदिसं पस्स अप्पमत्तो परिव्वए॥ (13)

वे (ज्ञानवादी शरीरासक्तपुरुष) इस अनन्त संसार में (विभिन्न भव भ्रमण 169

रूप) दीर्घ पथ को अपनाए हुए हैं। इसलिए (साधक) सब (भाव) दिशाओं (जीवों के उत्पत्ति स्थानों) को देखकर अप्रमत्त होकर विचरण करें।

**बहिया उड्ढमादाय नावकंखे कयाइ वि।  
पुव्वकम्म-खयद्वाए इमं देहं समुधरे॥ १४॥**

(वह संसार से) ऊर्ध्व (मोक्ष का लक्ष्य) रखकर चलने वाला कदापि बाह्य (विषयों) की आकांक्षा न करे। (साधक पूर्व कृतकर्मों के क्षय के लिए ही इस देह को धारण करे)।

मूल (कारणों) सहित समस्त अत्यन्त (अनादि) कालिक दुःखों से मुक्ति का जो उपाय है, उसे मैं कह रहा हूँ। एकान्त हितरूप है, कल्याण के लिए है, उसे परिपूर्ण चिर (की एकाग्रता) से सुनो।

### दुःख मुक्ति तथा सुख प्राप्ति का उपाय :

णाणस्स सब्बस्स पगासणाए अणाण-मोहस्स विवज्जणाएं।  
रागस्स दोस्स य संखएण एगान्त सोक्खं समुवेई मोक्खं॥ २॥

(उत्तराध्ययन, 32 वाँ अध्ययनःप्रमादस्थान)

सम्पूर्ण ज्ञान के प्रकाशन से, ज्ञान और मोह के परिहार से, (तथा) राग और द्वेष के सर्वथा क्षय से, जीव एकान्त सुखरूप मोक्ष को प्राप्त करता है।

तस्सेस मग्गो गुरु-विधसेवा विवज्जणा बालजणस्स दूरा ।  
सज्जाय-एगान्तनिसेवणा य सत्तऽत्थसचिन्तण्या धिई य ॥ ३॥

गुरुजनों और वृद्धों की सेवा करना, ज्ञानी जनों के सम्पर्क से दूर रहना, स्वाध्याय करना, एकान्त-सेवन, सूत्र और अर्थ का सम्यक् चिन्तन करना और धैर्य रखना यह उसका (ज्ञानादि प्राप्ति का) मार्ग (उपाय) है।

### दुःख की परम्परागत उत्पत्ति :

जहा य अण्डप्पभवा बलागा अण्डं बगालप्पभवं जहा यं।  
एमेव मोहाययणं खु तण्हा मोहं च तण्हाययणं वयन्ति॥ ६॥

जिस प्रकार बलाका (बगुली) अण्डे से उत्पन्न होती है, और अण्डा बलाका से उत्पन्न होता है, उसी प्रकार मोह का आयतन (जन्मस्थान) तृष्णा है, तथैव तृष्णा का जन्म स्थान मोह है।

रागो य दासो वि य कम्मबीयं कम्मं च मोहप्पभवं वयन्ति।  
कम्मं च जाई-मरणस्स मूलं दुक्खं च जाई-मरणं वयन्ति॥ ७॥

कर्म (वन्ध) के बीज राग और द्वेष हैं। कर्म उत्पन्न होता है-मोह से। वह कर्म ही जन्म-मरण का मूल है और जन्म-मरण ही (वास्तव में) दुःख है।

दुक्खं हयं जस्स न होई मोहो मोहो हओ जस्स न होई तण्हा।  
तण्हा हया जस्स न होई लोहो लोहो हओ जस्स न किंचणाइ॥ ८॥

(अतः) जिसके मोह नहीं है, उसने दुःख को नष्ट कर दिया। उसने मोह को मिटा दिया है, जिसके तृष्णा नहीं है, उसने तृष्णा का नाश कर दिया, जिसके लोभ नहीं है, उसने लोभ को समाप्त कर दिया, जिसके पास कुछ भी परिग्रह नहीं है, अर्थात् जो अकिञ्चन है।

### -राग-द्वेष-मोह के उन्मूलन का प्रथम उपाय : अतिभोजन त्याग-

रागं च दोसं च तहेव मोहं उद्धतुकामेण समूलजालं।  
जे जे उवाया पडियज्जियव्वा ते कित्तइस्सामि अहाणुपुव्वी॥ ९॥

जो राग, द्वेष और मोह का समूह उन्मूलन करना चाहता है, उन्हें जिन-जिन उपायों को अपनाना चाहिये, उन्हें मैं अनुक्रम से कहूँगा।

रसा पगामं न निसेवियव्वा पायं रसा दित्तिकरा नराणं।  
दित्तं च कामा समभिद्वन्ति दुमं जहा साउफलं व पक्खी॥ १०॥

रसों का प्रकाम (अत्यधिक) सेवन नहीं करना चाहिए, क्योंकि रस प्रायः साधक पुरुषों के लिए वृष्टिकर (उन्माद बढ़ाने वाले) होते हैं। उदीप्तकाम मनुष्य को काम (विषय-भोग) वैसे ही उत्पीड़न करते हैं, जैसे स्वादिष्ट फल वाले वृक्ष को पक्षी।

जहा दवग्गी पउरिन्धणे वणे समाख्यो नावसयं उवेइ।  
एविन्दियगी वि पगामभोइणो न बभ्यारिस्स हियाय कस्सई॥ ११॥

जैसे प्रचुर ईन्धन वाले वन में, प्रचण्ड वायु के साथ लगा हुआ दावानल उपशान्त नहीं होता, इसी प्रकार अतिमात्रा में भोजन करने वाले साधक की इन्द्रियाग्नि (इन्द्रियों से उत्पन्न हुई राग रूपी अग्नि) शान्त नहीं होती। किसी

भी ब्रह्मचारी के लिए प्रकाम भोजन कदापि हितकर नहीं होता।

### कामभोग : दुःखों के हेतु-

कामाणुगिद्विष्पभवं खु दुखं सब्वस्स लोगस्स सदेवगस्स।

जं काइयं माणसियं च किंचि तस्सऽन्तं गच्छइ वीतरागो॥ (19)

समग्र लोक के, यहाँ तक कि देवों के भी जो कुछ शारीरिक और मानसिक दुःख हैं, वे सब कामासक्ति से ही पैदा होते हैं। वीतराग आत्मा ही उन दुःखों का अन्त कर पाते हैं।

जहा य किंपागफला मणोरमा रसेण वणेण य भुज्जमाणा।  
ते खुड्डए जीविय पञ्चमाणा एओवमा कामगुणा विवागे॥ (20)

जैसे किम्पाकफल रस और रूपरङ्ग की दृष्टि से (देखने और) खाने में मनोरम लगते हैं; किन्तु परिणाम (परिपाक) में वे सोपक्रम जीवन का अन्त कर देते हैं, काम गुण भी विपाक (अन्तिम परिणाम) में ऐसे ही (विनाशकारी) होते हैं।

### महाभारत में वर्णित ब्रह्म-विद्या-

महाभारत के उद्योग पर्व में वर्णन पाया जाता है कि एक बाद विदुर जी धृतराष्ट्र को धार्मिक-तत्त्वों का उपदेश दे रहे थे। प्रसङ्गवश मृत्यु, अमृत, सनातन सत्य, ब्रह्म आदि गूढ़ विषयों की चर्चा उपस्थित हुई। तब विदुर जी ने इन विषयों के विशेषज्ञ सनत्सुजात ऋषि को स्मरण किया। स्मरण करने पर सनत्सुजात ऋषि वहाँ उपस्थित हुए। दोनों ने बहुत आदर-सत्कार पूर्वक ऋषि का स्वागत किया एवं प्रणाम किया।

विदुर ने शास्त्रोक्त विधि से पाया, अर्ध्य एवं मधुपूर्क आदि अर्पण/करके उनका स्वागत किया। इसके बाद जब वे सुखपूर्वक बैठकर विश्राम करने लगे, तब विदुर ने उनसे कहा-भगवान्! धृतराष्ट्र के हृदय में कुछ संशय है। जिसका समाधान मेरे द्वारा किया जाना उचित नहीं है। आप ही इस विषय का निरूपण करने योग्य हैं।

यं श्रुत्वायं मनुष्येन्द्रः सर्वदुःखातिगो भवेत्।  
लाभालाभौ प्रियद्वेष्यौ यथैनं न जरान्तकौ॥ (11)

विषहेरन् भयामर्षी क्षुत्पिपासे मदोद्वावौ।  
अरतिश्चैव तन्द्री च कामक्रोधौ क्षयोदमौ॥ (12)

जिसे सुनकर ये नरेश सब दुःखों से पार हो जाय और लाभ हानि, प्रिय-अप्रिय, जरा-मृत्यु, भय-आर्ष, भूख-प्यास, मद-ऐश्वर्य, चिन्ता-आलस्य, काम-क्रोध तथा अवनति-उन्नति-ये इन्हें कष्ट न पहुँचा सकें।

धृतराष्ट्र बोले - सनत्सुजात जी! मैं यह सुना करता हूँ कि मृत्यु है ही नहीं, ऐसा आपका सिद्धान्त है। साथ ही यह भी सुना है कि देवता और असुरों ने मृत्यु से बचने के लिए ब्रह्मचर्य का पालन किया था। इन दोनों में कौन सी बात यथार्थ है? सनत्सुजात ने कहा - राजन्! (इस विषय में दो पक्ष हैं) मृत्यु है और वह (ब्रह्मचर्य पालन रूप) कर्म से दूर होती है - यह एक पक्ष है और 'मृत्यु है ही नहीं' - यह दूसरा पक्ष है। परंतु यह बात जैसी है, वह मैं तुम्हें बताता हूँ, सुनो और मेरे कथन में संदेह न करना।

उभे सत्ये क्षत्रियैतस्य विद्धि, मोहान्मृत्युः सम्मतोऽयं कवीनाम्।  
प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि, तथा प्रमादमृतत्वं ब्रविमि॥ (4)

क्षत्रिय! इस प्रश्न के उक्त दोनों ही पहलुओं को सत्य समझो। कुछ विद्वानों ने मोहवश इस मृत्यु कि सत्ता स्वीकार की है; किन्तु मेरा कहना तो यह है कि प्रमाद ही मृत्यु है और अप्रमाद ही अमृत है। स्वतः उत्तम कर्तव्य पालन करने में आलस्य या अनादर भाव अथवा दूषित भावना को प्रमाद कहते हैं।

प्रमादाद् वै असुराः पराभवन्न प्रमादाद् ब्रह्मभुताः सुराश्च।  
नैव मृत्युव्यधि इवाति जन्तुन्, न ह्यस्य रूपमुपलभ्यते हिं॥ (5)

प्रमाद के ही कारण असुरगण (आसुरी सम्पत्ति वाले) मृत्यु से पराजित हुए और अप्रमाद से ही देवगण (देवी सम्पत्ति वाले) ब्रह्मस्वरूप हुए। यह निश्चय है कि मृत्यु व्याघ्र के समान प्राणियों का भक्षण नहीं करती, क्योंकि उसका कोई रूप देखने में नहीं आता।

यमं त्वेके मृत्युमतोऽन्यमाहु - रात्मावसन्नमृतं ब्रह्मचर्यम्।  
पितृ लोके राज्यमनुशास्ति देव; शिवः शिलानामाशिवोऽशिवानाम्॥(6)

कुछ लोग इस प्रमाद से भिन्न 'यम' को मृत्यु कहते हैं और हृदय से दृढ़ता पूर्वक पालन किये हुए ब्रह्मचर्य को ही अमृत मानते हैं। यमदेव पितृलोक में राज्य-शासन करते हैं। वे पुण्यात्माओं के लिए मंगलमय और पापियों के लिए अमंगलमय हैं।

अस्यादेशामिभः सरते नाराणां, क्रोधं प्रमादो लोभरूपश्च मृत्युः।  
अहंगतेनैव चरन् विभागान्, न चात्मनो यौगमुपैति कश्चित्॥ (7)

इन यम की आज्ञा से ही क्रोध, प्रमाद और लोभरूपी मृत्यु मनुष्यों के विनाश में प्रवृत्त होती है। अहंकार के वशीभूत होकर विपरीत मार्ग पर चलता हुआ कोई भी मनुष्य परमात्मा का साक्षात्कार नहीं कर पाता।

ते मोहितास्तद्वरो वर्तमाना, इतः प्रेतास्तत्र पुनः पतन्ति।  
ततस्तान् देवा अनुविल्पवन्ते, अतो मृत्युर्मरणाख्यामुपैति॥ (8)

मनुष्य (क्रोध, प्रमाद और लोभ से) मोहित होकर अहंकार के अधीन हो इस लोक से जाकर पुनः-पुनः, जन्म-मरण के चक्कर में पड़ते हैं। मरने के बाद उनके मन, इन्द्रिय और प्राण भी साथ जाते हैं। शरीर से प्राणरूपी इन्द्रियों को वियोग होने के कारण मृत्यु 'मरण' संज्ञा को प्राप्त होती है।

कर्मोदये कर्मफलानुरागा-स्तत्रानुयान्ति न तरन्ति मृत्युम्।  
सदर्थयोगानवगमात् समन्तात्, प्रवर्तते भोगयोगेन देही॥ (9)

प्रारब्ध कर्म का उदय होने पर कर्म के फल में आसक्ति रखने वाले लोग (देह त्याग के पश्चात्) परलोक का अनुगमन करते हैं; इसलिए वे मृत्यु को पार नहीं कर पाते। देहाभिमानी जीव परमात्मसाक्षात्कार के उपाय को न जानने से विषयों के उपभोग के कारण सब और (नाना प्रकार की योनियों) में भटकता रहता है।

तद् वै महामोहनमिन्द्रियाणां, मिथ्यार्थ योगस्य गतिर्हनित्या।  
मिथ्यार्थ योगामिहतान्तरात्मा, स्मरन् पास्ते विषयान् समन्तात्॥ (20)

इस प्रकार विषयों को जो भोग है, वह अवश्य ही इन्द्रियों को महान् मोह में डालने वाला है और इन झूठे विषयों में राग रखने वाले मनुष्य की उनकी ओर प्रवृत्ति होनी स्वाभाविक है। मिथ्या भोगों में आसक्ति होने से जिसके अन्तः करण की ज्ञान शक्ति नष्ट हो गयी है, वह सब और विषयों का ही चिन्तन करता हुआ मन ही मन आस्वादन करता है।

अभिध्या वै प्रथमं हन्ति लोकान्, कामक्रोधावनुगृह्णाश पश्चात्।  
एते बालान् मृत्यवे प्राययन्ति, धीरास्तु धैर्येण तरन्ति मृत्युम्॥ (11)

पहले तो विषयों का चिन्तन ही लोगों को मार डालता है। इसके बाद वह काम और क्रोध को साथ लेकर पुनः जल्दी ही प्रहर करता है। इस प्रकार

ये विषय चिन्तन (काम और क्रोध) ही विवेकहीन मनुष्यों को मृत्यु के निकट पहुँचाते हैं; परन्तु जो स्थिर बुद्धिवाले पुरुष हैं वे धैर्य से मृत्यु के पार हो जाते हैं।

सोऽभिध्यायन्त्रितान् निहन्या, दनादरोणाप्रतिबुध्यमानः।  
नैनं मृत्युर्मृत्युरिवाति भूत्वा, एवं विद्वान् योनिनिहन्ति कामान्॥(12)

(अतः जो मृत्यु को जीतने की इच्छा रखता है), उसे चाहिये कि परमात्मा का ध्यान करके विषयों को जो तुच्छ मानकर उन्हें कुछ भी न गिनते हुए उनकी कामनाओं को उत्पन्न होते ही नष्ट कर डाले। इस प्रकार जो विद्वान् विषयों कि इच्छा को मिटा देता है, उसको (साधारण प्राणियों की) मृत्यु कि भाँति मृत्यु नहीं मारती (अर्थात् जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है)।

कामानुसारी पुरुषः कामाननु विनश्यति।

कामान् व्युदस्य धनुते यत्किंचित् पुरुषो रजः॥ (13)

कामनाओं के पीछे चलने वाला मनुष्य कामनाओं के साथ ही नष्ट हो जाता है, परन्तु ज्ञानी पुरुष कामनाओं का त्याग कर देने पर जो कुछ भी जन्म-मरण रूप दुखः है, उन सब को नष्ट कर देता है।

तमोऽप्रकाशो भूताना नरकोऽयं प्रहश्यते।

मुहृन्त इव धावन्ति गच्छन्तः श्वभ्रवत् सुखम् ॥ (14)

काम ही समस्त प्राणियों के लिये मोहक होने के कारण तमोमय और अज्ञान रूप है तथा नरक के समान दुःखदायी देखा जाता है। जैसे मद्यपान से मोहित हुए पुरुष चलते-चलते गङ्ढे की ओर दौड़ पड़ते हैं, जैसे ही कामी पुरुष भोगों में सुख मानकर उनकी ओर दौड़ते हैं।

अमूढवृत्तः पुरुषस्येह कुर्यात्, कि वै मृत्युस्तार्ण इवास्थ व्याध।

अमन्यमानः क्षत्रिय किंचिदन्यन्नाधीयीत निर्णदन्निवास्य चायुः॥ (15)

जिसके चित्त कि वृत्तीयाँ विषय होँगी से मोहीत नहीं हुई है, उस ज्ञानी पुरुष का इस लोक में तिनको के बनाये हुए व्याध के समान मृत्यु क्या बिगाड़ सकती है? इसलिए राजन्! विषय भोगों के मूल कारण रूप अज्ञान को नष्ट करने कि इच्छा से दूसरे किसी भी सांसारिक पदार्थ को कुछ भी न गिनकर उसका चिन्तन त्याग देना चाहिए।

सक्रोधलोभौ मोहवान्नतरात्मा, स वै मृत्युस्त्वच्छरीरे य एषः।  
एवं मृत्युं जायमानं विदित्वा, ज्ञाने तिष्ठान् न बिमेतीह मृत्योः।  
विनश्यते विषये तस्य मृत्युर्मृत्योर्यच्चा विषयं प्राप्यं मृत्यः॥ (16)

यह तुम्हारे शरीर के भीतर जो अन्तरात्मा है, मोह के वशीभूत होकर यही, क्रोध, लोभ (प्रमाद) और मृत्युरूप हो जाता है। इस प्रकार मोह से होने वाली मृत्यु को जानकर जो ज्ञाननिष्ठ हो जाता है। जैसे मृत्यु के अधिकार में आया हुआ मरणधर्म मनुष्य।

धृतराष्ट्र बोले - द्विजातियों के लिए यज्ञों द्वारा जिन पवित्रतम सनातन एवं श्रेष्ठ लोकों की प्राप्ति बतायी गई है। यहाँ वेद उन्हीं को परम पुरुषार्थ कहते हैं। इस बात को जानने वाला विद्वान् उत्तम कर्मों का आश्रय क्यों न ले।

एवं ह्यविद्वानुपयाति तत्र, तन्नार्थजातं च वदन्ति वेदाः।  
अनीह आयाति परं परात्पा, प्रयाति मार्गेण निहत्य मार्गान्॥ (18)

सनत्सुजात ने कहा - राजन्! अज्ञानी पुरुष इस प्रकार भिन्न-भिन्न लोकों में गमन करता है तथा वेद कर्म के बहुत से प्रयोजन भी बताते हैं, परन्तु जो निष्काम पुरुष है, वह ज्ञान मार्ग के द्वारा अन्य सभी मार्गों का बाध करके परमात्मस्वरूप होता हुआ ही परमात्मा को प्राप्त होता है। धृतराष्ट्र बोले - इस जगत् में कुछ लोग ऐसे हैं जो धर्म का आचरण नहीं करते हैं तथा कुछ लोग उसका आचरण करते हैं, अतः धर्म पाप के द्वारा नष्ट होता है। या धर्म ही पाप को नष्ट करता है।

उभयमेव तत्रोपयुज्यते फलं धर्मस्यैवेतरस्य च॥ (23)

सनत्सुजात ने कहा - राजन्! धर्म और पाप दोनों के पृथक्-पृथक् फल होते हैं और उन दोनों का ही उपभोग करना पड़ता है।

तस्मिन् स्थितो वाष्पुभयं हि नित्यं, ज्ञानेन विद्वान् प्रतिहन्ति सिद्धम्।  
तथान्यथा पुण्यमुपैति देही, तथागतं पापमुपैति सिद्धम्॥ (24)

किन्तु परमात्मा में स्थित होने पर विद्वान् पुरुष उस (परमात्मा के) ज्ञान द्वारा अपने पूर्वकृत पाप और पुण्य दोनों का नाश कर देता है, यह बात सदा प्रसिद्ध है। यदि ऐसी स्थिति नहीं हुई तो देहाभिमानी मनुष्य कभी पुण्यफल को प्राप्त करता है। कभी क्रमशः प्राप्त हुए पूर्वोपार्जित पाप के फल का अनुभव करता है।

गत्वोभयं कर्मणा युज्येतेऽस्थिर, शुभस्य पापस्थ सचामि कर्मणा।  
धर्मेण पाप प्रणुदतीह विद्वान्, धर्मो बलीयानिति तस्य सिद्धिः॥ (25)

इस प्रकार पुण्य और पाप के जो स्वर्ग-नरकस्वरूप दो अस्थिर फल हैं, उनका भोग करके वह (इस जगत् में जन्म ले) पुनः तदनुसार कर्मों में लग जाता है। किन्तु कर्मों के तत्वों को जानने वाला पुरुष निष्कामधर्मरूप कर्म के द्वारा अपने पूर्व पाप का यहाँ ही नाश कर देता है। इस प्रकार धर्म ही अत्यन्त बलवान् है। इसलिए निष्काम भाव से धर्मचिरण करने वालों को समयानुसार अवश्य सिद्धि प्राप्त होती है।

यथा स्वं वान्तमश्नाति श्वा वै नित्यमभूतये।  
एवं ते वान्तमश्नन्ति स्ववीर्यस्योपासेवनात्॥ (33)

जैसे कुत्ता अपना वमन किया हुआ भी खा लेता है, उसी प्रकार जो, अपने (ब्राह्मणत्व के) प्रभाव का प्रदर्शन करके जीविका चलाते हैं, वे ब्राह्मण वमन का भोजन करने वाले हैं और इससे उनकी सदा ही अवनति होती है।

नित्यमज्ञातवर्या मे इति मन्येत ब्राह्मणः।  
ज्ञातीनां तु वसन् मध्ये तं विदुब्रह्मिणं बुधाः॥ (34)

जो कुटुम्बीजनों के बीच में रहकर भी अपनी साधना को उनसे सदा गुप्त रखने का प्रयत्न करता है, ऐसे ब्राह्मणों को ही विद्वान् पुरुष ब्राह्मण मानते हैं।

अश्रान्तः स्यादनादाता सम्मतो निरूपद्रवः।  
शिष्टो न शिष्टवत् स स्याद् ब्राह्मणा ब्रह्मवित् कविः॥ (38)

जो कर्तव्य - पालन में कमी थकना नहीं, दान नहीं लेता, सत्यपुरुषों में सम्मानित और उपद्रवरहित है तथा शिष्ट होकर भी शिष्टता का विज्ञापन नहीं करता, वही ब्राह्मण ब्रह्मवेत्ता एवं विद्वान् है।

अनादेये मानुषे वित्ते आद्या दैवे तथा क्रतौ।  
ते दुर्धर्षा दुष्प्रकम्प्यास्तान् विधान् ब्रह्मणस्तनुम्॥ (39)

जो लौकिक धन कि दृष्टि से निर्धन होकर भी दैवी सम्पत्ति तथा यज्ञ उपासना आदि से सम्पन्न हैं, वे दुर्धर्ष हैं और किसी भी विषय से चलायमान नहीं होते। उन्हें ब्रह्म की साक्षात् मूर्ति समझना चाहिए।

सर्वान् स्विष्टकृतो देवान् विद्याद् य इह कश्चन।  
न समानो ब्रह्मणस्य तस्मिन् प्रयतते स्वयम्॥ (40)

यदि कोई इस लोक में अभीष्ट सिद्ध करने वाले सम्पूर्ण देवताओं को जान ले, तो भी वह ब्रह्मवेत्ता के समान नहीं होता; क्योंकि वह तो अभीष्ट फल की सिद्धि के लिए ही प्रयत्न कर रहा है।

यमप्रयतमानं तु मानयन्ति स मानितः।  
न मान्यमानो मन्येत न मान्यमाभिसंज्वरेत्॥ (41)

जो दूसरों से सम्मान पाकर भी अभियान न करे और सम्मानिय पुरुष को देखकर जले नहीं तथा प्रयत्न न करने पर भी विद्वान् लोग जिसे आदर दें, वही वास्तव में सम्मानित है।

लोकः स्वभाववृत्तिर्हि निमेषोन्येषवत् सदा।  
विद्वांसो मानयन्तीय इति मन्येत मानितः॥ (42)

जगत् में जब विद्वान् पुरुष आदर दें, तब सम्मानित व्यक्ति को ऐसा मानना चाहिए कि आँखों को खोलने मीचने के समान अच्छे लोगों कि यह स्वाभाविक वृत्ति है। जो आदर देते हैं।

अधर्मनिपुणा मुढा लोके मायाविशारदाः।  
व मान्य मानवियन्ति मान्या नाम व मानितः॥ (43)

किंतु इस संसार में जो अधर्म में निपुण, छल-कपट में चतुर और माननीय पुरुषों का अपमान करने वाले मूढ़ मनुष्य हैं, वे आदरणीय व्यक्तियों का भी आदर नहीं करते।

न वै मानं च मौनं च सहितौ वसतः सदा।  
अयं हि लोको मानस्य असौ मौनस्य तद् विदुः॥ (44)

यह निश्चित है, कि मान और मौन सदा एक साथ नहीं रहते; क्योंकि मान से इस लोक में सुख मिलता है और मौन से परलोक में। ज्ञानीजन इस बात को जानते हैं।

श्रीः सुखस्येह संवासः सा चापि परिपन्थिनी।  
ब्राह्मी सुदुर्लभा श्रीर्ही प्रज्ञाहीनेन क्षत्रिय॥ (45)

राजन! लोक में ऐश्वर्यरूपा लक्ष्मी सुख का घर मानी गयी है, पर वह

भी (कल्याण मार्ग में) लुटेरों कि भाँति विध्न डालने वाली हैं, किंतु ब्रह्मज्ञानमयी लक्ष्मी प्रज्ञाहीन मनुष्य के लिए सर्वथा दुर्लभ है।

द्वाराणि तस्चेह वदन्ति सन्तो, बहुप्रकाराणि दुराधराणि।  
सत्यार्जवे हीर्दयशौचविद्या, यथा न मोहप्रतिबोधनानि॥ (46)

संत पुरुष यहाँ उस ब्रह्मज्ञानमयी लक्ष्मी कि प्राप्ति के अनेकों द्वारा बतलाते हैं, जो किसी मोह मो जगाने वाले नहीं हैं तथा जिनको कठिनता से धारण किया जाता है। उनके नाम हैं- सत्य, सरलता, लज्जा, दम, शौच और विद्या।

यतौ न वेदा मनसा सहैन, मनुप्रविशन्ति ततोऽयमौनम्।  
यत्रोत्थितो वेदशब्दस्तथायं, स तन्मत्वेन विभाति राजन्॥ (21)

सनत्सुजात ने कहा - राजन! जहाँ मन के सहित वाणीरूप वेद नहीं पहुँच पाते, उस परमात्मा का नाम ही मौन हैं, इसलिए वही मौनरूप है वैदिक तथा लौकिक शब्दों का जहाँ से प्रादुर्भाव हुआ है, वे परमेश्वर तन्मयतापूर्वक ध्यान करने से प्रकाश में आते हैं।

ज्ञानेन चात्मानमुपैति विद्वानथान्यथा वर्ग फलानुकांक्षी।  
अस्मिन् कृतं तत् परिगृह्य सर्वममुत्र भूत्वा फुरेति मार्गम्॥ (9) महाभारत

तब वह विद्वान् पुरुष ज्ञान से परमात्मा को प्राप्त होता है; किन्तु इसके विपरीत जो भोगाभिलाषी पुरुष धर्म, अर्थ और कामरूप त्रिवर्गफल की इच्छा रखते हैं, वे इस लोक में किए हुए सभी कर्मों को साथ ले जाकर उन्हें परलोक में भोगते हैं तथा भोग समाप्त होने पर पुनः संसार मार्ग में लौट आते हैं।

क्रोधः कामो लोभमोहो विधित्सा, कृपासूये मानशोकौ स्पृहा च।  
ईर्ष्या ज्ञासा च मनुष्यदेषा, वर्ज्यः सदा द्वादशैतै नरणाम्॥ (16) महाभारत

काम, क्रोध, लोभ, मोह, चिकीर्षा, निर्दयता, असूया, अभिमान, शोक, स्पृहा, ईर्ष्या और निन्दा-मनुष्यों में रहने वाले ये बारह दोष मनुष्यों के लिए सदा ही त्याग देने योग्य हैं।

एकैकः पर्युपास्ते ह मनुष्यान् मनुजर्जभ।  
लिप्समानोऽन्तरं तेषां मृगाणामिव लुब्धकः॥ (17) महाभारत

नरश्रेष्ठ! जैसे व्याघ्र मृगों को मारने का छिद्र (अवसर) देखता हुआ उनकी टोह में लगा रहता है, उसी प्रकार इनमें से एक-एक दोष मनुष्यों का

छिद्र देखकर उन पर आक्रमण करता है।

विकर्त्थनः स्पृहयालुर्मनस्वी, ब्रिभत् कोपं चपलोऽरक्षणश्च।  
एतान् पापाः षण्णरा पापधर्मान्, प्रकुर्वते तो प्रसन्नः सुदुर्गो॥ (18)

अपनी बहुत बड़ाई करने वाले, लोलुप तनिक से भी अपमान को सहन न करने वाले, निरन्तर क्रोधी, चञ्चल और आश्रितों की रक्षा नहीं करने वाले-ये छः प्रकार के मनुष्य पापी हैं। महान् संकट में पड़ने पर भी ये निर्द होकर इन पाप-कर्मों का आचरण करते हैं।

सम्भोगसंविद् विषमोऽतिमानी, दत्तानुतापी कृपणो बलीयान्।  
वर्गप्रशंसी वनितासु द्वेष्टा, एते परे सप्त नृशंसवर्गाः॥ (19)

सम्भोग में ही मन लगाने वाले, विषमता रखने वाले, अत्यन्त मानी, दान देकर पश्चाताप करने वाले, अत्यन्त कृपण, अर्थ और काम की प्रशंसा करने वाले तथा स्त्रियों के देषी-ये सात और पहले छः कुल तेरह प्रकार के मनुष्य नृशंसवर्ग (क्रूर-समुदाय) कहे गये हैं।

## ब्रह्मज्ञान के लिए 12 ब्रत

धर्मश्च सत्यं च दमस्तपश्च, आमात्सर्ये ह्रीस्तिक्षानसूया।  
यज्ञश्च दानं च धृतिः श्रुतं च, ब्रतानि वै द्वादश ब्राह्मणस्य॥ (20)

धर्म, सत्य, इन्द्रियनिग्रह तप, मत्सरता का अभाव, लज्जा, सहनशीलता, किसी के दोष न देखना, यज्ञ करना, दान देना, धैर्य और शास्त्र ज्ञान-ये ब्रह्मण के बारह ब्रत हैं।

यस्त्वेतेभ्यः प्रभवेद द्वादशभ्यः, सर्वामयीमा पृथिवींसि शिष्यात्।  
त्रिभिर्द्वाभ्यामेकतो वार्थितोय, एतस्य स्वमस्तीति स वेदिंतव्यः॥ (21)

जो इन बारह ब्रतों (गुणों) पर अपना प्रभुत्व रखता है, वह इस सम्पूर्ण पृथ्वी के मनुष्यों को अपने अधीन कर सकता है। इनमें से तीन, दो या एक गुण से भी जो युक्त है, उसके पास सभी प्रकार का धन है, ऐसा समझना चाहिए।

दमस्त्यागोऽप्रमादश्च एतेष्वमृतमाहितम्।  
तानि सत्यमुखान्याहुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः॥ (22)

दम, त्याग और अप्रमाद-इन तीन गुणों में अमृत का वास है। जो

मनीषी (बुद्धिमान्) ब्राह्मण हैं, वे कहते हैं कि इन गुणों का मुख सत्यस्वरूप परमात्मा की ओर है। (अर्थात् ये परमात्मा की प्राप्ति के साधन हैं।)

दमा हृष्टादशगुणः प्रतिकूलं कृताकृते।

अनृतं चाभ्यसूया च कामार्थो च तथा स्पृहाः॥ (23)

क्रोधः शोकस्तथा तृष्णा लोभः पैशुन्य मेव च।

मत्सरश्च विहिंसा च परितापस्तथारतिः॥ (24)

अपस्मारश्चातिवादस्तथा सम्भावनाऽऽत्मति।

एतैर्विमुक्तो दोषैर्यः स दान्तः सद्विरुच्यते॥ (25)

दम अठारह गुणों वाला है। (निमांकित अठारह दोषों के त्याग को ही अठारह गुण समझना चाहिए)- कर्तव्य-अकर्तव्य के विषय में विपरीत धारण, असत्य-भाषण गुणों में दोष दृष्टि, स्त्रीविषयक कामना, सदा धनोपार्जन में ही लगे रहना, भोगेच्छा, क्रोध, शोक, तृष्णा, लोभ, चुगली करने की आदत, डाह, हिंसा, सन्ताप, शास्त्र में अरति, कर्तव्य की विस्मृति, अधिक बकवाद और अपने को बड़ा समझना इन दोषों से जो मुक्त है, उसी को सत्पुरुष दान्त (जितेन्द्रिय) कहते हैं।

मदोऽष्टादशदोषः स्यात् त्यागो भवति षड् विविधा।

विपर्यया: स्मृता एते मददोषा उदाहृताः॥ (26)

श्रेयांस्तु षड्विधित्यागस्तृतीयों दुष्करो भवेत्।

तेन दुःखं तरत्येव भिन्नं तस्मिन् जितं कृते॥ (27)

मद में अठारह दोष हैं; ऊपर जो दम के विपर्यय सूचित किए गए हैं, वे ही मद के दोष बताए गए हैं। त्याग छः प्रकार का होता है, वह छहों प्रकार का त्याग अत्यन्त उत्तम है; किन्तु इनमें तीसरा अर्थात् कामत्याग बहुत कठिन है, इसके द्वारा मनुष्य त्रिविध दुःखों को निश्चय ही पार कर जाता है। काम का त्याग कर देने पर सब कुछ जीत लिया जाता है।

## -ब्रह्मज्ञान के लिए 6 प्रकार के त्याग-

श्रेयांस्तु षड्विधस्त्यागः श्रियं प्राप्य न हृष्यति।

इष्टापूर्ति द्वितीयं स्यान्नित्य वैराग्य योगतः॥ (28)

कामत्यागश्च राजेन्द्र स तृतीय इति स्मृतः।

अप्यवाच्यं वदन्त्येतं स तृतीयो गुणः स्मृतः॥ (29)

राजेन्द्र! छः प्रकार का जो सर्वश्रेष्ठ त्याग है, उसे बताते हैं। लक्ष्मी को पाकर हर्षित न होना, यह प्रथम त्याग है; यज्ञ-होमादि में तथा कुएँ, तालाब और बगीचे आदि बनाने में धन खर्च करना दूसरा त्याग है और सदा वैराग्य से युक्त रहकर काम का त्याग करना-यह तीसरा त्याग कहा गया है। महर्षि लोग इसे अनिर्वचनीय मोक्ष का उपाय कहते हैं। अतः यह तीसरा त्याग विशेष गुण माना गया है।

**त्यक्त्रद्वयैर्यद् भवति नोपयुक्तश्च कामतः।  
न च द्रव्यैस्तद् भवति नोपयुक्तश्च कामतः॥ (30)**

(वैराग्यपूर्वक) पदार्थों के त्याग से जो निष्कामता आती है, वह स्वेच्छा पूर्वक उनका उपभोग करने से नहीं आती। अधिक धन सम्पत्ति के संग्रह से निष्कामता सिद्ध नहीं होती तथा कामना पूर्ति के लिए उसका उपभोग करने से भी काम का त्याग नहीं होता।

**न च कर्मस्वसिद्धेषु दुःखं तेन च न गल्येत्।  
सर्वेरेव गुणैर्युक्तो द्रव्यवानपि यो भवेत्॥ (31)**

जो पुरुष सब गुणों से युक्त और धनवान् हो, यदि उसके किये हुए कर्म सिद्ध न हों तो उनके लिए दुःख एवं ग्लानि न करें।

**अप्रिये च समुत्पन्ने व्यथां जातु न गच्छति।  
इष्टान् पुत्रांश्च दारांश्च न याचेत् कदाचन्॥ (32)**

कोई अप्रिय घटना हो जाए तो कभी व्यथा को न प्राप्त हो (यह चौथा त्याग है)। अपने अभीष्ट पदार्थ-स्त्री पुत्रादि की कभी याचना न करें (यह पाँचवा त्याग है)।

### -अप्रमाद के 8 गुण-

**अहंते याचमानय प्रदेयं तच्छुभं भवेत्।  
अप्रमादी भवेदेतैः स चाष्टगुणो भवेत्॥ (33)  
सत्यं ध्यानं समाधानं चोद्यं वैराग्यमेव च।  
अस्तेयं ब्रह्मचर्यं च तथा संग्रहमेव च॥ (34)**

सुयोग्य याचक के आ जाने पर उसे दान करे (यह छठा त्याग है)। इन सबसे कल्याण होता है। इन त्यागमय गुणों से मनुष्य अप्रमादी होता है। उस अप्रमाद के भी आठ गुण माने गए हैं- सत्य, ध्यान, अध्यात्मविषयक विचार,

समाधान, वैराग्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

**एवं दोषा मदस्योक्तास्तान् दोषान् परिवर्जयेत्।  
तथा त्यागोऽप्रमादश्च स चाष्टगुणो मतः॥ (35)**

ये आठ गुण त्याग और अप्रमाद दोनों के ही समझने चाहिए। इसी प्रकार जो मद के अठाह दोष पहले बताए गए हैं, उनका सर्वथा त्याग करना चाहिए। प्रमाद के आठ दोष हैं, उन्हें भी त्याग देना चाहिए।

### -प्रमाद के आठ दोष-

**अष्टौ दोषाः प्रमादस्य तान् दोषान् परिवर्जयेत्।  
इन्द्रियेभ्यश्च पञ्चभ्यो मनसश्चैव भारत।  
अतीतानागतेभ्यश्च मुक्त्युपेतः सुखी भवेत्॥ (36)**

भारत! पाँच इन्द्रियाँ और छठा मन-इनकी अपने-अपने विषयों में जो भोगबुद्धि से प्रवृत्ति होती है, छह तो ये प्रमाद विषयक दोष हैं और भूतकाल की चिन्ता तथा भविष्य की आशा-दो दोष ये हैं। इन आठ दोषों से मुक्तपुरुष सुखी होता है।

### -सत्य ही सार्वभौम एवं अमृत-

**सत्यात्मा भव राजेन्द्र सत्ये लोका प्रतिष्ठिताः।  
तांस्तु सत्यमुखानाहुः सत्ये ह्यमृतमाहितम्॥ (37)**

राजेन्द्र! तुम सत्यस्वरूप हो जाओ, सत्य में ही सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित है वे दम, त्याग और अप्रमाद आदि गुण भी सत्यस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति कराने वाले हैं: सत्य में ही अमृत की प्रतिष्ठा है।

**निवृतेनैव दोषेण तपोब्रतमिहाचरेत्।  
एतद् धातृकृतं वृत्तं सत्यमेव सतां ब्रतम्॥ (38)  
दोषे रेतैवियक्तस्तु गुणेरैतैः समन्वितः।  
एतत् समद्वमत्यार्थं तपो भवति केवलम्॥ (39)  
यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र संक्षेपात् प्रब्रतीमि ते।  
एतत् पापहरं पुण्यं जन्म मृत्युजरापाहम्॥ (40)**

दोषों को निवृत करके ही यहाँ तप और ब्रत का आचरण करना चाहिए, यह विधाता का बनाया हुआ नियम है। सत्य ही श्रेष्ठ पुरुषों का ब्रत है।

मनुष्य को उपर्युक्त दोषों से रहित और गुणों से युक्त होना चाहिए। ऐसे पुरुष का ही विशुद्ध तप अत्यन्त समृद्ध होता है। राजन! तुमने जो मुझसे पूछा है, वह मैंने संक्षेप में बता दिया। यह तप जन्म, मृत्यु और वृद्धावस्था के कष्ट को दूर करने वाला, पापहारी तथा परम पवित्र है।

**मनसान्यस्य भवति वाचान्यस्याथ कर्मणा।  
संकल्पसिद्धः पुरुषः संकल्पानधितिष्ठति॥ (46)**

किसी का यज्ञ मन से, किसी का वाणी से तथा किसी का क्रिया के द्वारा सम्पादित होता है। सत्यसंकल्प पुरुष संकल्प के अनुसार ही लोकों को प्राप्त होता है।

**ज्ञान रूपी प्रकाश :**

**लगम्यं यन्मृगाङ्कस्य दुर्भेद्यं यद्वेरपि।  
तद्दुर्बोधोद्धतं ध्वान्तं ज्ञान भेद्यं प्रकीर्तितम्॥ (11)**

जिस मिथ्याज्ञान रूप उत्कट अन्धकार को चन्द्रमा तथा सूर्य भी नष्ट नहीं कर सकता ऐसा दुर्भेद्य है, वह मिथ्यात्वान्धकार ज्ञान से ही नष्ट किया जाता है। अर्थात् ज्ञान ही उसको भेद सकता है।

**ज्ञान रूपी अमृतः:**

**दुःख ज्वलनतप्तानां संसारोग्रमरुस्थले।  
विज्ञानमेव जन्तूनां सुधाम्बु प्रोणनक्षमः॥ (12)**

इस संसाररूपी उग्रमरुस्थल में दुःख रूप अग्नि से तप्ताय मान जीवों को यह सत्यार्थ ज्ञान ही अमृतरूप जल से तृप्त करने को समर्थ है। भावार्थ - संसार के दुःख मिटाने को सम्यज्ञान ही समर्थ है।

**ज्ञान रूपी सूर्यः :**

**निरालोकं जगत्सर्वमज्ञान तिमिराहतम्।  
तावदास्ते उदेत्युच्चैन यावज्ज्ञान भास्करः॥ (13)**

जब तक ज्ञानरूपी सूर्य का उदय नहीं होता तभी तक यह समस्त जगत् अज्ञानरूपी अन्धकार के आच्छादित है। अर्थात् ज्ञानरूपी सूर्य का उदय होते ही अज्ञानरूपी अन्धकार नष्ट हो जाता है।

**इन्द्रिय एवं मन को वश करने वाला ज्ञान :**

**बोध एव दृढः पाशो हृषीक मृगबन्धने।  
गारुडश्व महामन्त्रः चित्त भोगी विनिग्रहे॥ (14)**

इन्द्रियरूपी मृगों को बांधने के लिए ज्ञान ही एक दृढ़ फांसी है, अर्थात् ज्ञान के बिना इन्द्रियाँ वश नहीं होती तथा चित्तरूपी सर्प का निग्रह करने के लिये ज्ञान ही एक गारुड महामंत्र है। अर्थात् मन भी ज्ञान से ही वशीभूत होता है।

**कर्मनाशक एवं तत्त्व प्रकाशक : ज्ञान -**

**निशातं विद्धि निर्स्त्रिं भवाराति निपातने।  
तृतीयमथवा नेत्रं विश्वतत्व प्रकाशने॥ (15)**

ज्ञान ही तो संसार रूप शत्रु को निपात (नष्ट) करने के लिये तीक्ष्ण खड्ग है और ज्ञान ही समस्त तत्त्वों को प्रकाशित करने के लिये तीसरा नेत्र है।

**ज्ञान प्राप्तार्थे योगिगण की तपस्या -**

**क्षीणतन्द्रा जितक्लेशा वीतसङ्गा स्थिराशयाः।  
तस्यार्थेऽमीतप स्यन्ति योगिनः कृतनिश्चयाः॥ (16) ज्ञानार्णव**

प्रमाद को क्षीण करने वाले, क्लेशों को जीतने वाले, परिग्रह रहित, स्थिर आशय वाले ये योगिगण उस ज्ञान की प्राप्ति के लिये यत्न पूर्वक तपस्या करते हैं। भावार्थ - ऐसे ज्ञानी मुनि ही इस ज्ञान को पाते हैं।

**भेद विज्ञान द्वारा कर्म बन्धनों से मुक्ति-**

**वेष्टयत्याऽत्मनात्मानमज्ञानी कर्म बन्धनैः।  
विज्ञानी मोचयत्येव प्रबुद्धः समयान्तरे॥ (17)**

अज्ञानी पुरुष आपको अपने से ही कर्म रूपी बन्धनों से वेष्ठित कर लेता है। और जो भेद विज्ञानी है वह किसी काल में सावधान होकर अपने को कर्म बन्धनों से छुड़ा लेता है।

## भेद विज्ञानी द्वारा अर्द्ध क्षण में पापों का भस्म -

यज्जन्म कोटि भिः पापं जयत्यज्जन्तपो बलात्।  
ताद्विज्ञानी क्षणाद्देन दहत्य तुल विक्रमः॥ (18)

जो अज्ञानी है वह तो करोड़ों जन्म लेकर तप के प्रभाव से पाप को जीतता है। और उसी पाप को अतुल्य पराक्रम वाला भेद विज्ञानी आधे क्षण में ही भस्म कर देता है।

## अज्ञान पूर्वक तप से कर्म बन्धन -

अज्ञान पूर्विका चेष्टा यतेर्यस्यात्र भूतले।  
स बन्धात्यात्मनात्मानं कुर्वन्नपि तपश्चिरं॥ (119)

जिस यति की इस पृथ्वी पर अज्ञान पूर्वक चेष्टा (क्रिया) है वह चिरकाल तपस्या करता हुआ भी अपने आत्मा को अपने ही कृत्य से बाँध लेता है। क्योंकि अज्ञान पूर्वक तप बन्ध का ही कारण है।

## ज्ञान पूर्वक आचरण से कर्म बन्ध नहीं :-

ज्ञान पूर्वमनुष्ठानं निःशेषं यस्य योगिनः।  
न तस्य बन्धमायाति कर्म कस्मिन्नपि क्षणे॥ (20)

## ज्ञान पूर्वक आचरण से कर्म बन्ध नहीं:-

जिस मुनि के समस्त आचरण ज्ञान पूर्वक होते हैं उसको किसी काल में भी कर्म बन्ध नहीं होता है। भावार्थ - अज्ञानी को तो बहुत काल तिष्ठने वाला कर्म बंध होता है, किन्तु ज्ञानी को कभी नहीं होता है।

यत्र बालश्वरत्य स्मिन्पथि तत्रैव पण्डितः।  
बालः स्वमति बध्नाति मुच्यते तत्वविद् ध्रुवम्॥ (21)

जिस मार्ग में अज्ञानी चलते हैं उसी मार्ग में विद्वज्जन चलते हैं, परन्तु अज्ञानी तो अपने आत्मा को बांध लेता है और तत्वज्ञानी बन्ध रहित हो जाता है। यह ज्ञान का माहात्म्य है।

## ज्ञानाराधना के लिए प्रेरणा -

दुरित तिमिर हंसं मोक्षलक्ष्मी सरोजं  
मदन भुजंग मन्त्रं चित्तमातङ्गं सिंहं।

व्यसन घन समीरं विश्वतत्वैक दीपं

विषयशफरजालं ज्ञानमाराधय त्वं॥ (22) ज्ञानार्णव

हे भव्य जीव! तू ज्ञान का आराधन कर। क्योंकि ज्ञान पाप रूपी तिमिर (अंधकार को) नष्ट करने के लिए सूर्य के समान है और मोक्ष रूपी लक्ष्मी के निवास करने के लिये कमल के समान है तथा काम रूपी सर्प के कीलने को मंत्र के समान और मन रूपी हस्ती को सिंह के समान है तथा व्यसन - आपदा कष्टरूपी मेघों को उड़ाने के लिये दीपक के समान है तथा विषय रूपी मत्स्यों को पकड़ने के लिये जाल के समान है।

## ज्ञान रूपी प्रकाश से भय-नाश -

अस्मिन्संसार कक्षे यमभुजग विषाक्रान्त निःशेष सत्त्वे  
क्रोधाद्युत्तङ्गं शैले कुटिल गति सरित्पात सन्तान भीमे।  
मोहन्धा: संचरन्ति स्खलन विधुरिताः प्राणिनस्ताव देते  
यावद्विज्ञान भानुर्भवभयदमिदं नोच्छिनत्यन्ध कारम्॥ (23)

जब तक इस संसार रूपी वन में यह सम्यज्ञान रूपी सूर्य संसार रूप भय के देने वाले अज्ञान अन्धकार का उच्छेद नहीं करता तब तक ही मोह से अंधे हुए प्राणी अपने स्वरूप उत्तम मार्ग से छूटने से गिरते पड़ते पीड़ित हुए चलते हैं। कैसा है यह संसार रूपी वन जिसमें कि पाप रूपी सर्प के विष से समस्त प्राणी व्याप्त हैं अर्थात् दबे हैं; तथा क्रोधादिक पाप रूपी बड़े-बड़े ऊँचे पर्वत हैं। और वक्र गमन वाली दुर्गतिरूपी नदियों में गिरने से उत्पन्न हुए सन्ताप से अतिशय भयानक है। ज्ञानरूप सूर्य के प्रकाश होने से किसी प्रकार का दुःख व भय नहीं रहता। इस प्रकार सम्यज्ञान का वर्णन किया।

## मोक्ष मार्ग में सम्यज्ञान की भूमिका-

अथागम ज्ञान तत्वार्थ श्रद्धान संयतत्वानां यौगपद्येऽप्या-  
त्मज्ञानस्य मोक्ष मार्ग साधकतमत्वं द्योतयति-

अब आगमज्ञान - तत्वार्थ श्रद्धान - संयतत्व का युगपतत्व होने पर भी, आत्मा ज्ञान मोक्ष मार्ग का साधकतम (उत्कृष्ट साधक) है, यह बतलाते हैं-

जं अण्णाणी कम्मं खवेदि भवसय सहस्स कोडीहिं।

तं णाणी तिहिं गुतो खवेदि उस्सास मेत्तेण (238) प्र.सा.

परमात्मा ज्ञान रहित पुरुष को ज्ञानावरणादि अनेक कर्म सौ हजार करोड़ पर्यायों को करके क्षय करता है, मन-वचन-काय की क्रियाओं के निरोध कर स्वरूप में लीन परमात्मा भाव का अनुभवी ज्ञाता उन ज्ञानावराणादि असंख्यात लोकमात्र कर्मों को एक उच्छावास मात्रकाल में ही क्षय कर लेता है।

निर्विकल्प समाधिरूप निश्चय रत्नत्रायात्मक विशेष भेद ज्ञान को न पाकर अज्ञानी जीव करोड़ों जन्मों में जिस कर्म बन्ध को क्षय करता है। उस कर्म को ज्ञानी जीव तीन गुणि में गुप्त होकर एक उच्छावास में नाश कर डालता है। इसका भाव यह है कि बाहरी पदार्थों के सम्बन्ध में जो सम्यग्ज्ञान परमागम के अभ्यास के बल से होता है तथा उसका श्रद्धान होता है और श्रद्धान ज्ञानपूर्वक व्रत आदि का चारित्र पाला जाता है, इन तीन रूप रत्नत्रय के आधार से सिद्ध परमात्मा के स्वरूप में सम्यक् श्रद्धान और सम्यक् ज्ञान होकर उनके गुणों को स्मरण करना इसी के अनुकूल जो आचरण (चारित्र) होता है। फिर भी इसी प्रकार इन तीनों के आधार से जो उत्पन्न होता है। निर्मल अखण्ड एक ज्ञानाकार रूप अपने ही शुद्धात्मा में जाने रूप सविकल्पज्ञान तथा “शुद्धात्मा ही ग्रहण करने योग्य है” ऐसी रुचि सो विकल्परूप सम्यग्दर्शन और इसी ही आत्मा के स्वरूप में रागादि विकल्पों से रहित हो सविकल्प चारित्र उत्पन्न होते हैं फिर भी इन तीनों के प्रसाद से विकल्प रहित समाधिरूप निश्चय रत्नत्रयरूप विशेष स्वसंवेदन ज्ञान उत्पन्न होता है। उस ज्ञान को न पाकर अज्ञानी जीव करोड़ों जन्मों में जिस कर्म का क्षय करता है उस कर्म को ज्ञानी जीव पूर्वोक्त ज्ञान गुण के सद्भाव में मन, वचन, काय की गुणि में लवलीन होकर एक श्वास मात्र में लीला मात्र से ही नाश कर डालता है। इससे यह बात जानी जाती है कि परमागम ज्ञान, तत्वार्थ श्रद्धान संयमीपना इस भेद रत्नत्रय के होने पर भी अभेद या निश्चय रत्नत्रय स्वरूप स्वसंवेदन ज्ञान की ही मुख्यता है।

**जेणं तच्चं विबुज्जेज्ज जेणं चित्तं णिरुज्जदि।**  
जेण अत्ता विबुज्जेज्ज तं णाणं जिण सासणे (267) मूलाचार

जिससे सत्त्व का बोध होता है, जिससे मन का निरोध होता है, जिससे आत्मा शुद्ध होती है जिन शासन में उसका नाम ज्ञान है। जिसके द्वारा वस्तु का यथार्थ स्वरूप जाना जाता है, जिसके द्वारा मन का व्यापार रोका जाता है अर्थात् मन अपने वश में किया जाता है और जिसके द्वारा आत्मा शुद्ध हो

जाती है, जीव वीतराग हो जाता है, वह ज्ञान जिनशासन में प्रमाण है, अर्थात् वही ज्ञान मोक्ष को प्राप्त करने के लिये उपाय भूत है। वह ज्ञान संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय और अकिञ्चित्कर से रहित है।

**जेण रागा विरज्जेज्ज जेण सेएसु रज्जदि।**

**जेण मित्तिं प्रभावेज्ज तं णाणं जिण सासणे (269)**

जिसके द्वारा जीव राग से विरक्त होता है, जिसके द्वारा मोक्ष में राग करता है, जिसके द्वारा मैत्री को भावित करता है जिन शासन में वह ज्ञान कहा गया है। जिसके द्वारा जीव राग-स्नेह से और काम-क्रोध आदि से विरक्त होता है पराङ्मुख होता है, और जिसके द्वारा मोक्ष में अनुरक्त होता है, जिसके मैत्री भावना अर्थात् द्वेष का अभाव करता है, जिन शासन में वही ज्ञान है। तात्पर्य यह हुआ।

अतत्व में तत्व बुद्धि, अदेव में देवता का अभिप्राय, जो आगम नहीं है उसमें आगम की बुद्धि, अचारित्र में चारित्र की बुद्धि और अनेकान्त में एकान्त बुद्धि जहाँ तक है वहाँ तक अज्ञान है।

**णाणी गच्छदि णाणी वंचदि णाणी णवं च णादियदि।**

**णाणेण कुणदि चरणं तहमा णाणे हवे विणओ (588)**

ज्ञानी जानता है, ज्ञानी छोड़ता है और ज्ञानी नवीन कर्म को नहीं ग्रहण करता है, ज्ञान से चारित्र का पालन करता है इसलिये ज्ञान में विनय होवे।

**यस्माज्ज्ञानी गच्छति मोक्षं जानाति वा गतेज्ञानगमन प्राप्त्यर्थेकत्वात्, यस्यामाच्च ज्ञानी वंचित परिहरति पापं यस्माच्च ज्ञानी नवं कर्म नाददाति च वध्यते कर्मभिरिति यस्माच्च ज्ञानेन करोति चरणं चारित्रं तस्माच्च ज्ञाने भवति विनयः कर्तव्य इति।**

जिस हेतु से ज्ञानी मोक्ष को प्राप्त करता है अथवा जानता है गति अर्थ वाले धातु ज्ञान, गमन और प्राप्ति अर्थ वाले होते हैं ऐसा व्याकरण का नियम है। अतः यहाँ गच्छति का जानना और प्राप्त करना अर्थ किया है जिससे ज्ञानी पापी की वंचना-परिहार करता है और नवीन कर्मों से नहीं बंधता है तथा ज्ञान से चारित्र को धारण करता है इसलिये ज्ञान में विनय करना चाहिये।

**णाणं सिक्खदि णाणं गुणेदि णाणं परस्स उवदिसदि।**

**णाणेण कुणदि णाणं णाणं णाणविणीदो हवदि एसो (368) मूलाचार**

ज्ञान शिक्षित करता है, ज्ञानी गुणी बनता है, ज्ञान पर को उपदेश देता है, ज्ञान से न्याय किया जाता है। इस प्रकार यह जो करता है वह ज्ञान से विनयी होता है।

ज्ञान विद्या को प्राप्त करता है। ज्ञान अवगुण को गुण रूप में परिवर्तित करता है। ज्ञान पर को उपदेश का प्रतिपादन करता है। ज्ञान से न्याय-सत्यप्रवृत्ति करता है ऐसा जो करता है वह ज्ञान विनीत होता है।

**न हि सम्यग्व्यपदेशं चरित्रमज्ञानं पूर्वकं लभते।**

**ज्ञानान्तरमुक्तं चारित्राराधनं तस्मान् (38) पुरुषार्थं सिद्ध्युपायं**

अज्ञानपूर्वक चारित्र सम्यक् चारित्र नहीं होता है अतः (इसलिये) सम्यग्ज्ञान के अनन्तर चारित्राराधना का कथन किया गया है।

**“णाणम्मि असंतंमि चरितं वि न विज्जए” व्यवहार भाष्य 1/2/711**

जहाँ ज्ञान नहीं, वहाँ चारित्र भी नहीं रहता।

**“सब्वं जगुज्जोयकरं णाणं, णाणेण णज्जए चरणं।” व्य.भा.1/2/611**

ज्ञान विश्व के समस्त रहस्यों को प्रकाशित करने वाला है। ज्ञान से ही मनुष्य को कर्तव्य का बोध होता है।

**“सुयस्त आराहणयाए ण अन्नाणं खवेई।” उत्तराध्ययन 29/59**

ज्ञान की आराधना करने से आत्मा अज्ञान का नाश करती है।

**“विज्ञाणेणं समागम्म धर्मसाहणमिच्छिउं।” उत्तराध्ययन 23/31**

विज्ञान के द्वारा धर्म के साधनों का उचित निर्णय करना चाहिये।

**पढमं नाणं तओ दया एवं चिट्ठई सब्वसंजए।**

अन्नाणी किं काही किंवा बाहिई छेय पावगं (दशवैकालिक 4-10)

पहले सम्यग्ज्ञान होना चाहिये उसके उपरान्त सम्यग्ज्ञान के अनुसार दया पालन करना चाहिये अर्थात् सम्यग्चारित्र पालन करना चाहिये। इसी प्रकार चारित्र सम्पूर्ण संयमियों को आचरण करने योग्य है। अज्ञानी क्या कभी इस प्रकार श्रेय (आचरणीय) पापात्मक अश्रेय को जान सकता है अर्थात् बिना ज्ञान करणीय-अकरणीय का विवेक नहीं होने से अज्ञानी यथार्थ चारित्र पालन नहीं कर सकता है। इसलिये कहा है-

**“बिना जानते दोष गुणन को कैसे तजिये गहिये।”**

सम्यग्ज्ञान की महानता का वर्णन करते हुए अमृत कलश में बताते हैं कि-

**भेद विज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।**

**तस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन (7)**

जो अनन्तानन्त सिद्ध हुए हैं वे सब भेद विज्ञान से सिद्ध हुए हैं। जो बंधे हुए हैं वे भेद विज्ञान के अभाव के कारण बंधे हुए हैं। इसलिये कविवर दौलतराम जी ने छहडाल में कहा है-

ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारण।

इहि परमामृत जन्म जरा मृत्यु रोग निवारण॥ चतुर्थ ढाल (4)

### सा विद्या या विमुक्तये

विद्या चाविद्यां च चस्तद् वेदोभयं-सह।

**अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते (11)**

कर्म और अकर्म का वास्तविक रहस्य समझने में बड़े-बड़े बुद्धिमान् पुरुष भी भूल कर बैठते हैं (गीता 4/26) इसी कारण कर्म-रहस्य से अनभिज्ञ ज्ञानाभिमानी मनुष्य कर्म को ब्रह्मज्ञान में बाधक समझ लेता है और अपने वर्णश्रिमोचित आवश्यकर्तव्य कर्मों का त्याग कर देते हैं; परन्तु इस प्रकार के त्याग से उन्हें त्याग का यथार्थ फल-कर्म बन्धन से छुटकारा नहीं मिलता (गीता 277)। इसी प्रकार ज्ञान (अकर्मावस्था-नैष्कर्म्य) का तत्व न समझने के कारण मनुष्य अपने को ज्ञानी तथा संसार से ऊपर उठे हुए मान लेते हैं। अतः वे या तो अपने को पुण्य-पाप से अलिप्त मानकर मनमाने कर्मचिरण में प्रवृत्त हो जाते हैं, या कर्मों को मानरूप समझकर उन्हें छोड़ देते हैं और आलस्य, निद्रा तथा प्रमाद में अपने दुर्लभ मानव-जीवन के अमृत्यु समय को नष्ट कर देते हैं। इन दोनों प्रकार के अन्यों से बचने का एकमात्र उपाय कर्म और ज्ञान के रहस्य को साथ-साथ समझकर उनका यथायोग्य अनुष्ठान करना ही है। इसीलिये इस मंत्र में यह कहा गया है कि जो मनुष्य इन दोनों के तत्व को एक ही साथ भलि-भाँति समझ लेता है; वह अपने वर्णश्रिम और परिस्थिति के अनुरूप शास्त्र विहित कर्मों का स्वरूपतः त्याग नहीं करता, बल्कि उनमें कर्तापिन के अभिमान से तथा रागद्वेष और फल कामना से रहित होकर उनका यथायोग्य आचरण करता है। इससे उसकी

जीवन यात्रा भी सुखपूर्वक चलती है और इन भाव से कर्मनिष्ठान करने के फलस्वरूप उसका अन्तःकरण समस्त दुर्गुणों एवं विकारों से रहित होकर अत्यन्त निर्मल हो जाता है और भगवत्कृपा से वह मृत्युमय संसार से सहज ही तर जाता है। इस कर्म साधन के साथ-ही-साथ विवेक-वैराग्य सम्पन्न होकर निरन्तर बहुविचाररूप ज्ञानभ्यास करते रहने से ही परमेश्वर के यथार्थ ज्ञान का उदय होने पर वह शीघ्र ही परब्रह्म परमेश्वर को साक्षात् प्राप्त कर लेता है। (पृ. 33 ईशादि नौ उपनिषद्)

### आत्मज्ञान ही वरणीय

न वित्तेन तर्यणीयो मनुष्यो

लप्स्यामहे वित्तमद्रक्षम चेत्त्वा।

जीविष्यामो चावदीशिष्यसि त्वं

वरस्तु ये वरणीयः स एव। (27)

आप जानते ही हैं, धन से मनुष्य कभी तृप्त नहीं हो सकता आगमें घी ईंधन डालने से जैसे आग जोरो से भड़कती है, उसी प्रकार धन और भोगों की प्राप्ति से भोग-कामना का और भी विस्तार होता है। वहाँ तृप्ति कैसी। वहाँ तो दिन-रात अपूर्णता और अभाव की अग्नि में ही जलना पड़ता है। ऐसे दुःख मय धन और भोगों को कोई भी बुद्धिमान पुरुष नहीं माँग सकता। मुझे अपने जीवन निर्वाह के लिये जितने धन की आवश्यकता होगी, उतना तो आपके दर्शन से अपने-आप प्राप्त हो जाएगा। रही दीर्घ जीवन की बात से जब तक मृत्यु के पद पर आपका शासन है, तक तक मुझे मरने का भी भय क्यों होने लगा। अतएव किसी भी दृष्टि से दूसरा वर माँगना उचित नहीं मालूम होता इसलिये मेरा प्रार्थनीय तो वह आत्मतत्त्वविषयक वर ही है। मैं लौटा नहीं सकता है।

यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो

यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत्।

याऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो

नान्यं तस्मान्नचिकेता वर्णीते (29)

नचिकेता कहता है- हे यमराज! जिस आत्मतत्त्व-सम्बन्धी महान् ज्ञान के विषय में लोग यह शङ्खा करते हैं कि मरने के बाद आत्म का अस्तित्व रहता है या नहीं उसके सम्बन्ध में निर्णयात्मक जो आपका अनुभूत ज्ञान हो

मुझे कृपापूर्वक उसी का उपदेश कीजिये यह आत्मा तत्व सम्बन्धी वर अत्यन्त गूढ़ है - यह सत्य है पर आपका शिष्य यह नचिकेता इसके अतिरिक्त दूसरा कोई वर नहीं चाहता।

### पण्डित मन्यमाना की दुर्दशा

अविद्यायामन्तरे वर्तमानः:

स्वयं धीरा: पण्डितमन्यमानाः।

दन्तम्यमानाः परियति मूढा

अन्धेनैवा नोयमाना यथान्धाः (5) पृ.86

जब अन्धे मनुष्य को मार्ग दिखाने वाला भी अन्धा ही मिल जात है, तब जैसे वह अपने अभीष्ट स्थान पर नहीं पहुँच पाता, बीच में ही ठोकरे छाता भटकता है और काँटे-कंकड़ों से बिधकर या गहरे गड्ढे आदि में गिरकर अथवा किसी चट्टान, दीवाल और पशु आदि से टकराकर नाना प्रकार के कष्ट भोगता है वैसे ही उन मूर्खों को भी पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि विविध दुःख पूर्ण योगियों में एवं नरकादि में प्रवेश करके अनन्त जन्मों तक अनन्त यन्त्रणाओं को भोग करना पड़ता है। जो अपने-आपको ही बुद्धिमान् और विद्वान् समझते हैं, विद्या बुद्धि के मिथ्याभिमान में शास्त्र और महापुरुषों के वचनों की कुछ भी परवाह न करके उनकी अवहेलना करते हैं और प्रत्यक्ष सुखरूप प्रतीत होने वाले भोगों को भोग करने में तथा उनके उपार्जन में ही निरन्तर संलग्न रहकर मनुष्य जीवन का अमूल्य समय व्यर्थ नष्ट करते रहते हैं।

न साम्परायः प्रतिभाति बालं

प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेने मूढम्।

अयं लोको नास्ति पर इति मानी

पुनः पुनर्वशमापद्यते मे। (6)

इस प्रकार मनुष्य-जीवन के महत्व को नहीं समझने वाला अभिमानी मनुष्य सांसारिक भोग-सम्पत्ति का प्राप्ति के साधनरूप धनादि के मोह से मोहित हुआ रहता है; अतएव भोगों में आसक्त होकर वह प्रमाद पूर्वक मनमाना आचरण करने लगता है। उसे परलोक नहीं सुझता। उसके अन्तःकरण में इस प्रकार के विचार उत्पन्न ही नहीं होते कि मरने के बाद मुझे अपने समस्त कर्मों को फल भोगने के लिए बाध्य होकर बारंबार विविध योनियों

में जन्म लेना पड़ेगा। वह मूर्ख समझता है कि बस जो कुछ यहाँ प्रत्यक्ष दिखायी देता है यही लोक है इसी की सत्ता है। यहाँ जितना विषय-सुख भोग लिया जाय, उतनी ही बुद्धिमानी है। इसके आगे क्या है। परलोक को किसने देखा है। परलोक तो लोगों कि कल्पना मात्र है इत्यादि। इस प्रकार की मान्यता रखने वाला मनुष्य बारंबार यमराज के चंगुल में पड़ता है और वे उसके कर्मानुसार उसे नाना योनियों में ढकेलते रहते हैं उसके जन्म-मरण का चक्र नहीं छूटता।

### आत्म तत्त्व की दुर्लभता :

**श्रवणायापि बहुमिर्यो न लभ्यः**

**शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।**

**आश्रयो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा-**

**५५श्रयो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः। (7)**

नचिकेता! आत्मतत्त्व कोई साधारण सी बात नहीं। जगत् में अधिकांश मनुष्य तो ऐसे हैं - जिनको आत्मकल्याण की चर्चातिक सुनने को नहीं मिलती है। वे ऐसे वातावरण में रहते हैं कि जहाँ प्रातःकाल जागने से लेकर रात्रि को सोने तक केवल विषय चिन्तन में दूवा रहता है उनके मन में आत्मतत्त्व सुनने-समझने की कभी कल्पना ही नहीं आती और भुले भटके यदि ऐसा कोई प्रसङ्ग आ जाता है तो उन्हें विषय सेवन से अवकाश नहीं मिलता है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो सुनना-समझना उत्तम समझकर सुनते तो हैं परन्तु उनके विषयाभिभूत मन में उसकी धारणा नहीं हो पाती अथवा मन्द बुद्धि के कारण वे उसे समझ नहीं पाते। जो तीक्ष्ण बुद्धि पुरुष समझ लेते हैं। उनमें भी ऐसे आश्चर्यमय महापुरुष कोई विरले ही होते हैं जो उस आत्मतत्त्व का यथार्थ रूप से वर्णन करने वाले समर्थ वक्ता हो एवं ऐसे पुरुष भी कोई एक ही होते हैं जिन्होंने आत्मतत्त्व को प्राप्त करके जीवन की सफलता सम्पन्न की हो, और भली-भाँति समझाकर वर्णन करने वाले सफल-जीवन अनुभवी आत्मदर्शी आचार्य के द्वारा उपदेश प्राप्त करके उसके अनुसार मनन निनिध्यासन करते-करते तत्त्व का साक्षात्कार करने वाले पुरुष भी जगत् में कोई विरले ही होते हैं। अतः इसमें सर्वत्र ही दुर्लभता है।

### आत्मज्ञान की दुर्लभता का कारण

**त नरेणावरेण प्रोक्त एष**

**सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः।**

**अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति**

**अणीयान् ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात्। (8)**

प्रकृतिपर्यन्त जो भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्व है, यह आत्मतत्त्व उससे भी सूक्ष्म है। यह इतना गहन है कि जब तक इसे यथार्थ रूप से समझने वाले कोई महापुरुष नहीं मिलते, तब तक मनुष्य का इसमें प्रवेश पाना अत्यन्त कठिन है।

अल्पज्ञ - साधारण ज्ञान वाले मनुष्य यदि इसे बतलाते हैं और उसके अनुसार यदि कोई विविध प्रकार से इसके चित्तका अभ्यास करता है तो उसका आत्मज्ञान रूपी फल नहीं होता; आत्मतत्त्व तनिकसा भी समझ में नहीं आता। दूसरे से सुने बिना केवल अपने आप तर्क वितर्कयुक्त विचार करने से भी यह आत्म तत्त्व समझ में नहीं आ सकता। अतः सुनना आवश्यक है; पर सुनना उनसे है जो इसे भली-भाँति जानने वाले महापुरुष हों। तभी तर्क से सर्वथा अतीत इस गहन विषय की जानकारी हो सकती है।

### आत्मतत्त्व जिज्ञासु शिष्य दुर्लभ

**नैषा तर्केण मतिअपनेया**

**प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ।**

**यां त्वमापः सत्य धृतिर्बतासि**

**त्वादृङ् नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा (9)**

नचिकेता की प्रशंसा करते हुए यमराज फिर कहते हैं कि हे प्रियतम! तुम्हारी इस पवित्र मति-निर्मल निष्ठा को देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। ऐसी निष्ठा तर्क से कभी नहीं मिल सकती। यह तो तभी उत्पन्न होती है तब भगवत्कृपा से किसी महापुरुष सङ्ग प्राप्त होता है और उनके द्वारा लगातार परमात्मा के महत्व का विशद विवेचन सुनने का सौभाग्य मिलता है। ऐसी निष्ठा ही मनुष्य को आत्मज्ञान के लिये प्रयत्न करने में प्रवृत्त करती है। इतना प्रलोभन दिये जाने पर भी तुम अपनी निष्ठा पर दृढ़ रहे, इससे यह सिद्ध है कि वस्तुतः तुम सही धारणा से सम्पन्न हो नचिकेता! हमें तुम-जैसे ही पूछने वाले जिज्ञासु मिला करें।

## परमात्मा - जिज्ञासा

अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मदन्यत्रास्मात्कृताकृतात्।

अन्यत्र भूताच्च भव्याश्च यत्यत्यश्यसि तद्वद् (14)

नचिकेता कहता है - भगवन् आप यदि मुझपर प्रसन्न हैं, तो धर्म और अधर्म के सम्बन्ध से रहित, कार्य-कारण रूप प्रकृति से पृथक् एवं भूत वर्तमान और भविष्यत् इन सबसे भिन्न जिस परमात्मतत्व को आप जानते हैं उसे मुझ को बताइये।

### परमात्म-स्वरूप

ज जातने मिथ्यते वा विपश्चि

न्नायं कुतच्चिन्न बभूव कश्चित्।

अजो नित्यः शाश्रतोऽयं पुराणो

न हन्यते हन्यमाने शरीरे (18) पृ. 95

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम्

उभौ तो न विजानीतो नाय हन्ति हन्यते (19)

यमराज यहाँ आत्म के शुद्ध स्वरूप का और उनकी नित्यता का निरूपण कहते हैं क्योंकि जब तक साधक को अपनी नित्यता और निर्विकरता का अनुभव नहीं हो जाता एवं जब तक अपने को शरीर आदि अनित्य वस्तुओं से भिन्न नहीं समझ लेता तब तक इन अनित्य पदार्थों से वैराग्य होकर उसके अंतःकरण में नित्य तत्त्व की अभिलाषा उत्पन्न नहीं होती। उसको यह दृढ़ अनुभूति होनी चाहिए कि जीवात्मा नित्य चेतन ज्ञान स्वरूप है अनित्य विनाशी जड़ शरीर और भोगों से वास्तव में इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह अनादि और अनन्त है न तो इसका कोई कारण है और न कार्य ही अतः यह जन्म-मरण से सर्वथा रहित, सदा, एक सा सर्वथा, निर्विकार है। शरीर के नाश से इसका नाश नहीं होता है। जो लोग इसे मारने वाले या मरने वाला मानते हैं वे वस्तुतः आत्म स्वरूप को जानते ही नहीं, वो सर्वथा भ्रान्त हैं। उनकी बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिए। वस्तुतः आत्मा न तो किसी को मारता है और न इसे कोई मार सकता है। साधक को शरीर और भोगों की अनित्यता और अपने आत्मा की नित्यता पर विचार करके, इन अनित्य भोगों से सुख की आशा का त्यांग करके सदा अपने साथ रहने वाले नित्य सुखरूप पर ब्रह्म पुरुषोत्तम को प्राप्त करने का अभिलाषी बनना चाहिए।

अणोरणीयान्महतो महीया

नात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्

तमक्रतुः पश्यति वीतशोको

धातु प्रसादान्महिमानमात्मनः (20)

इससे पहले जीवात्मा के शुद्ध स्वरूप का वर्णन किया गया है। उसी को इस मंत्र में (जन्तु) नाम देकर उसकी वद्वावस्था व्यक्त की गयी है भाव यह कि यद्यपि पर ब्रह्म पुरुषोत्तम उस जीवात्मा के अत्यन्त समीप जहाँ यह स्वयं रहता है वहाँ हृदय में छिपे हुए हैं तो भी यह उसकी ओर नहीं देखता मोहवश भोगों में भुला रहता है। इसी कारण यह 'जन्तु' है मनुष्य-शरीर पाकर भी कीट-पतङ्ग आदि तुच्छ प्राणियों की भाँति अपना दुर्लभ जीवन व्यर्थ नष्ट कर रहा है। जो साधक पूर्वांक विवेचन के अनुसार अपने आपको नित्य चेतन स्वरूप समझकर सब प्रकार के भोगों की कामना से रहित और शोकरहित हो जाता है वह परमात्मा की कृपा से यह अनुभव करता है कि परब्रह्म पुरुषोत्तम अणु से भी अणु और महान् से भी महान्-सर्वव्यापी है और इस प्रकार उनकी महिमा को समझकर उनका साक्षात्कार कर लेता है। (यहाँ 'धातु प्रसादात्' का अर्थ 'परमेश्वर की कृपा' किया गया है। विष्णुसहस्रनाम में भी 'अनादिनिधनो धाता विधता धातुरूप्तमः-' 'धातु' को भगवान् का एक नाम माना गया है)

### सदुदेश्य की पूर्ति = शान्ति की प्राप्ति के सूत्र

- आचार्य कनकनन्दी

- \* अन्धविश्वास-पक्षपात-संकीर्णता-पूर्वाग्रह-दुराग्रह से रहित, पवित्रभाव (क्रोध-मान-माया-लोभ-भय-कामादि भाव रहित) सहित आचरण ही समता है।
- \* समतामय विचार ही सही विचार है, समतामय निर्णय ही सही निर्णय (न्याय, कानून, फैसला) है, समतामय कथन ही सही कथन है तथा समतामय लेखन ही सही लेखन है एवं आचरण ही सही आचरण/चारित्र है/नैतिक आचरण है/शालीन-भद्र व्यवहार है।
- \* हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह को क्रोध-मान-माया-लोभ से प्रेरित होकर मन-वचन-काय से तथा कृत-कारित-अनुमोदना से नहीं करना भी समता/सदाचार है।

## अध्याय - 10

### ज्ञानी - योगी का लक्षणः अनासक्ति

यश्चिद्वर्पणविन्यस्त - समताऽचारचारुधीः।  
क्व नाम स परद्रव्ये - उनुपयोगिनि मुहृत्तिः॥ (पृ.32) ज्ञानसार

ज्ञानरूपी दर्पण में स्थापित समस्त ज्ञानादि पाँच आचारों द्वारा जो सुन्दर बुद्धि वाला है, ऐसा योगी अनुपयोगी पर - द्रव्यों में आसक्त क्यों होगा।

One who has recognized and indentified his true 'self' in the mirror of knowledge acquired through the five rules of good conduct and rightenounsess is a ware of the maligned nature of everything material.such a yogi will never have fondness for the material world.

अज्ञानी अज्ञान में मग्न तो ज्ञानी ज्ञान में  
मज्जत्यज्जः किलाऽज्ञाने, विष्ठायामिव शूकरः।  
ज्ञानी निमज्जति ज्ञाने, मराल इव मानसे॥ (पृ. 33)

जिस प्रकार शूकर विष्ठा में मग्न होता है वैसे ही अज्ञानी अज्ञान में ही मग्न हो जाता है। जिस प्रकार हंस मान सरोवर में निमग्न होता है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष ज्ञान में ही निमग्न होते हैं।

Like a swine is attracted to his own spils, an ignorant person remains attached to his ignorance, while those attached to the knowledge of the 'Shrutas' remain entranced like the swans of 'Mansarovar' (The lake in paradise).

मोक्ष साधक ज्ञान ही उत्कृष्ट ज्ञान  
निर्वाणपदमध्येकं भाव्यते यन्मुहुर्मुहुः।  
तदेव ज्ञानमुत्कृष्टं, निर्बन्धो नास्ति भूयसा॥ (पृ.34)

एक मात्र मोक्ष साधक पद बारम्बार आत्मा द्वारा भावित होता है अर्थात् बार-बार चिन्तन किया जाता है वही ज्ञान परिपूर्ण है। ज्यादा ज्ञान का आग्रह नहीं है।

Even one who lacks formal education is true knower if his heart sincerely desires liberation and true knowledge. He needs no more.

### आत्मज्ञान से भिन्नज्ञान बुद्धि का अन्धत्व

स्वाभावलाभसंस्कार-कारणं ज्ञानमिष्यते।

ध्यान्ध्यमात्रमतस्त्वन्यत्, तथा चोक्तं महात्मना॥ (पृ. 35)

जो ज्ञान आत्म स्वभाव की प्राप्ति के संस्कार का कारण-भूत है, वही ज्ञान इच्छानीय है इसके अलावा जो भी पढ़ा जाता है वह तो बुद्धि का अंधत्व है। इसी प्रकार महात्मा पंतजलि ने भी कहा है।

The great sage patanjali confirms this that one that leads to the knowledge of the 'self' alons is true knowledge. Science is the knowledge of the world but the seges say that what should be desired is the knowledge of the self (self-realization). That which dose not enlighten the self is ignorance not knowledge.

वृथा वाद-विवाद करने वाले घाणी के बैल

वादाश्च प्रतिवादांश्च, वदन्तोऽनिश्चितांस्तथा।

तत्त्वान्त नैव गच्छन्ति, तिलपीलकवद् गतौ॥ (पृ.36 ज्ञानसार)

अनिश्चित अर्थ वाले वाद और प्रतिवाद करने वाले जीव आगे बढ़ने में घाणी के बैल की तरह तत्व निर्णय को प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

Pundits with little knowledge get embroiled in futile discussions and dogmas. Lacking in true knowledge they go round and round just like the yoked bull in an oil mill.

ज्ञान परिणत को कर्मबन्ध नहीं

जीवपरिणामहेदू कम्मत्तण पोगगला परिणमंति।

ण दु णाणपरिणदो पुण जीवो कम्मं समादियति॥(969) मूला.146

गाथार्थ - जीव के परिणाम के निमित्त से पुद्गल कर्मरूप से परिणमन करते हैं। ज्ञान-परिणत हुआ जीव तो कर्म ग्रहण करता नहीं है।

रूप, रस, गन्ध और स्पर्श वाले पुद्गल परमाणु जीव के परिणाम का निमित्त पाकर बालक, वृद्ध, युवा भाव से तथा नारकी, तिर्च, मनुष्य और देवपने के भाव से कर्म रूप से परिणमन करते हैं अर्थात् ये पुद्गल जीव के परिणाम के निमित्त से कर्मरूप परिणत हो जाते हैं। किन्तु यदि जीव ज्ञानपरिणत हो रहा है तब तो वह कर्मभाव से पुद्गलों को ग्रहण नहीं करता है। इसलिए चारित्र को ज्ञान-दर्शन पूर्वक ही भावित करना चाहिए। अर्थात् चारित्र-युक्त ज्ञानी जीव को कर्मों का बन्ध नहीं होता है।

## स्वाध्यायादि से संसार पार

णाणविणाणसंपण्णो ज्ञानज्ञन तवेजुदो।

कसायगारवुम्मुक्को संसार तरदे लहुं॥(970)

ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न एवं ध्यान, अध्ययन और तप से युक्त तथा कषाय और गौरव से रहित मुनि शीघ्र ही संसार को पार कर लेते हैं।

यथावस्थित वस्तु को जानने वाला ज्ञान है और चारित्र को विज्ञान कहा है। इन दोनों से समन्वित अथवा ज्ञान विशेष से परिणत हुए मुनि एकाग्र चिन्तानिरोधरूप ध्यान, वाचना, पृच्छना आदि क्रिया रूप अध्ययन एवं बारह प्रकार के तपों को करते हुए तथा कषाय और गौरव से रहित होकर शीघ्र ही भवसमुद्र से तिर जाते हैं। इसलिए रत्नत्रय ही सारभूत है।

## स्वाध्याय-युक्तता से लाभ

सज्जायं कुव्वंतो पंचिदिव्यसंपुडो तिगुत्तो य।

हवदि य एयगगमणो विणाएण समाहिओ भिक्खू॥(971)

विनय से सहित मुनि स्वाध्याय करते हुए पंचेन्द्रियों को संकुचित कर तीन-गुप्तियुक्त और एकाग्रमना हो जाते हैं।

दर्शन, विनय आदि विनयों से संयुक्त मुनि उत्तम शास्त्रों का अभ्यास और वाचना आदि करते हुए पंचेन्द्रियों को संवृत कर लेते हैं एवं तीन गुप्ति सहित हो जाते हैं तथा एकाग्रचित होकर ध्यान में तत्पर हो जाते हैं, इसलिए स्वाध्याय नाम का चारित्र प्रधान है क्योंकि उससे वे मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। अर्थात् विनयपूर्वक स्वाध्याय करते समय इन्द्रियों का और मन-वचन-काय का व्यापार रुक जाता है, अन्यत्र नहीं जाता है, उसी में तन्मय हो जाता है। अतः एकाग्रचिन्ता-निरोध रूप ध्यान का लक्षण घटित होने से यह स्वाध्याय मुक्ति का कारण है।

## स्वाध्यायः परमं तप

बारसविधहि य तवे सब्बंतरबाहिरे कुसलदिङ्गु।

ण वि अतिथि णवि य होहदि सज्जायसमं तवोकम्मं॥(972)

गणधर देवादि प्रदर्शित, बाह्य-अन्तरंग से सहित बारह प्रकार के तपों में स्वाध्याय समान तपः कर्म न है और न होगा ही।

तीर्थकर गणधर आदि देवों ने जिसका वर्णन किया है, जिसमें बाह्य और अभ्यन्तर छह-छह भेद हैं ऐसे बारह प्रकार के तपों में स्वाध्याय के सदृश अन्य कोई तपः कर्म न है और न होगी ही। अतः स्वाध्याय परमतप है, ऐसा समझकर निरन्तर उसकी भावना करना चाहिए।

## स्वाध्याय की भावना से श्रुतभावना।

सुई जहा ससुत्ता ण णस्सदि दु पमाद दोसेण।

एवं ससुत्तपुरिसो ण णस्सदि तहा पमाद दोसेण॥ (973)

जैसे धागे सहित सुई प्रमाद दोष से भी खोती नहीं है ऐसे ही सूत्र के ज्ञान से सहित पुरुष प्रमाद दोष से भी नष्ट नहीं होती है।

जैसे लोहे से बनी हुई सुई सूक्ष्म होती है फिर भी यदि वह सूत्र सहित अर्थात् धागे से पिरोई हुई है तो नष्ट नहीं होती है अर्थात् प्रमाद के निमित्त से यदि वह कूड़े-कचरे में गिर भी गयी है तो भी आँखों से दिख जाती है, मिल जाती है। उसी प्रकार से सूत्र सहित अर्थात् श्रुतज्ञान से समन्वित साधु भी नष्ट नहीं होता है, वह प्रमाद के दोष से भी संसार गर्त में नहीं पड़ता है। अभिप्राय यह है कि यद्यपि कोई साधु परमतप करने में समर्थ नहीं है। लेकिन यदि वह शठता रहित निरन्तर स्वाध्याय करता है तो वह कर्मों का क्षय कर देता है।

## सर्व दुःखहारी जिन वचन औषधि

जिणवयणमोसमिणं विषयसुहविरेयणं अमिदभूदं।

जरामरणवाहिवेयण खयकरणं सव्वदुक्खाणं॥ मूला. 843

यह जिनवचन औषधि ही है जो कि विषयसुखों का विरेचन करती है। अमृत-स्वरूप है, जरा, मरण और रोगों का तथा सर्व दुःखों का क्षय करती है।

यह जिन वचन ही एक औषधि है जो इन्द्रियों द्वारा प्राप्त सुखों का त्याग करने वाली है, सर्वग में सन्तर्पण का कारण होने से अमृत-रूप है, ज्वर आदि सर्व रोगों को तथा उनसे उत्पन्न हुए दुःखों को नष्ट करने वाली है। अर्थात् रोगादि कारण है और दुःख आदि कार्य हैं, ऐसे कार्य-कारण रूप सम्पूर्ण कर्मों को नष्ट करने में समर्थ है ऐसा अभिप्राय है।

**जिणवयणणिच्छिदमदीअ - विरमणं अवभुवेतिसपुरिसा।**  
**णय इच्छति अकिरियं जिणवयणवदिक्कमं कादुं॥(844)**

जिन-वचन में निश्चित बुद्धि रखनेवाले वे साधु विरतिभाव को धारण करते हैं किन्तु जिन-वचनों का उल्लंघन करके वे विरुद्ध क्रिया करना नहीं चाहते हैं।

सम्यक्त्व के विषयभूत पदार्थों में रुचि रखनेवाले वे धैर्यशाली साधु चारित्र का दृढ़ता से पालन करते हैं अथवा 'अपि मरणं' ऐसा पाठांतर है जिसका अर्थ यह है कि वे मरण भी स्वीकार कर लेते हैं किन्तु शास्त्र के प्रतिकूल आचरण नहीं करते हैं। अर्थात् शरीर में उत्पन्न हुई व्याधि को दूर करने के लिए जिनागम का उल्लंघन करके किंचित् मात्र भी अप्रासुक वस्तु का सेवन नहीं करते हैं, भले ही प्राण चले जावें किन्तु आगम विरुद्ध क्रिया नहीं करते हैं।

### **आत्मा का स्वरूप-अनन्तज्ञानानन्द**

अथैवमुद्गोधित श्रद्धधानो विनेयः पृच्छति स आत्मा कीदृश इति यो युष्मभिर्धातव्यतयोपदिष्टः पुमान् स किं स्वरूप इत्यर्थः गुरुराह-

**स्वसंवेदन सु व्यक्त स्तनुमात्रो निरत्ययः।**

**अत्यंत सौख्यवा दानात्मा लोकालोक विलोकनः। (21) इष्टो.96**

This soul can be adequately known by self-contemplation and is of the size of its body, immortal, of an exceedingly blissful nature and the knower of loka and Aloka!

यह आत्मा लोक एवं अलोक को प्रकाश करने वाला अनन्त अक्षय ज्ञानी है। जीवादि षट् द्रव्य से व्याप्त आकाश को लोक कहते हैं उससे भिन्न अनन्त आकाश अलोक कहते हैं। ऐसे लोक एवं अलोक को जानने वाला आत्मा है। इससे सांख्यमत का जो सिद्धान्त 'ज्ञान शून्य चैतन्य मात्रात्मा है। तथा योगमत के अनुसार जो बुद्धि आदि गुण से रहित पुरुष है का निरसन हुआ है। इससे बौद्धों का नैरात्मवाद विध्वंस हुआ। पुनः यह आत्मा अत्यन्त सौख्यवान् सुख सम्पन्न स्वभाव वाला है। इससे सांख्य तथा योगमत का निषेध हुआ। यह आत्मा जिस शरीर को प्राप्त करता है। उस शरीर में व्याप्त होने के कारण उस शरीर परिमाण हो जाता है। इससे इसका निरसन हो जाता है कि आत्मा वट कणिका मात्र है। पुनः यह आत्मा द्रव्यरूप से शाश्वतिक है।

इससे गर्भ से लेकर मरण तक ही जीव है ऐसा मानने वाला चार्वाकि मत का खण्डन हुआ।

**प्रश्नः:-** जो प्रमाण से सिद्ध है उसका गुणानुवाद-गुण कथन करना श्रेय है परन्तु आत्मा की सिद्धि प्रमाण से नहीं हुई अतः उसका कथन योग्य नहीं है?

**उत्तरः-** आचार्य कहते हैं कि आत्मा की सिद्धि स्व-संवेदन से सुव्यक्त है अर्थात् स्पष्ट रूप से सिद्ध है। तत्वानुशासन में कहा भी है- 'जो योगियों को स्वयं का स्वयं के द्वारा ज्ञेयपन और ज्ञातापना है उसे ही स्व संवेदन या आत्मा का अनुभव कहते हैं।' इसी प्रकार स्व संवेदन रूप प्रत्यक्ष प्रमाण से जो कि समस्त प्रमाण के लिए स्वरूप है उससे स्पष्टरूप से योनियों को एक देश से आत्मा की अनुभूति होती है।

**समीक्षा :-** आत्मा अमूर्तिक चैतन्यस्वरूप आनंद घनरूप है जिस प्रकार दीपक स्वयं प्रकाशित होता है एवं दूसरों को प्रकाशित करता है। इसी प्रकार आत्मा भी स्व चेतना के गुण के माध्यम से स्वयं को एवं दूसरों को भी प्रकाशित करता है, जानता है एवं अनुभव करता है। इस लिए श्लोक में कहा गया है कि आत्मा स्वसंवेदन से स्पष्ट रूप से जाना जाता है। आत्मा स्वतंत्र द्रव्य होने के कारण और द्रव्य उत्पाद व्यय से युक्त होते हुए भी ध्रौव्य होने के कारण आत्मा भी नित्य है। संसारी जीव जिस शरीर को प्राप्त करता है। संकोच विस्तार गुण के कारण आत्मा उस शरीर में पूर्णरूप से व्याप्त करके रहता है आत्मा का सर्वश्रेष्ठ गुण है अक्षय, अनन्त सुख। इस गुण के कारण ही जीव अन्य द्रव्य से श्रेष्ठ है। अनन्त ज्ञान के माध्यम से जीव समस्त लोक-अलोक को जानता है। इन सब विषयों का वर्णन प्रवचनसार आदि ग्रन्थों में विस्तारूप से किया गया है वहाँ से विशेष जिज्ञासु को अवलोकनीय है तथापि कुछ विषय यहाँ पर उद्धृत कर रहा हूँ।

**णाणं अप्पत्ति मदं वद्धृदि णाणं विणा ण अप्पाणं।**

**तम्हा णाण अप्पा अप्पा णाणं वा अण्णं वा॥ (29)**

(णाणं) ज्ञान गुण (अप्पत्ति) आत्मरूप है ऐसा (मदं) माना गया है, कारण कि (णाणं) ज्ञान गुण (अप्पाणं) आत्म द्रव्य के (विणा) विना अन्य किसी घर पर अपि द्रव्य में (ण-वद्धृदि) नहीं रहता है (तम्हा) इसलिए यह जाना जाता है कि किसी अपेक्षा से अर्थात् गुण गुणी की अभेद दृष्टि से (णाणं) ज्ञानगुण (अप्पा) आत्म रूप ही है किन्तु (अप्पा) आत्म (णाणं) ज्ञानगुण रूप

भी है, जब ज्ञान स्वभाव की अपेक्षा विचारा जाता है (अण्णंवा) तथा अन्य गुण रूप भी है। वस्तु अनेकान्तात्मक है अर्थात् प्रत्येक द्रव्य में अनेक गुण एक साथ अविरोध रूप में रहते हैं। जैसे अग्नि में दाहकत्व, प्रकाशकत्व, पाचकत्व आदि अनेक गुण एक साथ रहते हैं तो भी एक गुण दूसरे गुण रूप परिणमन नहीं करता है। अग्नि दाहकत्व गुण के कारण दहन करती है। पाचकत्व गुण के कारण पचाती है और प्रकाशकत्व गुण के कारण प्रकाश करती है। इसलिए अग्नि एक होते हुए भी तीनों गुण के कारण अलग-अलग है। (आध्यात्मिक मनौविज्ञान पृ. 96)

अग्नि तो तीनों रूप है। परन्तु एक-एक गुण पूर्ण अग्नि रूप नहीं है इसलिए प्रकाशकत्व आदि गुण कथंचित् अग्नि रूप है कथंचित् नहीं है इसी प्रकार आत्मा एवं आत्मा एवं आत्मा के गुणों के बारे में जानना चाहिए। आत्मा में ज्ञान, दर्शन, वीर्य आदि अनन्त गुण है तथापि आत्मा में ज्ञानगुण के अतिरिक्त अन्य गुण भी हैं इसीलिए आत्मा ज्ञानगुण स्वरूप व अन्य गुणरूप भी है। यदि आत्मा को केवल ज्ञान स्वरूप स्वीकार किया जावे एवं अन्य स्वरूप स्वीकार नहीं किया जावे तो अन्य गुणों का अभाव हो जाएगा एवं अन्य गुणों का अभाव हो जायगा एवं गुणी का अभाव हो जायेगा। क्योंकि गुण के अभाव से गुणी का अभाव हो जाएगा। इसलिए कथंचित् गुण गुणी में भेद एवं अभेद भी है। इस सूक्ष्म सैद्धान्तिक विषय को सरलीकरण करने के लिए और एक-दो उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं। जैसे कोई कहता है एक मीठा आम ले आओ, कोई कहता है एक पीला आम ले आओ। वे अलग-अलग विशेषण से आम प्राप्त करने के लिए बोल रहे हैं। मीठा आम लाना कहने पर आम का मीठा गुण का अन्य गुण से अलग करके लाया जा सकता है कदापि नहीं क्योंकि मीठा गुण आम के अन्य गुणों के साथ एक क्षेत्रावगाही होकर रहता है। इसी कारण अन्य गुणों को पृथक करके नहीं लाया जा सकता है इसलिये आम का मीठा गुण आम में होते हुए भी आम केवल मीठा गुण स्वरूप नहीं है। अन्य गुण स्वरूप भी है। केवल गुण-गुणी संज्ञा, संख्या, लक्षण, प्रयोजन की अपेक्षा भेद होते हुए भी प्रदेश अपेक्षा भेद नहीं होता है। उपरोक्त सिद्धान्त का प्ररूपण तार्किक चूडामणि अकलंक स्वामी ने स्वरूप सम्बोधन में किया है।

प्रमेयत्वादि भिर्धर्मेऽचिदात्मा चिदात्मकः।  
ज्ञान दर्शन तस्त स्मात्वेतनाचेतनात्मकः॥ (3)

वह आत्मा प्रमेयत्व आदि धर्मों द्वारा अचितरूप है, ज्ञान और दर्शन गुण से चेतनरूप है। इस कारण चेतन अचेतन रूप है।

ज्ञानात्मिन्नो न चाभिन्न, भिन्ना भिन्नः कथंचन।  
ज्ञानं पूर्वापरिभूतं, सोऽयमात्मेति कीर्तिः॥ (4)

आत्मा का ज्ञान गुण भूतकाल और भविष्यकाल के पदार्थों को जानने रूप पर्यायों वाला है। वह प्रसिद्ध यह आत्मा उस ज्ञान गुण से सर्वथा भिन्न नहीं है और सर्वथा अभिन्न यानी एकरूप भी नहीं है। किसी अपेक्षा से भिन्न और अभिन्न इस प्रकार कहा गया है।

स्वदेह प्रमिताश्चायं, ज्ञानमात्रोऽपि नैव सः।  
ततः सर्वगतश्चायं, विश्वव्यापी न सर्वथा॥ (5)

यह आत्मा अपने शरीर के बराबर है और यह आत्मा ज्ञानगुण मात्र भी यानी ज्ञान के बराबर भी नहीं है। इस कारण यह आत्मा सब तरह समस्त पदार्थों को स्पर्श करने वाला नहीं है और समस्त जगत् में व्यापने वाला भी सर्वथा नहीं है।

नानाज्ञानस्वभाव त्वादेकाऽनेकोऽपि नैव सः।  
चेतनैक स्वभावत्वादिकानेकानेकात्मको भवेत्॥

वह आत्मा अनेक प्रकार के ज्ञान स्वरूप होने से अनेक होते हुए भी एक चेतना स्वभाव होने से एक होता हुआ भी सर्वथा एक ही नहीं है। किन्तु एक तथा अनेकात्मक होता है।

### ज्ञान एवं ज्ञेय का स्वरूप :

तम्हा णाणं जीवो णेयं दव्वं तिहा समक्खरवादं।  
दव्वं ति पूणो आदा पटं च परिणाम संबद्धं॥ (36)

आगे बताते हैं कि आत्मा ज्ञान रूप है तथा अन्य सर्व ज्ञेय है अर्थात् ज्ञान और ज्ञेय का भेद प्रगट करते हैं। क्योंकि आत्मा ही अपने उपादान रूप से ज्ञानरूप परिणमन करता है वैसे ही पदार्थों को जानता है ऐसा पूर्व सूत्र में कहा गया है (तम्हा) इसलिये (जीव:) आत्मा ही (णाणं) ज्ञान है। (णेयं

द्वं) उस ज्ञान स्वरूप आत्मा का ज्ञेय द्रव्य (तिहा) तीन प्रकार अर्थात् भूतः, भविष्यत्, वर्तमान स्वरूप में (पर्याय में) परिणमन रूप से या द्रव्य गुण पर्याय रूप से या उत्पाद-व्यय-धौव्य रूप से ऐसे तीन प्रकार (समक्खादं) कहा गया है। (पूर्णों) तथा (परिणाम संबद्धं) किसी अपेक्षा परिणमनशील (आदा च परं) आत्मा और पर द्रव्य (द्वं ति) द्रव्य है तथा क्योंकि ज्ञान दीपक के समान अपने को भी जानता है और पर को भी जानता है इसलिये आत्मा भी ज्ञेय है। जैसे दीपक स्व-पर प्रकाशी है अर्थात् स्वयं प्रकाशित होता है एवं पर को भी प्रकाशित करता है। उसी प्रकार आत्मा भी स्व-पर प्रकाशी है अर्थात् ज्ञान गुण के द्वारा स्वयं को जानता है और दूसरों को भी जानता है। जब आत्मा स्वयं को जानता है उस समय वह कथंचित् ज्ञेय भी हो जाता है। अन्य दृष्टि से भी आत्मा ज्ञेय है क्योंकि ज्ञान गुण को छोड़कर अन्य गुण भी ज्ञान के विषय बनते हैं इसलिए अन्यगुण की अपेक्षा आत्मा ज्ञेय बन जाता है। अन्य अचेतन द्रव्य केवल ज्ञेय ही होते हैं कभी ज्ञान नहीं होते क्योंकि उसमें चैतन्य शक्ति नहीं होती है जैसे : जो द्रव्य स्वयं अप्रकाशी है वह अन्य द्रव्य को प्रकाश नहीं दे सकता परन्तु अन्य के प्रकाश से प्रकाशित हो सकता है। जैसे विज्ञान की अपेक्षा सूर्य स्व प्रकाशी एवं पर प्रकाशी भी है क्योंकि जब सूर्य उदय होता है तब सूर्य को देखने के लिए अन्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती है। कोई यह नहीं कहता कि मुझे उदित सूर्य को देखना है, एक टॉर्च लेकर आओ परन्तु अहंकार में कोई अप्रकाशित वस्तु को देखने के लिए प्रकाश की आवश्यकता पड़ती है। प्रमोयरत्नमाला (जैन न्याय शास्त्र) में कहा भी है-

### स्वापूर्वार्थ व्यावसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम्। (1) पृ.13

स्व अर्थात् अपने आपको और अपूर्वार्च अर्थात् जिस किसी अन्य प्रमाण से पूर्व में जाना नहीं है ऐसे पदार्थ के निश्चय करने वाले ज्ञान को प्रमाण कहते हैं।

### स्वोन्मुखतया प्रतिभासनं स्वस्य व्यवसायः। (6) पृ.24

स्वोन्मुखरूप से अपने आपको जानना यह स्वव्यवसाय है अपने आपको जानने के अभिमुख होने को स्वोन्मुखता कहते हैं। उस स्वोन्मुखता कहिए, स्वानुभावरूप से जो प्रतिभास अर्थात् आत्मप्रतीति या आत्म-निश्चय होता है वह स्वव्यवसाय कहलाता है। सारांश अपने आपको जानने का नाम स्वव्यवसाय है।

### अर्थस्येव तदुन्मुखतया (7)

जैसे अर्थ के उन्मुख होकर उसे जानना अर्थव्यवस्था है। सूत्र में कहे गए ‘ततु’ शब्द से अर्थ (पदार्थ) को ग्रहण किया गया है जिस प्रकार पदार्थ के अभिमुख होकर उसके जानने को अर्थ व्यवसाय कहते हैं उसी प्रकार स्व अर्थात् अपने आप के अभिमुख होकर जो अपने-आपका प्रतिभास होता है अर्थात् आत्मप्रतीति या आत्म-निश्चय होता है, यह स्वव्यवसाय कहलाता है।

### घटमहमात्मना वेद्धि। (8)

मैं घटकों अपने आपके द्वारा जानता है। यहाँ पर ‘अहं’ पद कर्ता है घट कर्म है आत्मना पद कारण है और वेधि यह क्रिया है। जैसे जानने वाला पुरुष अपने आपके द्वारा घट को जानता है वैसे ही अपने आपको भी जानता हूँ।

### प्रदीपवत् (12)

दीपक के समान। जिस प्रकार दीपक की प्रकाशता और प्रत्यक्षता को स्वीकार किये बिना उससे प्रतिभासित हुए घटादिक पदार्थ की प्रकाशता और प्रत्यक्षता संभव नहीं है उसी प्रकार यदि प्रमाण स्वरूप ज्ञान की भी प्रत्यक्षता न मानी जाय तो उसके द्वारा प्रतिभासित पदार्थ की भी प्रत्यक्षता माननी सम्भव नहीं है। अतः दीपक के समान ज्ञान की भी स्वयं प्रकाशता और प्रत्यक्षता माननी चाहिए। यहाँ यह तात्पर्य है- ज्ञान अपने आपके प्रतिभास करने अर्थात् जानने में अपने से अतिरिक्त (भिन्न) सजातीय अन्य पदार्थों की अपेक्षा से रहित है क्योंकि पदार्थ को प्रत्यक्ष करने के गुण से युक्त होकर अदृष्ट-अनुयायी करण वाला है, जैसे दीपक का भासुराकार। नियमसार में अमृतचन्द्रसूरि ने कहा है-

“यथावद्वस्तुनिर्णीतः सम्यग्ज्ञानं प्रदीपवत्।  
तत्वार्थ व्यवसायात्म कंथचित् प्रमिते पृथक्॥

यथार्थ रूप से वस्तु का निर्णय होना सम्यग्ज्ञान है, वह प्रदीप के समान स्व और पर अर्थ का निश्चय करने वाला है तथा प्रमिती जानने रूप क्रिया से कंथचित् भिन्न है। - ज्ञान त्रिकाल की अवस्थाओं को जानता है।

तत्कालिगेव सब्वे सदसद्भूदा हि पज्जया तासिं।  
वहन्ते ते णाणे विसेसदो दव्वजादीणं।। (37)

(तासिं दव्वजादीणं) उन प्रसिद्ध शुद्ध जीव द्रव्यों की व अन्य द्रव्यों की

(ते) वे पूर्वोक्त (सब्वे) सर्व (सदसम्भूदा) सदूत और असदूत अर्थात् वर्तमान, भूत और भविष्य काल की (पञ्जया) पर्याय (हि) निश्चय से या स्पष्टरूप से (णाण) केवल ज्ञान में (विसेसदो) विशेष करके अर्थात् अपने-अपने प्रदेश, काल, आकार आदि भेदों के साथ संकर, व्यतिकर दोष के बिना (तत्कालिगेय) वर्तमान पर्यायों के साथ (वट्टते) वर्तती हैं। अर्थात् प्रतिभासती है या स्फुरायमान होती है। भाव यह है कि जैसे छद्मस्थ अल्पज्ञानी मति श्रुतज्ञानी पुरुष के भी अंतरंग में मन से विचारते हुए पदार्थों की भूत और भविष्य पर्यायं प्रगट होती हैं। अथवा जैसे चित्रमयी भीत पर बाहुबली भरत आदि के भूतकाल के रूप तथा श्रेणिक तीर्थकर आदि भविष्य के रूप वर्तमान के समान प्रत्यक्ष रूप से दिखाई पड़ते हैं। तैसे भीत के चित्र समान केवलज्ञान में भूत और भावि अवस्थाएँ भी एक साथ प्रत्यक्ष रूप से दिखाई पड़ती हैं। इसमें कोई विरोध नहीं हैं तथा जैसे यह केवली भगवान पर द्रव्यों की पर्यायों को उनके ज्ञानाकार मात्र से जानते हैं। तन्मय होकर नहीं जानते हैं। परन्तु निश्चय करके केवलज्ञान आदि गुणों का आधारभूत अपनी ही सिद्ध पर्याय को ही स्वसंवदेन या स्वानुभव रूप से तन्मयी हो जानते हैं। तैसे निकट भव्य जीवों को भी उचित है कि अन्य द्रव्यों का ज्ञान रखते हुए भी अपने शुद्ध आत्म द्रव्य की सम्यक् श्रद्धान्, ज्ञान तथा चारित्ररूप निश्चय रत्नत्रयमयी अवस्था को ही सर्व तरह से तन्मय होकर जाने तथा अनुभव करे यह तात्पर्य है। त्रैकालिक पर्यायों का समूहभूत द्रव्य है। किसी न किसी समय में द्रव्य किसी न किसी अवस्था में रहेगा ही ऋजू सूत्र नय की अपेक्षा द्रव्य में एक समय में एक ही पर्याय रहती है। केवलज्ञान विशद निरपेक्ष, प्रत्यक्ष, अनन्तानन्त ज्ञान प्रतिच्छेद से युक्त होने के कारण यह केवलज्ञान वर्तमान पर्याय के माध्यम से भूत एवं भविष्यत् पर्यायों को भी जान लेता है। एक लौकिक उदाहरण से प्रस्तुत करके इस महान् गूढ़ रहस्य का विशदकरण कर रहे हैं। जैसे अल्पज्ञ (छद्मस्थ) व्यक्ति एक किशोर को देखकर अपने क्षयोपशमिक ज्ञान से यह अनुमान लगाता है कि यह किशोर पहले माता के गर्भ में था, जन्म लेकर शिशु से बढ़ता-बढ़ता किशोर हुआ है एवम् आयुक्रम से बढ़ता हुआ, युवक प्रोढ, वृद्ध होकर मृत्यु को भी प्राप्त करेगा। यदि इसकी आयु कम है तो वह युवक, प्रौढ़, वृद्ध बने या न बने पर निश्चित रूप से मृत्यु को प्राप्त करेगा और भी एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ - रोटी को देखकर हमें पहले यह ज्ञान होता है कि पहले गेहूँ को खेत में बोया गया था। फिर अंकुर होकर पौधा बनकर गेहूँ आया तथा पका हुआ उस गेहूँ को काट-चांट कर गेहूँ के अलग किया गया,

पश्चात गेहूँ को (पीसकर) रोटी बनाई गई। यह हुआ भूतसे वर्तमान का ज्ञान। वह अनुमान से जानता है कि यदि कोई इसको भक्षण करेगा तो वह इस रूधिररूप में परिवर्तित होगी और यदि कोई भक्षण नहीं करेगा तो सङ्-गल जायेगी। छद्मस्थ व्यक्ति अल्पज्ञ होने के कारण द्रव्य कि कुछ पर्यायों को जान सकता है। परन्तु सर्वज्ञ अनंत ज्ञानी होने से सम्पूर्ण द्रव्य की सम्पूर्ण पर्यायों को जानते हैं। दिग्म्बर महाश्रमण - आचार्य उमास्वामी ने कहा भी है-

**मति श्रतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वं पर्यायेषु। (26) अ। तत्वार्थ सूत्र**

मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की प्रवृत्ति कुछ पर्यायों से युक्त सब द्रव्यों में होती है।

**रूपिष्ववधेः। (27) अ।**

अवधिज्ञान की प्रवृत्ति रूपी पदार्थों में होती है।

**तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य। (28)**

मनः पर्यज्ञान की प्रवृत्ति अवधिज्ञान के विषय के अनन्तवें भाग में होती है।

**सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य। (29)**

केवलज्ञान की प्रवृत्ति सब द्रव्य और उनकी सब पर्यायों में होती है- प्रत्यक्षज्ञान ही पारमार्थिक सुख है।

**जादं स्वयं सम्मतं णाणमणंतवित्थं विमलं।**

**रहिदं तु ओग्गहादिहि सुहं त्ति एगंतियं भणियं।। (59)**

(णाण) यह केवलज्ञान (स्वयंजादं) स्वयमेव ही उत्पन्न हुआ है। (समतं) परिपूर्ण है (अणंत्यवित्थं) अनन्त पदार्थ में व्यापक है (विमलं) संशय आदि मलों से रहित है (ओग्गहादिहि त्ति रहियं) अवग्रह, ईहा, आवाय, धारणा के क्रम से रहित है। इस तरह पाँच विशेषणों से गर्भित तो केवलज्ञान है वही (एगंतियं) नियम करके (सुहंति भणियं) सुख है ऐसा कहा गया है। भाव यह है कि यह केवलज्ञान पर पदार्थों की सहायता की अपेक्षा न करके चिदानन्दमयी एक स्वभावरूप अपने ही शुद्धात्मा के एक उपादान कारण से उत्पन्न हुआ है। इसलिए स्वयं पैदा हुआ है सर्व शुद्ध आत्मा के प्रदेशों में प्रगट है इसलिए सम्पूर्ण है अथवा सर्वज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेद अर्थात् शक्ति के अंश उनसे परिपूर्ण है, सर्व आवरण के क्षय होने से पैदा होकर सर्व होकर सर्व ज्ञेय पदार्थों

को जानता है। इससे अनन्त पदार्थ व्यापक है। संशय, विमोह, विभ्रम से रहित होकर व सूक्ष्म आदि पदार्थों के जानने में अत्यन्त विशद्ध होने से निर्मल है। तथा क्रमरूप इन्द्रियजनित ज्ञान के खेद के अभाव से अवग्रहादि रहित अक्रम है। ऐसा यह पाँच विशेषण सहित क्षायिक ज्ञान अनाकुलता लक्षण को रखने वाला परमानन्दमयी एकरूप पारमार्थिक सुख से संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन आदि की अपेक्षा से भेदरूप होने पर भी निश्चयनय से अभिन्न होने से पारमार्थिक या सच्चा स्वाभाविक सुख कहा जाता है यह अभिप्राय है। सुख आत्मा का शुद्ध आत्मा स्वभाव है और सुख का वेदन जीव ज्ञान के माध्यम से करता है। परन्तु जब जीव समस्त कर्मों से रहित होकर पूर्ण ज्ञानानंद स्वरूप बन जाता है। तब ज्ञान एवं आनंद से अभेद विविक्षा से भिन्न नहीं रहता है तथा उसका वेदन भी अभेद हो जाता है। इसलिये अभेद विविक्षा से ज्ञान एवं सुख को एकरूप से स्वीकार किया गया है। तथापि भेद विविक्षा से ज्ञान एवं सुख पृथक-पृथक है, क्योंकि ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय से केवलज्ञान होता है। दर्शन-मोहनीय कर्म के क्षय से क्षायिक सम्यक्त्व होता है एवं चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय से क्षायिक चारित्र होता है। और इसे ही सुख कहा गया है। इसलिये चार धातिकर्म के क्षय से अनन्त चतुष्य प्रगट होता है, परन्तु प्रवचनसार आध्यात्मिक ग्रन्थ है इस आध्यात्मिक ग्रन्थ में ज्ञान को मुख्यता दी गई है। जादंसं इत्यादि-इस गाथा में “जादं सं” अर्थात् स्वयं से उत्पन्न इहा विशेषण ज्ञान (सुख) के लिए दिया गया है। क्योंकि यह सुख जीव का स्वभाव होने से बाहर से प्राप्त नहीं होता है। परन्तु स्वयं में ही अभेद रूप से निहित है। जैसे-सूर्य में सूर्य किरण रहती है। परन्तु बादल के कारण सूर्य किरण छिप जाती है और बादल छट्टे-हट्टे ही सूर्य किरणें प्रगट हो जाती हैं। उसी प्रकार स्वयं में निहित सुख (ज्ञान) ही कर्म के कारण स्वयं प्रगट हो गया। समत्त (समस्त) -सुख आत्मा का गुण होने के कारण संपूर्ण आत्मा के समस्त प्रदेशों में सुख का वेदन होता है। जिस प्रकार अग्नि की उष्णता अग्नि के प्रत्येक कण में, स्वर्ण का पीतपना स्वर्ण के प्रत्येक प्रदेश में, शक्कर का मीठापन उसके प्रत्येक कण में होता है। उसी सुख का वेदन आत्मा के प्रत्येक प्रदेश में होता है।

**पाणनणं तत्थवित्थड** (अनन्त अर्थ में विस्तृत ज्ञान)- ज्ञान ज्ञेय प्रमाण होने के कारण और केवलज्ञान में सबसे अधिक अनन्तानंत अनुभाग प्रतिच्छेद शक्ति होने के कारण यह ज्ञान समस्त ज्ञेयों में विस्तृत है इसलिये इस ज्ञान में जानने की इच्छा का अभाव होने के कारण यह ज्ञान सुख स्वरूप

भी है। विमल (मल रहित, निमल) छद्मस्थ का ज्ञान एवं सुख कर्म सापेक्ष होने के कारण मलयुक्त होने के कारण आकुलता उत्पन्न करने वाला है परन्तु केवलज्ञान कर्म निरपेक्ष एवं अव्याबाध होने के कारण यह सुख परम आलहाद रूप सुख है। रहिंदं तु ओग्गहादिहि (अवग्रहादि से रहिद) -केवलज्ञान क्षायिक होने के कारण यह युगपत् प्रवृत्त होता है। इसलिये अवग्रहादि का क्रम नहीं है और तज्जनित खेद व अनुकूलता नहीं है। इसलिये प्रत्यक्ष ज्ञान ही परमार्थिक या एकान्तिक सुख है।

### अनुभवात्मक ज्ञान

#### अनुभव के लिये कारण-

शास्त्रोपदर्शितदिशा गलितासदह कषायकलुषाणाम्।

प्रियमनुभवकवैद्यं रहस्यमाविर्भवति किमपि॥ (1) अध्यात्मसार पृ.438

शास्त्र में बताई हुई दिशा से जिनके असद्ग्रह, कषाय और कालुस्य (रागदेष्व) नष्ट हो गए हैं, उन पुरुषों को अनुभव से ही जाना जा सके, ऐसा कुछ इष्ट रहस्य प्रगट हो जाता है। पहिले जिसे आत्म-निश्चय हो जाता है, उसे ऐसा अनुभव होता है, इसलिए इस प्रबन्ध में अनुभव के सम्बन्ध में कहते हैं- जैनागमों में बताई हुई दिशा से - प्रवृत्ति के विधिरूप मार्ग से जिसके कदाग्रह और क्रोधादि नष्ट हो गये हैं, इस कारण जिनके हृदय निर्मल हो गए हैं, उन्हें एकमात्र अनुभव से ही जानने लायक यानी भ्रान्तिरहित यथार्थ वस्तु स्वरूप को ग्रहण करने वाले प्रमाण से उत्पन्न हुए ज्ञान से ही जानने लायक और प्रिय, ऐसा कुछ अलौकिक (नवीन) रहस्य (मूढ़ मनुष्यों से गोपनीय परमार्थ) प्रगट हो जाता है।

प्रथमाभ्यासविलासादविर्भूयैव यत्क्षणालीनम्।

चंचतरुणीविभ्रमसममुत्तरलं मनः कुरुते॥ (2)

जो रहस्य प्रथम अभ्यास के विलास से प्रकट होकर क्षणभर में तल्लीन हुए मन को युवती स्त्री के मनोहर विलास के समान अत्यन्त आतुरता वाला बना देता है। योगीजन को प्रिय अनुभव से ज्ञान हो सकने वाला जो रहस्य प्रथम अभ्यास के विलास से (यानी पहले का-प्रारम्भ के समय का अभ्यास = आध्यात्मिकता का बार-बार सेवन, उसके विलास से) प्रगट होकर अल्पकाल में ही आत्मा में तल्लीन हुए मन को इस प्रकार उत्सुक (आतुर) बना देता है (यानी वह रहस्यप्राप्ति की तीव्र तमन्ना पैदा कर देता है) जिस

प्रकार कामुक पुरुष को युवा कामिनी का विलास (शृंगार, अंगचेष्टा तथा हावभाव) सहसा आतुर कर देता है; तात्पर्य यह है, इसी दशा में अध्यात्म-रहस्याभिलाषी योगीजन का मन आत्मरहस्य के विलास-रस में सतत आतुर होता है।

### 5 प्रकार का मन-

सुबिदितयोगौरिष्ट क्षिप्तं मूढं तथैव विक्षिप्तम्।  
एकाग्रं च निरुद्धं चेतः पञ्चप्रकारमिति। (3)

जिसने योग के स्वरूप को अच्छी तरह जान लिया है, उन योगियों ने 5 प्रकार का मन बताया है- (1) क्षिप्त (2) मूढ़ (3) विक्षिप्त (4) एकाग्र और (5) निरुद्ध।

जिसने योग = ब्रह्मत्व प्राप्त करने के उपाय - को भली भाँति समझ लिया है, उन योगियों ने 5 प्रकार का चित्त बताया है। क्षिप्त = विषय और रागादि में मन (2) मूढ़ = इहलोक - परलोक के सम्बन्ध में विवेक रहित मन (3) विक्षिप्त = कुछ रक्त और कुछ विरक्त मन (4) एकाग्र - समाधि में स्थिर मन और (5) निरुद्ध = बाह्य विषयों का त्याग करके आत्मा में ही स्थिर रहने वाला। इन पांचों का विवरण ग्रन्थः इस प्रकार है।

#### क्षिप्त मन :

विषयेषु कल्पितेष्यु च पुरः स्थितेषु च निवेशितं राजसा।  
सुख-दुःख युग्महिर्मुखमानातं क्षिप्तमिह चित्तम्॥ (4)

कल्पित और सामने रहे हुए विषयों में राग के स्थापित हुए, सुख और दुःख से मुक्त तथा अध्यात्म से बहिर्मुख चित्त को क्षिप्त कहते हैं।

#### मूढ़ मन :

क्रोधादिभिर्नियगितं विरुद्धकृत्येषु चत्तमोभूम्ना।  
कृत्याकृत्यविभागासंगतमेतन्मनो मूढम्॥ (5)

जो मन तमो गुण के बाहुत्य से विरुद्ध कार्यों में क्रोधादि से नियमित हुआ तथा कृत्य-अकृत्य के विभाग (विवेक) से रहित है, वह मन मूढ़ कहलाता है।

#### विक्षिप्त मन :

सत्वोद्रेकात् परिछतदुःखनिदानेषु सुखनिदानेषु।  
शब्दादिषु प्रवृत्तं सदैव चित्तं तु विक्षिप्तम्॥ (6)

सत्त्वगुण की अधिकता के कारण दुःख के मूल कारणों से रहित और शब्दादि सुख के मूल कारणों में निरन्तर प्रकृत हुआ चित्त विक्षिप्त कहलाता है।

#### एकाग्र मन :

अद्वेषादिगुणवत्तां नित्यं खेदादिष्परिहारात्।  
सदृशप्रत्यय संगतमेकाग्रं चित्तमान्नातम्॥ (7)

अद्वेष आदि गुणवाला, निरन्तर खेद वगैरह दोषों के त्याग से समान परिणाम को प्राप्त जो मन है, उसे एकाग्र कहा गया है। (2) सर्वो. 556

#### निरुद्ध मन :

उपरतविकल्पवृत्तिकमवग्रहादिकमच्युतं शुद्धम्।  
आत्माराममुनीनां भवति निरुद्धं सदा चेतः॥ (8)

जिस मन से विकल्प की वृत्तियाँ शान्त हो गई हैं, जो अवग्रहादि (प्रतिबन्ध आदि) के क्रम से पृथक् है ऐसा आत्माराम मुनियों का सदा उज्ज्वल चित्त निरुद्ध कहलाता है।

#### एकाग्रता मन के लिये त्याज्य अवस्थायें

न समाधावुपयोगं तिस्रश्चेतोदशा इह लभन्ते।  
सत्वोत्कर्षात् स्थैर्यादुभे समाधी सुरगतिशयात्॥ (9)

इस समाधि में चित्त की पहली तीन अवस्थाएँ उपयोग में नहीं आती, परन्तु सत्व के उत्कर्ष के कारण, स्थैर्य के कारण तथा अतिशय सुख के कारण चित्त की अन्तिम दो अवस्थाएँ उपयोग में आती है।

चित्त की प्रथम तीन अवस्थाएँ - क्षिप्त, मूढ़ और विक्षिप्त मन की दशाएँ समाधि के लिए निश्चल एकाग्र ध्यान के लिए, उपयोगी नहीं होती, इसलिए त्याज्य है। चित्त की अन्तिम दो अवस्थाएँ एकाग्र और निरुद्ध मन की दशाएँ - सत्त्वगुण के उत्कर्ष के कारण चित्तनिरोध में स्थिरता के कारण तथा

अतिशय सुख समाधि के योग्य होने से समाधि के लिए उपयोगी होती है इसलिए दोनों अवस्थाएँ उपादेय हैं।

**योगरभ्मस्तु भवेद्विक्षिप्ते मनसि जातु सानन्दे ।  
क्षिप्ते मूढे चास्मिन् व्युत्थानं भवति नियमेन॥ (10)**

विक्षिप्त मन कदाचित् आनन्दयुक्त होने से उसमें योग का आरम्भ हो सकता है; परन्तु क्षिप्त और मूढ़ मन तो इसमें अवश्य ही व्युत्थानरूप होते हैं।

तीसरी अवस्था वाला रागी और विरागी दोनों प्रकार का मन, जो विक्षिप्त कहलाता है, वह कभी चंचल रहता है, इधर-उधर भटकता है, कभी कुछ आनन्दयुक्त होकर धर्म प्रेमी हो जाता है। उस मन में योग का यानी समाधि की प्राप्ति के उपयोग का प्रारम्भ हो सकता है। क्योंकि योग की प्रारम्भिक अवस्था की समाधि में इस (विक्षिप्त) मन मन में स्थिरता आती -जाती रहती है। इसलिए यह मन कदाचित् उपयोगी हो सकता है, लेकिन रागादि से ग्रस्त क्षिप्त मन और क्रोधादि से मूढ़ मन रागादि संस्कारों का अवस्थ्य उद्भव करने वाले (व्युत्थानकारक) होने से अवश्य ही त्वाज्य हैं।

**विषयकषायनिवृत्तं योगेषु च संचरिष्णुविविधेषु ।  
गृहखेलद्बालोपमपि चलमिष्टं मनोऽभ्यासे॥ (11)**

विषयों और कषायों से निवृत हुआ, विविध प्रकार के योगों में गमन करने वाला और घर के आँगन में कोङा करते हुए बालक के समान चपल मन हो तो वह अभ्यासदशा में इष्ट है। शब्दादि विषयों और क्रोधादि कषायों से विमुख हुआ तथा विविध प्रकार के योगों - मोक्ष के उपायों में गमन करने वाला और घर के आँगन में खेलते हुए बालक के समान भद्रपरिणाम के कारण अन्तर्मुखी विक्षिप्त मन (अन्तः करण) चपल हो तो भी अभ्यासकाल (बार-बार उपायों के परिशीलन करते समय) को योग साधना के लिए यह साधन के रूप में इष्ट है।

**वचनानुष्ठानगतं यातायातं च सातिचारमपि ।  
चेतोऽभ्यासदशायां गजांकुशन्यायतोऽदुष्टम्॥ (12)**

वचनानुष्ठान में रहा हुआ मन यद्यपि गमनागमन करते समय अतिचार-सहित होता है फिर भी अभ्यासदशा में गजांकुशन्याय (दृष्टान्त) के अनुसार

अदूषित है। शास्त्रोक्तवचनानुसार अनुष्ठान (क्रिया) करने में तत्पर मन कभी बाहर चला जाता है, कभी अन्दर स्थित रहता है, इस प्रकार बार-बार गमनागमन करने वाला होने से सातिचार = सदोष मन भी प्राथमिक योगभ्यासदशा में गजांकुशन्याय से अर्थात् हाथी अंकुश के प्रहार से सम्यक् मार्ग में चलता है यानी सुन्दरगति करने लगता है, इस दृष्टान्त के अनुसार अदूषित है, क्योंकि शिक्षा के योग से उसे मार्गनुसारी के परिणाम वाला किया जा सकता है। इसलिए विक्षिप्त मन अभ्यासदशा में दूषित नहीं है।

**मन-वश करने के उपाय :**

**ज्ञान विचाराभिमुखं यथा भवति किमपि सानन्दम् ।  
अथैः प्रलोभ्य बाह्याषु णहीयातथा चेतः॥ (13)**

जैसे-जैसे चित्त कुछ (धर्मकार्य में) आनन्दयुक्त और ज्ञान तथा विचार के सम्मुख होता जाय, वैसे-वैसे बाह्य पदार्थों से उसे प्रलोभन देकर वश करना चाहिए।

जिस-जिस प्रकार से मन धर्मकार्य में हर्षयुक्त (अतिप्रसन्न) और कुछ ज्ञान तथा विचार के सम्मुख होता जाय, उस-उस प्रकार से ब्राह्य आत्मा से भिन्न (वक्ष्यमाण) शुभ आलम्बनभूत पदार्थों का प्रलोभन देकर उनमें प्रीति पैदा करके उस मन को वश में करना चाहिए।

**अभिरूप जिन प्रतिमां विशिष्टपदवर्णवाक्यरचनां च ।  
पुरुष विशेषादिकमप्यत एवाऽलम्बनं ब्रूवते॥ (4)**

इसलिए सुन्दर जिन प्रतिमा, विशिष्ट पद, वर्ण और वाक्यरचना की तथा विशिष्ट प्रकार के पुरुषादि को आलम्बनभूत कहे हैं। बाह्य शुभ प्रवृत्ति में चित्त को लगा कर उससे निग्रह किया जा सकता है; इसलिए प्रशस्त लक्षण वाली मनोहर लक्षणों (आकृति आदि) से युक्त, आत्मा में आह्नाद उत्पन्न करने वाली जिन प्रतिमा (तीर्थकर विम्ब) तथा शुभ सूचक मांगलिक ललित (आगमोक्त आत्मा, चेतन, जीव, वगैरह) पदों की वर्णों की (गम्भीर अर्थ को प्रगट करने वाले प्रणवादि अक्षरों की) 'जगदगुरु जिनेश्वर विजयी होते हैं; इत्यादि पदसमूहरूप वाक्यों की रचना (काव्यकृति या सुलेखरचना) गणधारादि सुसाधु आदि वगैरह पुरुष विशेषादि तथा शास्त्रपाठ आदि को भी आलम्बन भूत कहे हैं। इन सब को चित्त विग्रह के लिए शुभ-आश्रयरूप कहे हैं।

**आलम्बनैः प्रशस्तै प्रायो भावः प्रशस्त एव यतः।**  
**इति सालम्बनयोगी मनः शुभालम्बनं दध्यात् ॥ (15)**

इसलिए प्रशस्त आलम्बनों से प्रायः प्रशस्त भाव ही होते हैं। इस आलम्बन के अभिलषी योगी को अपना मन शुभ आलम्बन में जोड़ना चाहिए। पूर्व कथानुसार प्रशस्त आलम्बनों का आश्रय लेने से प्रायः प्रशस्त भाव जागृत होते ही है, इसलिए आलम्बन चाहने वाले योगी जन को शुभ आलम्बन में ही मन को जोड़ना चाहिए और उसे प्रशस्त परिणाम वाला बनाना चाहिए।

**सालम्बनं क्षण मपि क्षणमपि कुर्यान्मनो नियलम्बम्।**  
**इत्यनुभव परिपाकादाकालं स्यान्निरालम्बम्॥ (16)**

मन को क्षण में सालम्बन (शुभ आश्रय से युक्त) करना और क्षणभर में आलम्बनरहित करना चाहिए। यों करते-करते अनुभव का परिपाक हो जाने पर आजीवन (सदा के लिए) मन निरालम्बन (आलम्बन रहित) हो जाता है।

एक क्षण के लिए चित्त को शुभ आलम्बन से युक्त करना और एक क्षण के लिए बाह्य विषयों का त्याग करके अपनी आत्मा में लीन करके निरालम्बन करना चाहिए इस प्रकार जब स्वात्मानुभव परिपक्व हो जाए तब जिंदगीभर मन निरालम्ब बन जाता है।

**आलम्बयैकपदार्थं यदा न किञ्चिद् विचिन्तयेदन्यत्।**  
**अनुपनतेन्धनं वहिवदुपशान्तं स्यात्तदा चेतः॥ (17)**

जब मन एक पदार्थ का आलम्बन लेकर उसके सिवाह अन्य कुछ भी चिन्तन न करे, तब उस अग्नि की तरह शान्त हो जाता है, जिसे ईंधन नहीं मिलता। जिस दशा में एक पदार्थ (द्रव्यरूप या पर्यायरूप एक भाव) का आलम्बन लेकर अर्थात् उसे ध्येयरूप में स्वीकार करके फिर दूसरे किसी भी द्रव्य या पर्याय का चिन्तन मन में करे नहीं, तब उस अवस्था में जिसे ईंधन नहीं मिलता, उस आग की तरह मन बिल्कुल शान्त हो जाता है, यानी वह शम और निर्वेद के स्थायित्व को प्राप्त कर लेता है।

**शान्त एवं एकाग्रमन से लाभ :**

**शोक-मद-मदन-मत्सर-कलह-कदाग्रह-विषाद-वराणि।**  
**क्षीयवन्ते शान्त हृदामनुभव एवात्र साक्षी नः॥ (18)**

शान्त हृदय वालों के शोक, मद, काम, मत्सर, कलह, कदाग्रह, विषाद और वैर ये सब क्षीण हो जाता है। शमयुक्त चित्त वालों के शोक इष्टवियोगादि से उत्पन्न हुआ चित्त का उद्वेग अथवा पश्चाताप जाति आदि ४ प्रकार के मद, काम विकार, मात्सर (डाह, ईर्ष्या = दूसरे के गुणों को न सहना), कलह (वाग्युद्ध, ज्ञागड़ा), कदाग्रह (मिथ्या आग्रह) विषाद (कार्य करने की अशक्ति) और वैर (विरोध द्वेष) ये सब क्षीण हो जाते हैं। शान्तचित्त व्यक्तियों के शोकादि का नाश होने में हमारा अनुभव ही, यानी प्रकट हुए गुणसम्पत्ति का साक्षात् दर्शन करने वाली हमारी बुद्धि ही साक्षी भूत है अर्थात् उसे साक्षात् देखने वाली है।

**शान्ते मनसि ज्योतिः प्रकाशते, शान्तमात्मनः सहजम्।**  
**भस्मीभवत्यविद्या मोहध्वान्तं विलयमेति॥ (19)**

मन शान्त हो जाने पर आत्मा की स्वाभाविक और शान्त ज्योति प्रकाशित होती है, अविद्या भस्मीभूत हो जाती है और मोहरूपी अन्धकार का सर्वथा विनाश हो जाता है। जब चित्त वृत्ति शान्त (निर्विकार) हो जाती है, तब आत्मा की सहज (स्वभाव सिद्ध) और शान्त (विभाव विकार रहित) ज्योति प्रकाशित करने वाला चैतन्य प्रकाशित हो जाता है, उसके साथ ही अज्ञानदशा भस्मीभूत यानी निर्मूल हो जाती है और मोहरूपी अन्धकार सर्वथा विनष्ट हो जाता है।

**सदुदेश्य की पूर्ति = शान्ति की प्राप्ति के सूत्र**

- आचार्य कनकनन्दी

- \* ब्रह्माण्ड के अनन्त सत्यों में से स्व-शुद्धात्म सत्य ही स्वयं के लिए परम उपादेय है अतः स्व-आत्मरुचि-विश्वास, ज्ञान एवं आचरण ही यथार्थ से सम्यक् हृचि-विश्वास एवं आचरण है। अतः इससे ही सदुदेश्य की पूर्ति एवं शान्ति की प्राप्ति होती है।
- \* शान्ति स्वयं में ही अनुभव होती है, अतः शान्ति स्वयं में ही है, बाहर में, दूसरों में नहीं है। अतः यह बाह्य में, दूसरों में है ऐसा विश्वास-ज्ञान आचरण ही यथार्थ से अन्धविश्वास-अज्ञानता-भ्रष्टाचार है।

## शास्त्राध्ययन का दुरुपयोग

अधित्य सकलं श्रुतं चिरमुपास्य घोरं तपो।  
 यदीच्छसि फलं तयोरहि हिलाभ पूजादिकम्॥  
 छिन्नसि सुत्तपस्तरोः प्रसवमेव शून्याशयः।  
 कथं समुपलस्यसे सुर समस्य पकं फलम्॥ (189) आत्मानुशासन

समस्त आगम का अभ्यास और चिरकाल तक घोर तपश्चरण करके यदि उन दोनों का फल तू यहाँ सम्पति आदि का लाभ और प्रतिष्ठा आदि चाहता है तो समझना चाहिए कि तू विवेकहीन होकर उस उत्कृष्ट तपरूप वृक्ष के फूल को ही नष्ट करता है। फिर ऐसी अवस्था में तू उसके सुंदर व सुस्वादु पके हुए रसीले फल को कैसे प्राप्त कर सकेगा? नहीं कर सकेगा। जिस प्रकार कोई मनुष्य वृक्ष को लगाता है, जलसिंचन आदि से उसे बढ़ाता है, और आपत्तियों से उसका रक्षण भी करता है, परन्तु समयानुसार जब उसमें फूल आते हैं तब वह उन्हें तोड़ लेता है और इसी में संतोष का अनुभव करता है। इस प्रकार से वह मनुष्य भविष्य में आने वाले उसके फलों से वंचित ही रहता है। कारण यह है कि फलों की उत्पत्ति के कारण तो वे फूल ही थे जिन्हें कि उसने तोड़कर नष्ट कर दिया है। ठीक इसी प्रकार से जो प्राणी आगम का अभ्यास करता है और घोर तपश्चरण भी करता है परन्तु यदि वह उसके फलस्वरूप प्राप्त हुई ऋद्धियों एवं पूजा प्रतिष्ठा आदि में ही संतुष्ट हो जाता है तो उसको उस तप का जो यथार्थ फल स्वर्ग-मोक्ष का लाभ था वह कदापि नहीं प्राप्त हो सकता है। अतएव तपरूप वृक्ष के रक्षण एवं संवर्द्धन का परिश्रम उसका व्यर्थ हो जाता है। अभिप्राय यह हुआ कि यदि तप से ऋद्धि आदि की प्राप्ति रूप लौकिक लाभ होता है तो इससे साधु को न तो उसमें अनुरक्त होना चाहिए और न किसी प्रकार का अभिमान ही करना चाहिए। इस प्रकार से उसे उसके वास्तविक फल स्वरूप उत्तम मोक्ष सुख की प्राप्ति अवश्य होगी।

## प्रसिद्धि रूपी रोग दूर करने के उपाय -

तथा श्रुतमधीष्व शश्वदिह लोक पंक्ति बिना  
 शरीरमपि शोषय प्रथितकाय संक्लेशनैः।  
 कषाय विषय द्विषा विजय से यथा दुर्जयान्।  
 शमं हि फलमामनन्ति मुनयस्तपः शास्त्रयोः॥ (190) आत्मानुशासन

लोकेष्णा/प्रसिद्धि बिना अर्थात् प्रतिष्ठा आदि की अपेक्षा न करके निष्कपट से यहाँ इस प्रकार से निरन्तर शास्त्र का अध्ययन कर तथा प्रसिद्ध कायकलेशादि तपों के द्वारा शरीर को भी इस प्रकार से सुखा कि जिससे तू दुर्जय कषाय एवं विषय रूप शत्रुओं को जीत सके। कारण कि मुनिजन राग द्वेषादि की शांति को ही तप और शास्त्राभ्यास का फल बतलाते हैं।

अभिप्राय इतना ही है कि प्राप्त हुए विशिष्ट आगम ज्ञान एवं तप के निमित्त से किसी प्रकार के अभिमान आदि को न प्राप्त होकर जो राग द्वेष एवं विषय वांछा आदि परमार्थ सुख की प्राप्ति में बाधक हैं अतः उन्हें ही नष्ट करना चाहिए। यही उस आगम ज्ञान एवं तप का फल है।

धर्म पालन, कर्तव्य निर्वहन, साधुत्व, प्रभावना, शिक्षा, दीक्षा, गुरु उपदेश आदि के माध्यम से आत्म कल्याण के साथ-साथ कीर्ति संपादन करनी चाहिए या यथार्थ से कहे तो कीर्ति/प्रसिद्धि आनुसंगिक रूप से हो जाती है, परन्तु ऐसा कोई भी कार्य व्यवहार नहीं करना चाहिए जिससे आत्मग्लानि, संक्लेश, तनाव, लोक निंदा, धर्म की हंसी, सदगुरु की अपकीर्ति आदि हो।

कुन्दकुन्द देव ने प्रवचनसार में आगम को साधु की चक्षु आगम के अनुसार चलने वाला सर्वश्रेष्ठ साधु, आगम श्रद्धा बिना सम्यक् दर्शन का अभाव आदि महत्वपूर्ण विषयों का प्रतिपादन करते हुए निम्न प्रकार कहा है।

आगम चक्खू साहू, इंदिय चक्खूणि सव्व भूदाणि।

देवा य ओहि चक्खू सिद्धा पुण सव्वदो चक्खू॥ (234) पृ.234-560

साधु आगम चक्षु हैं, सर्वप्राणी इन्द्रिय चक्षु वाले हैं। देव अवधि चक्षु वाले हैं और सिद्ध सर्वतः चक्षु हैं।

सव्वे आगम सिद्धा अत्था गुण पज्जाएहि चित्तेहि।

जाणंति आगमेन हि पेच्छिता ते वि ते समणा॥ (235)

विचित्र गुणपर्यायों सहित समस्त पदार्थ आगम सिद्ध हैं। उन्हें भी वे श्रमण आगम द्वारा वास्तव में देखकर जानते हैं।

एयगगदो समणो एयगं णिच्छिदस्स अत्थेसु।

णिच्छित्त आगमदो आगमचेड तदो जेट्टा ॥232 पृ. 554

श्रमण एकाग्रता को प्राप्त होता है, एकाग्रता पदार्थों के निश्चयवान् से होती है, पदार्थों का निश्चय आगम द्वारा होता है। इसलिए आगमाभ्यास तथा उसकी प्रवृत्ति मुख्य है।

आगम पुब्वा दिद्धि ण हवदि जस्तेह संजमो तस्स।

णत्थेदि भणदि सुतं असंजदो होदि किध समणो॥ (236) पृ.564

इस लोक में जिसकी आगम पूर्वक दृष्टि (दर्शन) नहीं है, उसके संयम नहीं है, इस प्रकार सूत्र कहता है, और जो असंयत है वह श्रमण कैसे हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता।

आगम हीणो समणो गेवप्पाणं परं वियाणादि।

अवि जाणंतो अट्टु खवेदि कम्माणि किध भिक्खू॥ (233) पृ.558

आगमहीन श्रमण आत्मा को और पर को नहीं जानता पदार्थों को नहीं जानता हुआ भिक्षु कर्मों को किस प्रकार क्षय करे।

ए हि आगमेण सिद्धादि सद्गृहणं जदि वि णथि अत्तेसु (1/2, 237) पृ. 566

आगम से यदि पदार्थों का श्रद्धान न हो तो, सिद्धि नहीं होती, पदार्थों का श्रद्धान करने वाला भी यदि असंयत हो तो निवाण को प्राप्त नहीं होता।

तम्हा जिण मग्गादो गुणेहिं आदं परं च दव्वे सु।

अभिगच्छु इच्छादि णिम्मोहं जदि अप्पणो अप्पा॥ (90) पृ.202

इस कारण से जो आत्मा अपनी निर्मोहता चाहता है तो जिन मार्ग से द्रव्यों में से गुणों के द्वारा स्व और पर को जानों। अतएव साधु का आगम निष्ठ आगम प्रमाण होना सर्व प्रथम कर्तव्य है। वीरसेन स्वामी ते तो धवला एवं जय धवला में अनेक स्थल में कहा है कि वह तर्क सुर्तर्क है, जो तर्क आगम को सिद्ध करता हो, सत्य को प्राप्त करता हो। परन्तु वह तर्क कुतर्क है जो आगम के विपरीत चलता हो, सत्य से दूर हटाता हो। वीरसेन स्वामी ने धवला में नेमीचन्द सिद्धान्त चक्रवर्ती ने गोम्मट्सार में, शिवकोटि आचार्य ने भगवती आराधना में तथा कई-कई अन्य आचार्यों ने एक विषय को अत्यन्त जोर देकर कहा है कि जो व्यक्ति किसी कारणवशतः आगम के विरुद्ध भी श्रद्धा कर लेता है परन्तु वह नहीं जानता है कि यह विरुद्ध सिद्धान्त है तब तक तो वह अन्तरंग श्रद्धा के कारण सम्यक् दृष्टि रहता है परन्तु विशेष आगम से आगम को दिखाकर पूर्वोक्त सिद्धान्त को आगम विरुद्ध सिद्ध करने पर भी हठग्राहिता के कारण, दुराग्राही होने के कारण, अहंकार के कारण या तुच्छ प्रसिद्धि/ख्याति/पूजा, सम्मान लोप हो जाएगा इस भय के कारण नहीं मानता है तब वह तत्क्षण मिथ्यादृष्टि हो जाता है।

## मतिश्रुत और अवधिज्ञान में मिथ्यापन

मतिश्रुतावध्योविपर्ययश्च।

And sensitive scriptural visual (Knowledge are also) wrong (Knowledge d&e).

मति, श्रुत और अवधि ये तीनों विपर्यय भी है। ज्ञान का कार्य जानना है। परन्तु जब ज्ञानावरणीय कर्म का उदय होता है तब ज्ञान की शक्ति कुंठित हो जाती है, परन्तु विपरीत नहीं होती है। किन्तु मोहनीय कर्म के उदय से ज्ञान विपरीत रूप में परिणमन कर लेता है। अमृतचन्द्र सूरि ने कहा भी है-

मतिः श्रुतावधी चैव मिथ्यात्वसमवायिनः।

मिथ्याज्ञाननि कथ्यन्ते न तु तेषां प्रमाणता॥ (35)

मति, श्रुत और अवधि ये तीन ज्ञान यदि मिथ्यात्व के साथ सम्बन्ध रखने वाले हैं तो मिथ्याज्ञान कहे जाते हैं और उस दशा में उनमें प्रमाणता नहीं मानी जाती।

मिच्छता अणाणाण अजिरदिभावो य भावआवरण।

णेयं पहुच्च काले तह दुण्णय दुप्पमाणं च॥ (6) पंचास्तिकाग प्राभृत पृ. 147

द्रव्य मिथ्यात्व के उदय से ज्ञान, अज्ञान रूप अर्थात् कुमति कुश्रुत व विभंगज्ञान रूपी होता है तथा व्रत रहित भाव भी होता है। इस तरह तत्वार्थ श्रद्धानुरूप भाव सम्यग्दर्शन व भाव संयम का आवरण रूप भाव होता है जैसे मिथ्यात्व के उदय से ज्ञेयरूप जीवादि पदार्थों को आश्रय करके तत्व विचार के समय में सुनय दुर्नय हो जाता है व प्रमाण दुःप्रमाण हो जाता है।

अणाणतियं होदि हु, सणाणतियं खु मिच्छाअणउदये।

नवरि विभंगं णाणं पंचिदियसणिपुण्णेव॥ (301)

अज्ञानत्रिकं भवति खलु सदज्ञानत्रिकं खलु मिथ्यात्वनोदये

नवति विभंगं ज्ञानं पचेन्द्रियसंज्ञिपूर्ण एव॥ (301)

आदि के तीन (मति, श्रुत, अवधि) ज्ञान समीचीन भी होते हैं और मिथ्या भी होते हैं। ज्ञान के मिथ्या होने का अन्तरंग कारण मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धीकषाय का उदय है। मिथ्या अवधि को विभंग भी कहते हैं। इसमें यह विशेषता है कि यह विभंगज्ञान संज्ञी पंचेन्द्रिय के ही होता है।

विसंहवकृष्टपंजरबंधादिसु गिणुवएसकरणेण।  
 जा खलु पवट्टइ मई, मइअण्णाणेति णं बेंति। (303)  
 विषयन्त्रकूटपंजरबंधारिषु विनोपदेशकरणेन।  
 या रवलु प्रवर्तते मतिः मत्यज्ञानमिति इंद ब्रवत्ति। (303)

दूसरे के उपदेश के बिना ही विष यंत्र कूट पंजर तथा बंध आदि के विषय में जो बुद्धि प्रवृत्त होती है उसको मत्यज्ञान कहते हैं। जिसके खाने से जीव मर सके उस द्रव्य को विष कहते हैं। भीतर पैर रखते ही जिसके किवाड़ बन्द हो जायें और जिसके भीतर बकरी आदि को बाँधकर सिंह आदि को पकड़ा जाता है। उसको यंत्र कहते हैं। जिससे चूहे वगैरह पकड़े जाते हैं, उसको कूट कहते हैं। रस्सी में गाँठ लगाकर जो जाल बनाया जाता है उसको पंजर कहते हैं। हाथी आदि को पकड़ने के लिए जो गड्ढे आदिक बनाये जाते हैं उसको बन्ध कहते हैं। इत्यादि पदार्थों में दूसरे के उपदेश के बिना जो बुद्धि प्रवृत्त होती है। उसको मत्यज्ञान कहते हैं क्योंकि उपदेश पूर्वक होने से वह ज्ञान श्रुतज्ञान कहा जायेगा।

आभीयमासुरक्खं.....।

तुच्छा असाहणीया, सुय अण्णाणेति णं बेंति। (304) आभीतमासुरक्ख  
 तुच्छा असाधनीय श्रुतज्ञानमिति इंद ब्रुबन्दि। (304)

अर्थ - चौरशास्त्र, तथा हिंसाशास्त्र .....परमार्थशुन्य अतएन अनादरणीय उपदेशों को मिथ्याश्रुतज्ञान कहते हैं।

‘आदि’ शब्द से सभी हिंसादि पाप कर्मों के विधायक तप असमीचीन तत्व के प्रतिपादक ग्रन्थों को कुश्रुत और उनके ज्ञान को श्रुतज्ञान समझना चाहिये।

विवरीयमोहिणाणं, खओवसमियं च कम्मबीजं च।  
 विभंगो ति पउच्चूउ, समत्तणाणीण समयम्हि। (305)  
 विपरितमवधिज्ञानं श्रायोपशिमकं च कर्म्मबीजं च।  
 विभंग इति प्रोच्यते समाप्तज्ञानिनां समये। (305)

सर्वज्ञों के उपदिष्ट आगम में विपरीत अवधिज्ञान को ‘विभंग’ कहते हैं। इसके दो भेद हैं - एक क्षायोपशिमिक, दूसरा भव प्रत्यय। देव नारकियों के विपरित अवधिज्ञान को भवप्रत्यय विभंग कहते हैं और मनुष्य तथा तिर्प्तियों के विपरीत अवधिज्ञान को क्षायापशिम विभंग कहते हैं।

इस विभंग का अंतरंग करण मिथ्यात्व आदिक कर्म है। ‘विभंग’ शब्द का निरूक्तिसिद्ध अर्थ यह है कि मिथ्यात्व या अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय से अवधिज्ञान की विशिष्टता समीचीनता का भंग होकर उसमें अयथार्थता आ जाती है। इसलिए उसको ‘विभंग’ कहते हैं। इसको कर्म बीज इसलिए कहा है कि मिथ्यात्वादि कर्मों के बन्ध का वह कारण है। परन्तु साथ ही ‘च’ शब्द का उच्चारण करके यह भी सूचित कर दिया गया है कि कदाचित् नरकादि गतियों में पूर्वभव का ज्ञान कराकर वह सम्यक्त्व उत्पत्ति में भी निमित्त हो जाता है।

सदसतोर विशेषाद्यवृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् (32)

From lack of discrimination of the real, and the unreal (the soul with wrong knowledge) like a lunatic, knows things according his own whims.

वास्तविक और अवास्तविक के अन्तर के बिना यदृच्छोपलब्धि (जब जैसा रूप आया उस रूप ग्रहण होने) के कारण उन्मत की तरह ज्ञान भी अज्ञान ही है।

ज्ञेय के अनुरूप जो ज्ञान होता है उसे ‘सम्यग्ज्ञान’ कहते हैं। ज्ञेय के अनुरूप जो ज्ञान नहीं होता उसे ‘मिथ्याज्ञान’ कहते हैं। जब जीवों को श्रद्धान विपरित होता है। तब ज्ञान भी विपरीत हो जाता है। प्रकृत में ‘सत्’ का अर्थ विद्यमान और ‘असत्’ का अविद्यमान है। इनकी विशेषता न करके इच्छानुसार ग्रहण करने से विपर्यय होता है। कदाचित् रूपादिक विद्यमान है तो भी उन्हें अविद्यमान वस्तु को भी विद्यमान कहता है। कदाचित् सत् को सत् और असत् को असत् ही मानता है। यह सब निश्चय मिथ्यादर्शन के उदय से होता है। जैसे वित के उदय से आकुलित बुद्धि वाला मनुष्य माता को भार्या और भार्या को माता मानता है जब अपनी इच्छा की लहर के अनुसार माता को माता और भार्या को भार्या ही मानता है तब भी वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान नहीं है। इसी प्रकार मत्यादिक का भी रूपादिक में विपर्यय जानना चाहिए। खुलासा इस प्रकार है - इस आत्मा में स्थित कोई मिथ्यादर्शन रूप परिणाम रूपादिक की उपलब्धि होने पर भी कारण विपर्यास भेदाभेदा विपर्यास और स्वरूप विपर्यास को उत्पन्न करता रहता है। कारण विपर्यास - यथा कोई मानते हैं कि रूपादिक का एक कारण है जो अमूर्त और नित्य है। कोई मानते हैं कि पृथ्वी जाति के परमाणु अलग हैं और चार गुण वाले हैं। जल जाति के परमाणु अलग

हैं जो तीन गुण वाले हैं और वायु जाति के परमाणु अलग हैं जो एक गुण वाले हैं तथा ये परमाणु अपने समान जातीय कार्य ही उत्पन्न करते हैं। कोई कहते हैं कि पृथ्वी आदि चार भूत हैं और इन भूतों के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श ये भौतिक धर्म हैं। इन सबके समुदाय को एक रूप परमाणु या अष्टक कहते हैं। कोई कहते हैं कि पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये क्रम से कठिन्यादि, द्रवत्वादि, उष्णत्वादि और झूँझवादि गुण वाले अलग-अलग जाति के परमाणु होकर कार्य को उत्पन्न करते हैं भेदभेदविपर्यास - यथा कारण से कार्य को सर्वथा भिन्न या सर्वथा अभिन्न मानता।

**स्वरूपविपर्यास** - यथा रूपादिक निर्विकल्प है या रूपादिक है ही नहीं या रूपादिक के आकाररूप में परिणत हुआ विज्ञान ही है। उसका आलम्बनभूत और कोई बाह्य पदार्थ नहीं है। इसी प्रकार मिथ्यादर्शन के उदय से जीव प्रत्यक्ष और अनुमान के विरुद्ध नाना प्रकार की कल्पनाएँ करते हैं और उनमें श्रद्धान उत्पन्न करते हैं। इसलिए इनका यह ज्ञान मत्यज्ञान, श्रुतज्ञान या विभंग ज्ञान होता है। किन्तु सम्यग्दर्शन तत्त्वार्थ के ज्ञान में श्रद्धान उत्पन्न करता है अतः इस प्रकार का ज्ञान मतिज्ञान श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान होता है।

## ज्ञान-मद के कारण

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने। (13) स्व. सू. पृ. 571

प्रज्ञा Conceit and : अज्ञान Cack of knowledge, sufferings are caused by the operation of ज्ञानावरणीय, knowledge-obscuring karmas.

ज्ञानावरण के सद्भाव में प्रज्ञा और अज्ञान परिषह होती है, प्रज्ञा क्षयोपशमिकी है अर्थात् ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से होती है। अन्य ज्ञानावरण के उदय के सद्भाव से प्रज्ञा का सद्भाव है। अतः क्षयोपशमिकी प्रज्ञा अन्य ज्ञानावरण के उदय में उत्पन्न करती है। सर्व ज्ञानावरण कर्म का क्षय हो जाने पर मद नहीं होता। अतः प्रज्ञा और अज्ञान परिषह ज्ञानावरण कर्म के उदय से उत्पन्न होती है अर्थात् इन दोनों परिषहों की उत्पत्ति में ज्ञानावरण कर्म का उदय ही कारण है। केवल-ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय होने पर केवलज्ञान होता है केवल-ज्ञान होने पर किसी भी प्रकार अहंकार नहीं होता है। जो अत्यंत अज्ञानी है जैसे-एकेन्द्रिय आदि जीवः इनके विशिष्ट

क्षयोपशम नहीं होने से तथा तीव्र ज्ञानावरणीय का उदय होने पर विशेष ज्ञान न होने के कारण इनके भी प्रज्ञा और अज्ञान परिषह विशेष नहीं होती है। लोकोक्ति भी है- “रिक्त चना बाजे घना” भृत्यहरि ने कहा भी है-

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।

ज्ञानलवद्विर्विद्धं ब्रह्मापि तं नरं न रंजयति॥ नीतिशतक (13)

नासमझ को सहज में प्रसन्न किया जा सकता है। समझदार को उससे भी सहज में प्रसन्न किया जा सकता है परन्तु जो न समझदार है, न नासमझ है ऐसे श्रेणी के मनुष्य को ब्रह्मा भी संतुष्ट नहीं कर सकते।

न इसीलिये इंग्लिश में कहावत है-

A half mind is always dangerous. जो अल्पज्ञ होते हैं वे भयकर होते हैं। The little mind is proud of own condition. संकीर्ण मन एवं कम बुद्धि वाले अधिक अहंकारी होते हैं। अल्पज्ञ लोग अहंकार से स्वयं को सर्वज्ञ मानकर सत्य को इंकार करते हैं। महान् नीतिज्ञ चाणक्य ने बताया है-

मूर्खस्य पंच चिह्नानि गर्वी दुर्वचनी तथा।

हठी चाप्रियवादी च परोक्तं नैव मन्यते॥

मूर्खों के निम्नलिखित पांच चिन्ह हैं।

(1) अहंकारी होना (2) अपशब्द बोलना (3) हठग्राही (4) अप्रिय बोलना (5) दूसरों के द्वारा कहा हुआ हित सत्य नहीं मानना।

अबहुश्रुत का स्वरूप :

जे यावि होइ निविज्जे भद्वे लुद्वे अणिग्गहे।

अभिक्खणं उल्लवई अविणीए अबहुस्सुए॥ 2

(उत्तरा. पृ.175) सर्वो.मनो पृ.621

जो विद्या रहित है, विद्यावान् होते हुए भी अहंकारी है, जो (रसादि में) लुब्ध (गृद्ध) है, जो अजितेन्द्रिय है, बार-बार असम्बद्ध बोलता (बकता) है तथा जो अविनीत है, वह अबहुश्रुत है।

अबहुश्रुतता और बहुश्रुतता की प्राप्ति के कारण -

अहं पंचविं ठाणेहिं जेहिं सिक्खा न लब्धई।

थम्भा कोहा पमाएणं रोगेणाऽलस्सण य॥ 3

पांच स्थानों (कारणों) से (ग्रहणात्मिका और आसेवात्मिका) शिक्षा प्राप्त नहीं होती, (वे इस प्रकार हैं)-

(1) अभिमान (2) क्रोध (3) प्रमाद (4) रोग और (5) आलस्य।  
इन्हीं पांच कारणों से अबहुश्रुतता होती है।

अह अदृष्टहिं ठाणेहिं सिक्खासीले त्ति वुच्चर्वृ।

अहस्तिरे सया दत्ते न य मम्ममुदाहरे॥ (4)

नासीले न विसीले न सिया अइलोलुए।

अकोहणे सच्चरए सिक्खासीले त्ति वुच्चर्वृ॥ (5)

इन आठ स्थानों (कारणों) से शिक्षाशील कहलाता है- (1) जो सदा हंसी-मजाक न करे (2) दान्त (इन्द्रियों और मन का दमन करने वाल) हो, (3) जो दूसरों का मर्मोद्धाटन नहीं करे (4) जो अशील (सर्वथा चरित्रहीन) न हो (5) जो विशाल (दोषों-अतिचारों से कलंकित ब्रत-चारित्र वाला) न हो (6) अत्यन्त रसलोलुप न हो (7) (क्रोध के कारण उपस्थित होने पर भी) जो क्रोध न करता हो (क्षमाशील हो) और (8) जो सत्य में अनुरक्त हो, उसे शिक्षाशील (बहुश्रुतता की उपलब्धि वाला) कहा जाता है।

### अविनीत और विनीत का लक्षण :

अह चउदसहिं ठाणेहिं वट्टमाणे उ संजए।

अविणीए वुच्चर्वृ सो उ निव्वाणं च न गच्छइ॥ (6)

चौदह प्रकार से व्यवहार करने वाला अविनीत कहलाता है और वह निवाण प्राप्त नहीं करता।

अभिक्खणं कोही हवइ पबन्धं च पकुब्वई।

मेत्तिज्जमाणो वमइ सुयं लद्धूण मज्जई (7)

अवि पावपरिक्खेवी अवि मित्तेसु कुप्पई। (सर्वो.मनो. 621)

सुप्पियस्तावि मित्तस्स रहे भासइ पावगं (8)

पइण्णवाई दुहिले भद्वे लुद्वे अणिगहे।

असंविभागी अचियते अविणीए त्ति वुच्चर्वृ (9)

(1) जो बार-बार क्रोध करता है (2) जो क्रोध को लम्बे समय तक बनाये रखता है (3) जो मैत्री किये जाने पर भी उसे तुकरा दिया जाता है (4) जो श्रुत (शास्त्रज्ञान) प्राप्त करके अहंकार करता है (5) जो स्खलनारूप

पाप को लेकर (आचार्य आदि की) निन्दा करता है (6) जो मित्रों पर भी क्रोध करता है (7) जो अत्यन्त प्रिय मित्र का भी एकान्त (परोक्ष) में अवर्णवाद बोलता है (8) जो प्रकीर्णवादी (असम्बद्धभाषी) है (9) द्रोही है (10) अभिमानी है (11) रस लोलुप है (12) हो अजितेन्द्रिय है (13) असंविभागी है (साथी में आहारादि का विभाग नहीं करता) (14) और अप्रीति-उत्पादक है।

अह पन्नरसहिं ठाणेहिं सुविणीए त्ति वुच्चर्वृ।

नीयावती अचवले अमाई अकुऊहले (10)

अप्पं चाऽहिकिखवई पबन्धं च न कुब्वई।

मेत्तिज्जमाणो भर्यई सुयं लद्धुं न मज्जई (11)

ण य पावपरिक्खेवी म य मित्तेसु कुप्पई।

आप्पियस्तावि मित्तस्स रहे कलाण भासई (12)

कलह-डमरवज्जए बुद्धे अभिजाइए।

हिरिमं पडिसंलीणे सुविणीए त्ति वुच्चर्वृ (13)

### पन्द्रह कारणों से साधक सुविनीत कहलाता है-

(1) जो नग्न (नीचा) होकर रहता है (2) अचपल (चंचल नहीं) है

(3) जो अमायी (दम्भी नहीं-निश्छल) है (4) जो अकुत्तूहली (कौतुक देखने में तत्पर नहीं) है (5) जो किसी का तिरस्कार नहीं करता

(6) जो न क्रोध को लम्बे समय तक धारण किये रहता (7) मैत्री भाव रखने

वाले के प्रति कृतज्ञता रखता है (8) श्रुत (शास्त्रज्ञान) प्राप्त करके मद नहीं करता (9) स्खलना होने पर जो (दूसरों की) निंदा नहीं करता

(10) जो मित्रों पर कृपित नहीं होता (11) अप्रिय मित्र का भी एकान्त में

गुणानुवाद करता है (12) जो वाक्कलह और मारपीट (हाथापाई) से दूर रहता है (13) जो कुलीन होता है (14) जो लज्जाशील होता है और

(15) जो प्रतिसंलीन (अंगोपांगों का गोपनकर्ता) होता है, ऐसा बुद्धिमान्

साधक सुविनीत कहलाता है।

### बहुश्रुत का स्वरूप और माहात्म्य :

वसे गुरुकुले निच्चं जोगवं उवहाणवं।

पियंकरे पियंवाई से सिक्खं लद्व मरिहई (14)

जो सदा गुरुकुल में रहता है (अर्थात् सदैव गुरु आज्ञा में ही चलता है),

जो योगवान् (समाधियुक्त या धर्म प्रवृत्तिमान) होता है, जो उपधान (शास्त्राध्ययन से सम्बन्धित विशिष्ट तप) में निरत रहता है, जो प्रियकर है और प्रियभाषी है, वह शिक्षा (ग्रहण और आसेवन शिक्षा) प्राप्त करने योग्य होता है (अर्थात् वह बहुश्रुत हो जाता है)।

जैसे शंख में रखा हुआ दूध और अपने और अपने आधार के गुणों के कारण दोनों प्रकार से सुशोभित होता है (अर्थात् वह अकलुषित और निर्विकार रहता है), उसी प्रकार बहुश्रुत मिक्षु में धर्म, कीर्ति और श्रुत (शास्त्रज्ञान) भी दोनों ओर से (अपने और अपने आधार के गुणों से) सुशोभित होते हैं। (निर्मल एवं निर्विकार रहते हैं।) सर्वो.मनो. पृ.621-623

केवल धर्म-दर्शन-विज्ञान-राजनीति-कानून-पर्यावरण सुरक्षा आदि के बारे में पढ़ने-याद रखने-लिखने-भाषण करने-उपदेश देने-मार्ग दर्शन करने मात्र से कोई विशेष लाभ नहीं होता है। अपरंच कथंचित् हानियाँ भी संभव हैं। निम्न में अभी पैपरों में प्रकाशित कुछ उदाहरणों से उपरोक्त विषयों को समझने में सरलता होगी।

## 10 साल कम जीते हैं डॉक्टर

तनाव, खान-पान में लापरवाही और अनियमित दिनचर्या है मुख्य वजह, आई. एम. ए. के अध्ययन में सामने आई बात

लोगों को सेहत का पाठ पढ़ाने वाले डॉक्टर खुद तनाव और दिल की बीमारियों के शिकार हो रहे हैं। इंडियन मेडिकल एसोसिएशन की पुणे शाखा द्वारा किये गये एक अध्ययन से पता चला है कि देश में डॉक्टर औसतन 55-59 वर्ष तक जीते हैं। यह एक आम व्यक्ति की औसत उम्र से 10 वर्ष कम है। अध्ययन के तहत आई.एम.ए. की सोशल सिक्युरिटी स्कीम में पंजीकृत करीब 16,500 डॉक्टरों से जुड़े आंकड़ों का विश्लेषण किया गया। आई.एम.ए. पुणे के अध्यक्ष डॉ. दिलीप शारदा ने बताया कि पिछले पाँच साल के आंकड़े डॉक्टरों की उम्र के बारे में चिंताजनक स्थिति दर्शा रहे हैं।

एक आम भारतीय की औसत उम्र 69-72 वर्ष है जबकि डॉक्टरों का औसत जीवन 55-59 वर्ष हो गया है जो कि चौंकाने वाली बात है।

## अनियमित जीवनशैली जिम्मेदार

डॉ. शारदा ने बताया कि हर साल देशभर में इस उम्र समूह के करीब 45 डॉक्टरों की मौत हो जाती है। इसकी वजह तनाव, अनियमित जीवन शैली और व्यायाम की कमी है। डॉक्टर मोटापे, हाइपरटेंशन, डायबिटीज और दिल की बीमारियों का शिकार हो रहे हैं। डॉ. शारदा ने कहा कि इसके लिए डॉक्टर खुद जिम्मेदार हैं, क्योंकि वे व्यायाम और भोजन पर ध्यान नहीं देते हैं। ऊपर से उनकी दिनचर्या भी अनियमित होती है।

नोजिया सैयद : पुणे (दै.भास्कर)

## पर्यावरणविद् के प्रदूषित कार्य

दूसरों को ग्लोबल वॉर्मिंग का पाठ पढ़ाने वाले आर.के.पचौरी की फाइव स्टार लाइफ स्टाइल ब्रिटिश अखबार ने किया खुलासा।

पर्यावरण विशेषज्ञ डॉ. आर.के.पचौरी ग्लोबल वॉर्मिंग को रोकने के बारे में भले ही बढ़-चढ़कर बातें करते हैं, लेकिन असल जिन्दगी में वे इन पर न के बराबर अमल करते हैं। दिल्ली स्थित घर से महज 1.6 किलोमीटर दूर दफ्तर तक पहुँचने के लिए वे कार का उपयोग करते हैं। कुछ घंटे बाद ही बाद ही फिर उनका ड्राईवर कार लेकर आता है और वे एक शानदार नॉनवेज रेस्ट्रां में जाते हैं। यह दिनचर्या संयुक्त राष्ट्र इंटरगवर्मेटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज (आई पी सी सी) के प्रमुख पचौरी की है जो ग्रीनहाउस गैसों में कटौती के लिए लोगों को बसों में चलने और नॉनवेज से दूर रहने की हिदायत देते हैं। पचौरी को दफ्तर जाने के लिए इकोफ्रेडली इलेक्ट्रिक कार भी मिली है लेकिन वे टोयोटा कोरोला से सफर करते हैं। एक ब्रिटिश अखबार ने उनकी इस फाइवस्टार लाइफस्टाइल का खुलासा किया है। इसके अनुसार पचौरी के प्रत्येक सूट की कीमत 73 हजार रुपये से ज्यादा है। हिमालय के ग्लेशियरों के 2035 तक पिघलने का दावा कर विवादों में घेरे पचौरी की कंपनी के मैनेजर राजीव छिब्बर ने कहा। ‘वे इस समय काफी तनाव में हैं पिछले दो हफ्ते उनके लिए बेहद खराब रहे हैं। सूत्रों के अनुसार पचौरी की इस चिंता का सबसे बड़ा कारण कार्बन ट्रेडिंग से जुड़े संस्थानों में उनके कथित व्यवसाहियक हितों के बारे में उठ रहे सवाल हैं।

(रा.पत्रिका, डीएनए नेटवर्क, बैंगलुरु)

## अध्याय - 12

### ज्ञानामृतम् - बिन्दू

#### अध्ययन

- \* मस्तिष्क के लिये अध्ययन की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी शरीर के लिये व्यायाम की। - जोफे एडीसन
- \* ऊँचे और उत्तम अध्ययन से हृदय विशाल हो जाता है - स्वेट मार्टन
- \* बिना चिन्तन का अध्ययन तो परिश्रम नष्ट करता है, बिना शिक्षा प्राप्त किये विचार करना भयावह है। - कन्फ्यूशियस
- \* जितना हम अध्ययन करते हैं, उतना ही हमको अपने अज्ञान का अभ्यास होता जाता है। - विवेकानन्द
- \* आज पढ़ना सब जानते हैं, पर क्या पढ़ना चाहिये यह कोई नहीं जानता। - बनार्ड शॉ (प्रेरक सूक्तियाँ)

#### अध्यात्म -

- \* अध्यात्म कोई संगठन नहीं होता। इसमें संगठन की गरिमा नहीं, आन्तरिक अकेलेपन की गरिमा है। संगठन की गरिमा है व्यवहार में है। जैन, बौद्ध, ईसाई, वैदिक, इस्लाम - ये सब अध्यात्म या धर्म के नाम नहीं संगठनों के नाम हैं। - संत अभिताभ
- \* अध्यात्म के लिये पहली जरूरी चीज है निर्भयता। कायर कभी नैतिक नहीं हो सकता। जहां पवित्रता है वहीं निर्भयता रह सकती है। - गांधी
- \* भारतीय आध्यात्म जीवन की समस्याओं से अलग रहकर संकीर्ण दायरे में ही बंद रहा है। जीवन की वास्तविकताओं से आध्यात्म को जोड़ने की जरूरत है, इससे अलग रहकर आखिर कौन सा आध्यात्म विकसित किया जा सकता है? - जय प्रकाश नारायण
- \* धर्म सम्बन्धी झगड़े-फसाद से केवल यह प्रकट होता है कि लोगों में आध्यात्मिकता नहीं है। धार्मिक झगड़े सदा खोखली बातों के लिये होते हैं। - विवेकानन्द

\* देश और जनता की वर्तमान समस्याओं के प्रति उदासीन रहा जाय, तो कम से कम मुझे अध्यात्म की परिभाषा मान्य नहीं है। जनता की वर्तमान स्थिति को सुधारना उसकी गरीबी और गुलामी को दूर करना ही हमारे प्राथमिक आध्यात्मिक कर्तव्य हैं। - जयप्रकाश नारायण

\* जिस अहिंसा, तप या त्याग से हम राग-द्वेष पर विजय प्राप्त नहीं कर सके, वह अहिंसा, तप या त्याग सब बेकार एवं आध्यात्मिक दृष्टि से अनुपयोगी है। राग-द्वेष की विजय ही सबसे बड़ी जीत एवं सबसे बड़ी वीरता है। आज के युग में वीतरागता कोई धार्मिक रुद्धिवाद नहीं, मनोवैज्ञानिक अनिवार्यता है। - डॉ. रामजीसिंह

\* जिस तरह वर्ग-निराकरण अनिवार्य है, उसी तरह इन धार्मिक सम्प्रदायों का निराकरण भी अनिवार्य है। वर्ग भी नहीं रहेंगे और सम्प्रदाय भी नहीं रहेंगे, तभी विशुद्ध अध्यात्म का विकास होगा। - दादा धर्माधिकारी

#### अनुभव :

\* सोचो, विचारो, विश्लेषण करो। खोजो और पाओ अपने अनुभव से तब स्वीकार करो। मैं जो कुछ कहूँ उसे मेरे प्रति आदर दिखाने के लिये मत स्वीकार करो। यदि आपको ठीक न लगे तो उसे अस्वीकार कर दो। - बुद्ध

\* अनुभव हमें कभी भी गुमराह नहीं कर सकता; हम लोग सिर्फ अपने निर्णय अपनी व्याख्या अथवा घटित घटनाओं को समझने की भूल के कारण गुमराह होते हैं। - लियोनार्डो द विंसी

#### उपदेश :

\* मिशनरी शिक्षा देते हैं, चिकित्सा करते हैं। ऐसे ही हर धर्म-सम्प्रदाय वाले निश्चित करें कि किस क्षेत्र में क्या-क्या करना जरूरी है। उपदेश के साथ प्रत्यक्ष सेवा-कार्य से उनकी पहचान होनी चाहिये। - शरदकुमार साधक

\* शिष्यों! मैंने बेडे की भाँति पार जाने के लिये तुम्हें धर्म का उपदेश दिया है, पकड़कर रखने के लिये नहीं। - बुद्ध

\* यदि हम सद्गुण के उपदेशों को आचरण में लाएं तो हमारे अन्तर में

- \* छिपी अपार आध्यात्मिक सम्पत्ति हमें मिल जाएगी। - गुरु नानक
- \* शब्दों की अपेक्षा कर्म अधिक अच्छा उपदेश देते हैं। - स्वामी रामतीर्थ
- \* उपदेश देना सरल है, उपाय बताना कठिन है। - रवीन्द्रनाथ ठाकुर
- \* उदाहरण प्रस्तुत करना उपदेश देने से अच्छा है। - अंग्रेजी कहावत
- \* सबसे अच्छे उपदेश उनके होते हैं जो मर चुके हों, क्योंकि तब उन्हें बड़े धैर्य और आदर के साथ सुना जाता है। - सैमुअल जॉनसन
- \* एक विशेष कार्य के लिये अभिरुचि खोजो और अपने को उसी के लिये समर्पित कर दो। - मैक्समूलर
- \* महात्माओं के उपदेश द्रव्य, धेत्र, काल, भाव को लक्षित करते होते हैं, अतः वे उपकारक एवं कष्टहारक प्रमाणित होते हैं। किन्तु अन्धभक्त अनुयायी समय की अपेक्षा को न देखते हुए उनको हर समय में लागू करना चाहते हैं, इसी कारण परिणाम शून्य में आता है। - आचार्य चन्दनमुनि
- \* मेरे गुरुदेव का मानव जाति के लिये यह सन्देश है कि समाज को उपदेश देने से पहले स्वयं धार्मिक बनों और सत्य की उपलब्धि करो। - विवेकानन्द

### जिज्ञासा

- \* पश्चिम के मानस में पूर्वाग्रह के बजाय जिज्ञासा अधिक है। इस जिज्ञासा वृत्ति के कारण ही वह आज ज्ञान-विज्ञान के शिखरों को छू रहा है। - मुनि रूपचन्द्र
- \* हमारे लिये यह आवश्यकता नहीं है कि हम सहज विश्वास करने लगें। इसके बिल्कुल विपरीत हमारे अन्दर सही-सही जानने की इच्छा पैदा होनी चाहिये। - बर्ट्रेंड रसेल
- \* हम सभी पूछते हैं-क्या वह धनी है? यह कोई नहीं पूछता कि वह सज्जन है। - सेनेका
- \* यह मत पूछो कि तुम्हारा देश तुम्हारे लिये क्या कर रहा है? वरन् यह पूछो कि तुम अपने देश के लिये क्या कर सकते हो। - (जान.एफ.केनेडी)

- \* मैं सिर्फ एक ही बार निश्चित हुआ हूँ। वह भी तब जब एक आदमी ने मुझसे पूछा - “तुम कौन हो?” - खलील जिब्रान

### ज्ञान -

- \* वही वास्तव में पंडित है जो जीवन के रहस्यों को जानकर आचरण में ला सके। - भगवान् महावीर
- \* पालने से लेकर कब्र तक ज्ञान प्राप्त करते रहो। - कुरान शरीफ
- \* अपने अज्ञान का आभास होना ही ज्ञान की तरफ बड़ा कदम है। - डिजरायली
- \* ज्ञान ही काफी नहीं है, इस पर अमल भी करना होता है। इच्छा ही काफी नहीं है, इस पर काम भी करना होता है। - गेटे
- \* विकसित हो रहा ज्ञान ही अच्छे लोगों के विचार हैं। - मिल्टन

### तत्त्व और तत्त्वज्ञानी

- \* इंसान को सामाजिक कार्यों के लिये प्रेरित करने वाले चार महान् तत्त्व हैं - भूख, प्यार, अहंकार तथा बड़ी शक्तियों का भय - विलियम ग्राहम
- \* तू अपने ओठ बन्द रख, नेत्र बन्द रख, कान बन्द रख, इतने पर भी तुझे सत्य का गूढ़ तत्त्व न मिले तो मेरी हँसी उड़ाना। - मौलाना रूमी
- \* जो सत्य की झलक के प्रेमी हैं, वही तत्त्वज्ञानी हैं। - सुकरात

### पुस्तक

- \* पुस्तक और दोस्त कम और अच्छे, गुणवत्ता वाले होने चाहिये। - अज्ञात
- \* जो पुस्तक तुम्हें अधिक सोचने के लिये विवश करती है, वह तुम्हारी सबसे बड़ी सहायक है। - जवाहर लाल नेहरू
- \* समाज विचार और पुस्तक विमुख होता जा रहा है। पुस्तक की मृत्यु मानवीय अस्मिता और उसकी श्रेष्ठ उपलब्धि की भी मृत्यु होगी। - प्रो.श्यामचरण दुबे

\* अच्छी किताबें सिर्फ शरीर को ही नहीं वरन् आत्मा को भी समृद्ध करती हैं, इसलिये पढ़ने की आदत डालनी चाहिए।

- डॉ. अब्दुल कलाम

\* हमारे अन्दर ज्ञान से जमे हिमखण्ड को तोड़ने के लिये पुस्तक एक कुल्हाड़ी है।

- कापाका

\* असभ्य राष्ट्रों को छोड़कर सम्पूर्ण विश्व पर पुस्तकों का ही शासन है।

- वाल्तेयर

\* मैं नरक में भी अच्छी पुस्तकों का स्वागत करूँगा। क्योंकि उनमें वह शक्ति है कि जहाँ वे होंगी वहाँ स्वर्ग बन जायेगा।

- लोकमान्य तिलक

\* अच्छी पुस्तकें बीते कल का इतिहास बताने के अलावा नैतिकता और प्रमाणिकता से जीवन जीने का मार्ग प्रशस्त करती हैं

- ललितप्रभ सागर

### **प्रतिभा और प्रतिभावान्**

\* प्रतिभावान् का एक लक्षण है कि वह मान्यताओं को हिला देता है।

- गेटे

\* प्रतिभाशाली और पावन हृदय वाले व्यक्ति जिन विचारों को संसार में फैलाते हैं, उनसे संसार में परिवर्तन आता है।

- एमर्सन

\* प्रतिभा तो स्वतन्त्रता के वातावरण में ही मुक्त सांस ले सकती है।

- जान स्टूअर्ट मिल

\* प्रतिभा जाति पर निर्भर नहीं होती। जो परिश्रमी हैं, वही प्रतिभावान् होता है।

- शाह अब्दुल लतीफ

\* प्रतिभा एक प्रकार का आचरण है और आचरण भी एक प्रकार का आवरण है।

- नीत्शे

\* सत्य को जानने और प्रकट करने के लिए नहीं बल्कि असत्य की पहचान करने और उसको प्रकट करने के लिए बौद्धिक प्रतिभा की जरूरत है।

- टॉल्सटॉय

\* प्रतिभा अपने प्रति अंडिंग ईमानदारी को कहते हैं। - जैनेन्द्र कुमार

### **विज्ञान**

\* विज्ञान का सम्बन्ध केवल पुस्तकीय ज्ञान से नहीं है, बल्कि विज्ञान का सम्बन्ध व्यक्ति की सोच से भी है। विज्ञान की शिक्षा व्यक्ति को किसी भी विषय को देखने के लिये एक ठोस और स्पष्ट दृष्टि देती है।

- डॉ. शंकरदयाल शर्मा

\* विज्ञान को सर्वप्रिय बनाने के परिश्रम का अभिप्राय यह है कि कुछ स्पष्ट धार्मिक भूलों का मूलोच्छेद किया जाय और लोगों की शक्तियों को अधिक उपयोगी एवं विवेकपूर्ण मार्ग में लगाया जाय।

- स्वामी रामतीर्थ

\* धर्मरहीत विज्ञान लंगड़ा है और विज्ञान रहित धर्म अन्धा।

- अल्बर्ट आइंस्टीन

\* हम जानते हैं कि जो कुछ हमारे पास मूल्यवान है वह सब विज्ञान की ही देन है। एक मात्र विज्ञान ही सभ्य बनाने वाला है, इसने गुलामों को मुक्त किया, नंगों को कपड़े पहनाये हैं, भूखों को भोजन दिया है। जीवन को लम्बा किया है। हमें चूल्हों वाले घर दिये हैं, चित्र दिये हैं, पुस्तकें दी हैं जहाज व रेलें दी हैं और ऐसे इंजन दिये हैं जो बिना थके असंख्य पहियों को चुमाते रहते हैं। विज्ञान ही वास्तविक मुक्तिदाता है। यह ईमानदारी को ढोंग से अधिक महत्व देगा और दिमागी सच्चाई को अन्धश्रद्धा से।

- कर्नल इंगरसोल

\* सहस्रों लेखकों एवं विद्वानों ने ज्ञान की वृद्धि, भग्न-निवारण और वैज्ञानिक विचार के वातावरण की रचना के लिए श्रम किया है, जिसके बिना इस शताब्दी के चमत्कार असम्भव थे और इसमें संदेह नहीं कि नवीन दिशाओं में उद्योगों का विस्तार संसार के सारे पूँजीपतियों की अपेक्षा वैज्ञानिकों की प्रतिभा के कारण ही अधिक हुआ है।

- प्रिंस क्रोपाटकिन

### **विद्या**

\* जिस विद्या में कर्म की शक्ति नहीं, स्वतन्त्र रूप से सोचने की वृद्धि नहीं, खतरा उठाने की प्रवृत्ति नहीं वह विद्या निस्तेज हैं

- विनोबा भवे

- \* जिसने विद्या पढ़ी और आचरण नहीं किया-यह उसके समान है।  
जिसने बैल जोता और बीज नहीं बिखेरा। - शेख सादी
- \* विद्वान् तो बहुत होते हैं, लेकिन विद्या के साथ जीवन का आचरण करने वाले कम होते हैं। - सरदार पटेल
- \* विद्या केवल पुस्तकीय ज्ञान को नहीं कहते। नीच की विद्या उसे चालकी करना सिखाती है। - चाणक्य

### शिक्षक

- \* प्रवृत्ति को अपना शिक्षक बनाओ। - वड्सर्वथ
- \* यदि गुरु भी अभिमान में आकर कर्तव्य-अकर्तव्य का ज्ञान खो बैठे और कुकर्म पर चलने लगे, तो दण्ड देना जरूरी हो जाता है। - वात्मीकि

### शिक्षा

- \* शिक्षा का महान् उद्देश्य ज्ञान नहीं, कर्म है। - हर्बर्ट स्पेसर
- \* कभी-कभी हमें उन लोगों से शिक्षा मिलती है जिन्हें अभिमान के कारण हम अज्ञानी समझते हैं - प्रेमचन्द्र
- \* आजकल शिक्षा तो रोटी कमाने का धन्धा हो गई है। यह शिक्षा नहीं मजदूरी है। इससे राष्ट्र की उन्नति नहीं अवनति हो रही है। - लोकमान्य तिलक

- \* ऐसी सलाह न दो जो अति सुन्दर हो, बल्कि ऐसी सलाह दो जो अति लाभदायक हो। - सोलन
- \* शिक्षा प्राप्त करने के तीन आधार-स्तम्भ हैं - अधिक निरीक्षण करना अधिक अनुभव करना एवं अधिक अध्ययन करना। - केथरॉल
- \* शिक्षा व आचरण का समन्वय किया जाना चाहिए। ज्ञान कोई कण्ठस्थ करने की वस्तु नहीं है, अपितु जीवन में उत्तराने की चीज़ है। व्यक्ति को हर समय कुछ न कुछ सीखने की प्रवृत्ति विकसित करनी चाहिए। क्योंकि शिक्षा कभी पूरी नहीं होती है। जीवन पूरा हो जाता है। - ललितप्रभ सागर

- \* सच्ची शिक्षा का पूर्ण लक्ष्य यह है कि न केवल वह सच्चाई को बताये अपितु उस पर आचरण भी कराये। - मेरी बेकर ऐडी
- \* शिक्षा का ध्येय मनुष्य के ज्ञान में वृद्धि करना ही नहीं, अपितु उसका ध्येय मनुष्य के मस्तिष्क को विकसित करना है, भरना नहीं। - डाडेट

- \* शिक्षा जीवन की परिस्थितियों का सामना करने की योग्यता का नाम है। - डॉ. जान जी हिबन
- \* शिक्षा देने वाले अपने जीवन से अपने आचरण से शिक्षा नहीं दे रहे हैं। या तो देने वाले में बोध का अभाव है अथवा लेने वाले निहायत बुद्धि हैं। ये दोनों वर्ग भ्रान्ति में हैं। - ओशो / रजनीश
- \* शिक्षा ज्ञान के प्रसार की प्रक्रिया है इसलिए ज्ञान को गुप्त रखने और उसे जटिल बनाने के प्रयत्नों को भी शिक्षा प्राप्त करने के बुनियादी अधिकार का विरोध करना ही कहा जायेगा। - डॉ. नन्दकिशोर आचार्य

### संस्कार

- \* अच्छे और बुरे संस्कारों में फर्क ज्यादा नहीं; अच्छे संस्कारों वाला व्यक्ति दूसरे के अधिकारों की रक्षा करता है न कि अपने अधिकारों के लिए झगड़ा। - कालाइल

### संस्कृति

- \* अब धर्म कोई सम्प्रदाय नहीं बल्कि एक आध्यात्मिक अनुभव है और उसी के आधार पर भावी संस्कृति का विकास होगा। - नन्दकिशोर आचार्य
- \* विश्व के सर्वोत्कृष्ट कथनों और विचार का ज्ञान ही संस्कृति है। - मैथ्यु आर्नल्ड
- \* व्यक्ति की भाँति राष्ट्र भी जीवित रहते हैं और मरते हैं किन्तु संस्कृति का कभी पतन नहीं होता। - मैजिनी
- \* मनुष्य की संस्कृति क्या है? यह आत्म-संशोधन की, आत्मोद्धार की, अपने-आप को मुक्त करने की प्रतिक्रिया है। - रामधारीसिंह दिनकर
- \* सभ्यता शरीर है, संस्कृति आत्मा, सभ्यता जानकारी और भिन्न क्षेत्रों 237

में महान् एवं दुःखदायी खोज का परिणाम है। संस्कृति ज्ञान का परिणाम है।

- श्री प्रकाश

- \* संस्कृति का विकास होता है तो हम अपने मन और अपनी वासनाओं से हिंसा और शंका हटाते हैं, स्नेह और साहस की स्थापना करते हैं। संस्कृति हमारी चेतना को परिष्कृत करती है, और तब यह निश्चित है कि हमारे विचार, आचार, व्यवहार भी परिष्कृत होंगे सुन्दर होंगे।

- आचार्य क्षितिमोहन सेन

- \* संयम संस्कृति का मूल है। विलसिता, निर्बलता और अनुकरण के वातावरण में संस्कृति का विकास नहीं होता है। - काका कालेलकर

- \* संस्कृतियों का मूल आधार आध्यात्मिक होता है। अध्यात्म में जो शाश्वत दृष्टि होती है-जिसे परोनिपल फिलॉसफी कहते हैं। वह सब जगह एक सी है। उस की बुनियादी मान्यता है कि जो पिण्ड में है मूलतः वही तत्व ब्रह्माण्ड में है और जो ब्रह्माण्ड में है वही तत्व पिण्ड में है।

- डॉ. छगनलाल मेहता

- \* संस्कृति वह सत्ता है जो उस में भाग लेने वाले सब लोगों को सिर्फ मिलाती ही नहीं उन में यह बोध भी जगाती है कि हम एक हैं। - अज्ञेय

- \* किसी भी संस्कृति की प्रकृति, स्वरूप और गति का निर्धारण वे आदर्श या मूल्य करते हैं जिसकी सिद्धि में ही कोई समाज या व्यक्ति अपने अस्तित्व की सार्थकता का बोध करता है। संस्कृति को इसीलिए मूल्य-दृष्टि कहा जाता है क्योंकि उन सनातन मूल्यों के अर्जन की प्रक्रिया ही सांस्कृतिक प्रक्रिया है।

- नन्दकिशोर आचार्य

### सच्चरित्रता

- \* बहुत विद्वान् होने से मनुष्य आत्म-गौरव नहीं प्राप्त कर सकता। इसके लिए सच्चरित्र होना आवश्यक है। चरित्र के बिना विद्या का मूल्य बहुत कम है।

- प्रेमचन्द्र

- \* सच्चरित्रता के अभाव में केवल बौद्धिक ज्ञान सुगन्धित शब्द के समान है।

- गांधी

### सदाचार

- \* मनुष्य को उसके जन्म से नहीं बल्कि जीवन में उसके क्रियाकलापों से परखा जाना चाहिए। मुख्य बात है। सदाचार। अच्छे चारित्र वाला और अच्छे कर्म करने वाला मनुष्य अच्छा होता है और ओछे चारित्र वाला तथा ओछे कर्मों वाला व्यक्ति नीच होता है।

- बुद्ध

- \* विश्व में सबसे स्वाभाविक सुन्दरता ईमानदारी और नैतिक सच्चाई है।

- शैफ्टसबरी

- \* सदाचार के आधार पर लोकाचार बनता है और लोकाचार हमेशा सदाचार हो, ऐसा जरूरी नहीं है। लोकाचार की स्थापना सदाचार पर होना जरूरी है लेकिन प्रत्येक लोकाचार सदाचार नहीं होता। सदाचार नहीं होता तो लोकाचार भी सदाचार का रूप धारण कर लेता है। इसलिए लोकाचार के विरुद्ध भी युद्ध करना पड़ता है।

- डॉ. छगन मेहता

- \* सदाचार से धर्म उत्पन्न होता है तथा धर्म से आयु बढ़ती है। - वेदव्यास

### साहित्य

- \* साहित्य का पतन राष्ट्र के पतन का घोतक है।

- अज्ञात

- \* जिस प्रकार मनुष्य का व्यक्तित्व और चिन्तन अपने आस-पास के वातावरण से प्रभावित होता है उसी प्रकार वह साहित्य से भी प्रभावित होता है।

- डॉ. शंकरदयाल शर्मा

- \* समाज नष्ट हो सकता है। राष्ट्र भी नष्ट हो सकता है किन्तु साहित्य का नाश कभी नहीं हो सकता।

- \* साहित्य वाणी का विकास नहीं है, वरन् वह विचार की साधना है। साहित्य का काम विकार का शमन करके संस्कार को जाग्रत करना और परिमार्जित करना है।

- नेमिशरण मित्तल

- \* प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिविम्ब होता है। -(आचार्य रामचन्द्र शुक्ल)

- \* साहित्य को समझने की अधिकांश विसंगतियां तब पैदा होती हैं। जब हम यह मान लेते हैं कि साहित्य कुछ जानने की प्रक्रिया में नहीं रचा

जाता बल्कि किसी और प्रक्रिया से जाने हुए सत्य को सम्प्रेषित करने की एक विधि है।

- नन्दकिशोर आचार्य

\* साहित्य एक अनन्य संस्कृति की अनन्य निजी अभिव्यक्ति होता है। अगर हम मान लेते हैं कि साहित्य की आवश्यकता नहीं हैं तो हम स्वीकार कर रहे हैं कि संस्कृति की आवश्यकता नहीं हैं। - अज्ञेय

\* साहित्य जन-रूचि का पथ-प्रदर्शक होता है उसका अनुगामी नहीं।

- प्रेमचन्द

\* साहित्य की शक्ति अनन्त है। लेखकों की कल्पना लोगों का मानस बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

- कृष्णकांत

### सिद्धान्त

\* सिद्धान्तों के लिये लड़ना तो आसान है पर उनको जीवन में उतारना आसान नहीं है।

- अज्ञात

\* सफल इंसान बनने की कोशिश करने के बजाए सिद्धान्तों वाला इंसान बनने की कोशिश कीजिए।

- अल्बर्ट आईन्स्टीन

\* विकास का सबसे बड़ा सिद्धान्त मानवीय रूचि में निहित है।

- जार्ज इलियट

\* धर्म जब विवेक की अग्नि से संयुक्त होता है तो ही उससे स्वतन्त्रता, सत्य और शक्ति का उद्भव होता है। मनुष्य निरन्तर दुःख और पीड़ा में ढूबता जा रहा है; जीवन प्रतिक्षण पशुता की ओर झुकता जाता है और हम हैं कि अपने सीखे हुए सिद्धान्त दुहराये जा रहे हैं एवं पत्थरों के पुराने मन्दिरों में सदा की भाँति सिर झुकाये जा रहे हैं। धर्म, धर्म, धर्म, का कितना विचार चलता है लेकिन परिणाम क्या है।

- ओशो/रजनीश

\* अपने ही मूल सिद्धान्तों को शंका से देखना सभ्य व्यक्ति का लक्षण है।

- ओलिवर बेण्डेल होमरू

\* जिन सिद्धान्तों को हम ही जीवन में नहीं उतार सके या नहीं उतार सकते, वे सिद्धान्त किसी को भी कहकर प्रभावित करेंगे।

- भंवरमल सिंधी

### लेखक और लेखन

\* जो रक्त से लिखता है, उसकी बात पढ़ी नहीं दिल में उतारी जाती है।

- नीत्शे

\* आज यह आवश्यक हो गया है कि साहित्यकार सत्ता से मुक्त होकर लोकशक्ति का जागरण करे, अधिनायकवाद और वैज्ञानिक आंतकवाद के मुकाबले में खड़ा होकर विचार-स्वातन्त्र के लिये नयी भूमिका का निर्माण करे।

- नेमिशरण मित्तल

\* शब्दों के सागर में अर्थ का मोती छिप गया है। उसे खोजना एक प्रयोजन होना चाहिए-लेखन का। पाठक को कोरे शब्द नहीं देना है, एक चिन्तन देना है।

- आचार्य महाप्रश्न

\* कलम जिस दिन हिन्दु या मुसलमान हो गई, समझो उसी दिन इंसान मर गया।

- अश्विनीकुमार

\* यदि चाहते हो कि तुम्हें मरते ही लोग भूल न जायें तो पठनीय लिखो या कुछ ऐसा करो जो लिखने योग्य है।

- वैंजामिन फ्रैंकलिन

\* आदमी की पीड़ा और उसके दर्द की ताकत ही लेखन की शक्ति है।

- वी.एस.नायपाल

\* शब्द उनके लिए होते हैं जो वजन सह सकते हैं। हल्के लोगों के लिए शब्द व्यर्थ हैं।

- नीत्शे

### शास्त्र

\* विचार से बड़ा कोई शास्त्र नहीं और चिन्तन से बड़ा कोई शास्त्र नहीं है।

- बाल कवि वैरागी

\* जो लोग मनुष्य से धृणा करके कुरान, वेद, बाइबिल, चूम रहे हैं, उनसे किताबें और ग्रन्थ छीन लो। ढोगियों का गिरोह मनुष्य को मार कर ग्रन्थ पूज रहा है। मनुष्य ही लाया है ग्रन्थ, ग्रन्थ नहीं लाया किसी मनुष्य को।

- नजरुल इस्लाम

\* शास्त्रों के सुन्दरतम वर्णन यदि जीवन में न उतरें तो वे काँच की अलमारी में सजी हुई मिठाई से ज्यादा मूल्यवान नहीं हैं।

- आचार्य चन्दन मुनि

- \* स्वार्थ की चेतनाएं, नफरत की दीवारें, संकुचित मनोवृत्तियाँ नासमझ दुराग्रह के बीच एक दूसरे को तोड़ने वाली भावनाएं दुनियाँ की किताब या शास्त्र के अध्याय नहीं हो सकते हैं। - चन्द्रप्रभ सागर
- \* ग्रन्थ बहुत ऊँचे हैं, उनके उपदेश बड़े मार्मिक एवं तात्त्विक हैं, पर उनका हमारे ऊपर असर कितना है? - आचार्य चन्दन मुनि
- \* जब धर्म-पुस्तकों का अध्ययन और उनके अर्थ करने की छूट सिर्फ उन लोगों को ही हो, जो उसी धर्म का बिल्ला लगाये हुए हैं तो वह जगत् के लिए एक अशुभ दिन होगा। - गांधी
- \* आदि सत्पुरुष का निर्माण किसी शास्त्र द्वारा नहीं हुआ है। आदि सत्पुरुष ने ही किसी न किसी शास्त्र का निर्माण किया है और दुनिया के सभी शास्त्र और ग्रन्थ निःशेष हो जाएं तो भी दुनिया में सत्पुरुष होते रहेंगे और नए-नए शास्त्रों का निर्माण होता ही रहेगा। - किशोरलाल मशरू वाला
- \* प्राचीन पुस्तकें, शास्त्र जब भी उठाओ, तब उन्हें इस विश्वास से मत उठाओं कि उन पुस्तकों में दिये हुए प्रत्येक शब्द के गुलाम बन जाओ। - स्वामी रामतीर्थ
- \* यदि गुरु भी अभिमान में आकर कर्तव्य-अकर्तव्य का ज्ञान खौ बैठे और कुर्कम पर चलने लगे तो दण्ड देना जरूरी हो जाता है। - वाल्मीकि

## शिक्षाया अवहेलना

अध्यास्ते संसदः पीठं पूर्ण शिक्षामुपेक्ष्य यः।

शारीपरं बिना सोऽयमक्षेत्रव्याति धूर्तधीः (1) कुरल का. पृ.41

बिना पर्याप्त ज्ञान के सभामंच पर जाना वैसा ही है जैसा कि बिना चोपड़ के पासे खेलना।

अनभ्यस्य श्रुतं यो वा काङ्क्षते वाग्मिगौरवम्।

युवसु छ्यातिसाकाङ्क्षानुरोजा रमणीक सः (2)

अस्वाध्यायी उस अनपढ़ व्यक्ति को देखो, जो प्रभावशाली वक्ता बनने की वांछा कर रहा है। उसकी वांछा वैसी ही है जैसी कि बिना उरोजवाली स्त्री का पुरुषों को आकर्षित करने की इच्छा करना।

सुशिक्षितानां पुरो धैर्यान् मूर्खेन्मौनमास्थितः।

गण्यते शिक्षितो लोकैर्विदुषां सोऽपि योगतः (3)

विद्वानों के सामने यदि अपने को मौन बनाये रख सको तो मूर्ख आदमी भी बुद्धिमान् गिना जायेगा।

कियानपि भवेद् धीमान् शिक्षाशून्यो हि मानवः।

आद्रियते परं नैव विद्वद्विस्तस्य मंत्रणा (4)

शिक्षाशून्य (अनपढ़) व्यक्ति चाहे जितना बुद्धिमान् हो, विज्ञान उसकी सलाह को कोई महत्व न देंगे।

अवहेलितशिक्षो यः पंडितं मन्यते निजम्।

सुस्पष्टं सोऽपि लज्जेत यदा भाषेत संसदि (5)

उस व्यक्ति को देखो जिसने शिक्षा की अवहेलना की है और जो अपने ही मन में बड़ा बुद्धिमान् है सभा गोष्ठी में वह अपना भाषण देते ही लज्जित हो जायेगा।

अशिक्षितजनस्याहो दशोषरमहीनिभा।

स जीवत्यतो नास्ति वार्ता तद्विषयेऽपरा (6)

अशिक्षित (अनपढ़) व्यक्ति की दशा उस ऊसर भूमि के समान है जो खेती के लिये अयोग्य है। लोग इसके बारे में केवल यही कह सकते हैं कि वह जीवित है; अधिक कुछ नहीं।

विदुषां वैभवहीनत्वं मनसे नैव रोचते।

आद्यता किन्तु मूढानामप्रियास्ति ततोऽधिका (7)

विद्वान का निर्धन होना निःसंदेह बहुत बुरा है, परन्तु मूर्ख के अधिकार में सम्पत्ति का होना तो और भी बुरा है।

भव्यानि सूक्ष्मतत्त्वानि यबुद्धिनाविगाहते।

तद्देहस्य सुसौन्दर्य मृण्मूर्तेरिव मण्डनम् (8)

सूक्ष्म तथा शुभ तत्त्वों में जिसकी बुद्धि का प्रवेश नहीं; उसकी सुन्दर देह अलंकृत एक मिट्टी की मूर्ति के सिवाय और कुछ नहीं है।

उच्चवंशप्रसूतोऽपि लघुतामेत्यशिक्षितः।

विद्यावृद्धः कुवंश्योऽपि लभते किन्तु गौरवम् (9)

उच्च कुल में जन्म लेने वाले मूर्ख का उतना ही आदर नहीं होता जितना निम्नकुलोद्धव विद्वान् का।

पशुभ्योऽयं नरो यावान् साधु र्भवति भूतले।  
अशिक्षितेभ्यो वरस्तावान् शिक्षितोऽयस्ति विश्रुतः (10) कु.का. 41

मनुष्य पशुओं से कितना उच्च है? उसी प्रकार अशिक्षितों से शिक्षित उतना ही श्रेष्ठ है।

### ज्ञान एवं अज्ञान

- \* जीवन में परिश्रम करके ही ज्ञान की प्राप्ति की जा सकती है। - रस्किन
- \* जहाँ अज्ञान है वहाँ दुःख आकर ही रहेगा। - अरविंद
- \* जब तक भगवान् दूर व बाहर प्रतीत होते हैं, तब तक अज्ञान है, परन्तु जब अपने अंतर में उनका अनुभव होता है तथा यथार्थ ज्ञान का उदय होता है, तब उन्हें हृदय मंदिर और जगत मंदिर दोनों स्थानों पर देखा जा सकता है। - रामकृष्ण परमहंस
- \* जो कुछ मुझे ज्ञान है वह यही कि मेरे पास इच्छात्र भी ज्ञान नहीं है। - सुकरात
- \* जहाँ अज्ञानता का बखान हो रहा हो, वहाँ बुद्धिमानी दिखाना भी मूर्खता है। - बाल गंगाधर तिळक
- \* जितना हम अध्ययन करते हैं, उतना ही हमको अपने अज्ञान का आभास होता है। - स्वामी विवेकानन्द
- \* गाली के उत्तर में मूर्ख गाली दे बैठते हैं ज्ञानी मौन से जवाब देते हैं। - प्रेमचन्द
- \* किसी व्यक्ति में कितना ज्ञान है इसका पता इस बात से लगता है कि उसका मन विषयों में कितना अटका हुआ है या उनसे मुड़ा हुआ है। - तुलसीदास
- \* कभी-कभी उन लोगों से भी शिक्षा मिलती है जिन्हें हमने अज्ञानी समझा था। - प्रेमचन्द

- \* उस विषय में अज्ञानी रहो, यह ज्यादा बेहतर है बजाय अधूरा ज्ञान प्राप्त करने के। - साइरस
- \* इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निसंदेह कुछ भी नहीं है। - वेदव्यास
- \* अज्ञान ही पाप है, शेष पाप तो उसकी छाया मात्र है। - ओशो
- \* अज्ञान के समान दूसरा कोई बैरी नहीं। - चाणक्य
- \* अशिक्षित रहने से पैदा न होना अच्छा है, क्योंकि अज्ञान सब बुराईयों की जड़ है। - नेपोलियन
- \* अज्ञान प्रकाश को जाग्रत नहीं कर सकता, लेकिन घ्रणा तो ज्ञान के प्रकाश को भी बुझा देती है। - रविन्द्रनाथ ठाकुर
- \* अज्ञान की दासता से मृत्यु श्रेयस्कार है संतोष से बढ़कर कोई सुख नहीं और धैर्य से बड़ी शक्ति नहीं। - सत्य साई बाबा
- \* अज्ञानी रहने से तो जन्म न लेना ही अच्छा है, क्योंकि अज्ञान ही सब दुःखों की जड़ है। - नैपोलियन बोनापार्ट
- \* अज्ञान जहाँ वरदान हो, वहाँ बुद्धिमानी दिखाना मूर्खता है। - ग्रेविल
- \* अज्ञान अंधकार स्वरूप है दीया बुझाकर भागने वाला यही समझता है कि दूसरे उसे देख नहीं सकते, तो उसे यह भी समझ रखनी चाहिए कि वह ठोकर खाकर गिर भी सकता है। - रामचन्द्र शूक्ल
- \* अज्ञानी के लिए मौन से श्रेष्ठ कुछ नहीं और यदि यह युक्ति वह समझ ले तो अज्ञानी न रहे। - शेख सादी
- \* अज्ञान प्रभु का श्राप है। ज्ञान वह पंख है, जिससे हम स्वर्ग में उड़ते हैं। - शेक्सपीयर
- \* अज्ञान से मुक्त होकर ही हम पाप से मुक्त हो सकते हैं। अज्ञान दुख का कारण है। जिसका फल पाप है। - स्वामी विवेकानन्द
- \* अपने अज्ञान का आभास होना ही ज्ञान की ओर एक बढ़ा कदम है। - डिजरायली

- \* अपनी अज्ञानता का अहसास होना बुद्धिमता का पहला लक्षण है। - इमर्सन
- \* अपनी अज्ञानता का आभास ज्ञान का प्रथम सौपान है। - डिजरायली
- \* अज्ञान से बड़ा शत्रु कोई भी नहीं। - शंकराचार्य
- \* अज्ञानी रहने की अपेक्षा जन्म न लेना श्रेयस्कर है। - प्लेटो
- \* अज्ञानता ऐसी अंधेरी रात है जिसमें न चांद आता है न सितारे। - महात्मा विदुर
- \* अज्ञानी की सबसे बड़ी संपत्ति होती है मौन। जब वह इस रहस्य को जान जाता है तो फिर वह अज्ञानी नहीं रहता। - शेख सादी
- \* अपनी अज्ञानता से अनभिज्ञ होना अज्ञानी की सबसे बड़ी बिमारी है। - ए.बी. एलाकेट
- \* मूर्ख का मन ज्ञान में नहीं अज्ञान में लगता है। - लेनिन
- \* अज्ञानता किसी भी जनतांत्रिक सरकार को, पशुओं द्वारा चुनी हुई, पशुओं के लिए, पशुओं की सरकार बना देती है। - आचार्य कृपलानी
- \* अल्प ज्ञान खतरनाक होता है। - बायरन
- \* भगवान की परम भक्ति मनुष्यों में कामधेनु के समान मानी गई है। उसके रहते हुए भी अज्ञानी मनुष्य संसार रूपी विष का पान करते हैं, यह कितने आश्चर्य की बात है। - नारद पुराण
- \* दुनिया भर का ज्ञान प्राप्त करने से पंडित तो बना जा सकता है लेकिन ज्ञानी बनने के लिए अनुभूति जरूरी है। - ओशो
- \* जिसने एक बार भी ज्ञान रूपी अमृत का स्वाद ले लिया, वह सब कार्यों को छोड़कर उसी की ओर दौड़ पड़ता है। - जाबाल दर्शनोपनिषद
- \* दुख यदि मौत के लिए है तो वह अज्ञानता की कोख से पैदा होता है। - चाणक्य
- \* सत्य रूप में देखा जाए तो ज्ञान दो प्रकार से दिया जाता है। पहला श्रद्धावश और दूसरा दयावश। - रामचन्द्र शुक्ल
- \* सुख के मंदिर में ही अज्ञान रूपी विषाद की सर्वश्रेष्ठ समाधि है। - कीटस

- \* अज्ञान एक ऐसा कांटा है, जो चुभने के बाद किसी दूसरे को नहीं दिखता, लेकिन जिसको चुभता है उसे हमेशा परेशान करता रहता है। - आद्य शंकराचार्य
- \* स्वयं को ज्ञानवान समझना सबसे बड़ा अज्ञान है और अज्ञानी सदा दुखी रहता है। - वेदान्त तीर्थ
- \* लोभ को केवल एक ही शस्त्र से काटा जा सकता है और वह है ज्ञान। ज्ञान के अतिरिक्त इस महारोग की अन्य औषधि नहीं है। - रामकृष्ण परमहंस
- \* भावनाओं में बहकर कर्तव्य से विमुख होना अस्वस्थ मानसिकता का द्योतक है। - स्वामी विवेकानंद
- \* मुझे यह इकरार करने में तनिक भी लज्जा नहीं कि मैं इस बात से पूर्णतया अनभिज्ञ हूं कि मुझे किन-किन चीजों का ज्ञान नहीं है। - सिसरो
- \* मितव्यता का रहस्य यह है कि वेतन मिलने के पश्चात कुछ दिन इतनी सस्ती जिंदगी गुजारो जितनी आपने वेतन मिलने से पहले कुछ दिन गुजारी थी। - फुलर
- \* कीर्तिवान व्यक्ति के लिए कीर्तिनाश की अपेक्षा मृत्यु श्रेयस्कर है। - गीता
- \* कला चित्त को ध्युद्र वासनाओं से विरक्त करने का बड़ा साधन है। - सम्पूर्णानन्द
- \* किसी दोष का इकरार कर लेना उसको आधा दुरस्त कर लेना है। - एच.जी.वेल्स
- \* किसी भी चीज पर एकदम विश्वास न करो। लेकिन गहराई से जांचने के बाद विश्वास आ जाए तो फिर उससे उसी तरह चिपक रहो जैसे चींटा मीठे पर चिपकता है। - महात्मा गांधी
- \* एक मनुष्य को उससे अधिक वायदे नहीं करने चाहिए जितने वह निभा न सके। - एलिस
- \* एक सच्चा मित्र दो शरीर में एक आत्मा के समान है। - अरस्तु

- \* गालियाँ स्वीकार न की जाएं तो देने वाले के पास लौट जाती हैं, अतः चुप रहो। - सुकरात
- \* गाली अर्थात् दुर्वचनों से ही क्लेश, दुख तथा मृत्यु उत्पन्न होते हैं। जो गाली सुनकर हार मानकर चला जाए, वही सज्जन है। इसके विपरीत जो गाली देने के बजाय में गाली देने लग जाता है, वह नीच प्रवृत्ति का है। - कबीर
- \* गालियों का उत्तर मौन से दें। गाली के उत्तर में गाली तो मुख भी देता है। - प्रेमचंद
- \* छोटे से बीज में विशाल वृक्ष छिपा होता है। - जिजासु
- \* जब तक आपके माँ-बाप जिंदा हैं, आपको मुकद्दस मुकामात की जियरतों के लिए जाने की जरूरत नहीं। - कन्प्यूशियस
- \* सर्दी, गर्मी, अनुराग, संपत्ति अथवा दरिद्रता जिसके कार्य में विध्न नहीं डालते, वही पंडित कहलाता है। - महाभारत
- \* गाली एक तरह की अप्रत्यक्ष श्रद्धांजलि है। - विलियम है जटिल
- \* गाली कमजोर लोग देते हैं। - हिंदी लोकोक्ति
- \* सच्चे विद्वान की दृष्टि में सभी सांसारिक वस्तुएं समान रहती हैं, पत्थर, कोयला, रेत, लोहा और सोना इन चीजों को वह तिनके के तुल्य देखता है। - वैमना
- \* सत्य यह है कि जब तक मन में कामना शेष है ईश्वर प्राप्ति संभव नहीं है। धर्म की गति सूक्ष्म है। यदि हमें सुई में धागा डालना है तो यह तब तक संभव नहीं होगा जब तक कि धागा एक रूप न हो - रामकृष्ण
- \* शब्द जितने कम होंगे, उतनी अच्छी प्रार्थना होगी। - मार्टिन लूथरकिंग
- \* सत् ज्ञान मनुष्य को यह दर्शाता है कि वह शरीर धारी आत्मा है। जबकि अज्ञानी समझता है कि वह एक शरीर है जिसमें आत्मा विद्यमान है। - स्वामी विवेकानंद
- \* जिससे सत्य-समता-शान्ति-सदाचार-सद्विचार-समन्वय-सह-अस्तित्व मुक्ति/स्वतंत्रता आदि नैतिक-आध्यात्मिक गुणों की उपलब्धि होती है। वह ही यथार्थ से शिक्षा/स्वाध्याय/नीति/नियम/संविधान/

विज्ञान/धर्म/आध्यात्मिक है।

- आचार्य

कनकनन्दी

- \* प्रत्येक रेखा का प्रारंभ-विकास-अस्तित्व-विस्तार-समाप्ति आदि जिस प्रकार बिन्दु से ही संभव है उसी प्रकार जीवों के स्वास्थ्य-विकास-सुख-दुःख-विनाशादि तत्-तत् योग्य द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-पुरुषार्थ से ही संभव है। - कनक नन्दी

## सदुदेश्य की पूर्ति = शान्ति की प्राप्ति के सूत्र

- आचार्य कनकनन्दी

- \* सदुदेश्य-शान्ति से विपरीत सब हेय है तो इन की प्राप्ति उपादेय है तथा सब कुछ ज्ञेय है।
- \* स्वयं में शान्ति होने से और प्रत्येक जीव के अन्तिम उद्देश्य शान्ति की प्राप्ति होने से स्वयं की प्राप्ति ही सदुदेश्य की प्राप्ति है। इसके अतिरिक्त-विपरीत सब कुछ यथार्थ से असदुदेश्य, उसकी पूर्ति असत्पूर्ति है और उससे प्राप्त होती है अशान्ति। अतएव इनकी पूर्ति करने वाले चाहे राव से रङ्ग हो या शिक्षित से अशिक्षित, सब अशान्त होते हैं। इसके भूतकाल के हजारों उदाहरण देश-विदेशों के इतिहास-पुराणों में लिपिबद्ध है तो वर्तमान में जीवन्त-ज्वलन्त उदाहरण करोड़ों में है। इन प्रायोगिक उदाहरणों से तो सदुदेश्य-शान्ति की रुचि वाले कुछ कम संख्यक महानुभाव-महोदय शिक्षा लेकर शान्ति प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करते हैं, किन्तु अधिक संख्यक वाले इन सब से वञ्चित रहते हैं। इसके कारण ही जीव अन्याय, अत्याचार, पापाचारादि करके अशान्त रहते हैं किन्तु जो सदुदेश्य की पूर्ति करते हैं वे शान्ति को पाते हैं।
- \* जैसा कि बिन्दुओं के अविच्छिन्न सम्यक् समन्वय से ही रेखा का निर्माण होता है वैसा हि सदुदेश्य की पूर्ति एवं शान्ति की प्राप्ति रूपी रेखा का निर्माण जीवन के हर छोटे-बड़े सही उद्देश्य, विचार, शिक्षण, प्रशिक्षण, शिक्षा-दीक्षा, संस्कार, कर्तव्य, व्यवहार, भाषण-संभाषण, वचन-प्रवचन, आत्मविश्लेषण, आत्मशोधन, आत्मध्यान, पुरुषार्थ, सहयोग, समन्वय, सदाचार आदि से होता है।

## परिशिष्ट

**वि.वि. में आ.कनकनन्दी साहित्य कक्ष  
की स्थापना एवं शोधकार्य**

### **संस्थापक एवं शोध निर्देशक -**

Prof. (Dr.) Sohan Raj Tater

B.E. (Mech.), M.E. (P.H.), M.A. (Jainology), Ph.D., Pursuing D.Litt.

- Former Vice Chancellor, Singhania University.

- Ph.D. Research Supervisor in University.

- Former member, B.O.M., J.V.B.U., Ladnun (Raj.)

- Former Director, Brahmi Vidyapith College, Ladnun (Raj.)

- Honourary Editor, Preksha Dhyan Magazine, Ladnun (Raj.)

- Retired Superintending Engineer, P.H.E.D., Raj. Govt.

- Former Convenor, Parmarthik Shikshan Sansthan, Ladnun (Raj.)

- Former Advisor, J.V.B.U., Ladnun (Raj.)

प.पू. श्रद्धेय आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव के साहित्य की स्थापित

"Book Cells"

**क्र.सं. विश्वविद्यालय का नाम जिम्मेदार महानुभाव फोन नं.**

1. राजस्थान विश्वविद्यालय, डॉ. बी.एल.सेठी 94147 43340  
जयपुर (राज.) (संस्थापक एवं शोधनिर्देशक)
2. जैन विश्वभारती वि.वि. प्रो.जे.पी.एन मिश्रा 94143 42003  
लाडनूँ (राज.)
3. एल.डी. इंस्टीट्यूट, डॉ. जितेन्द्र बी.शाह 098258 00126  
अहमदाबाद (गुज.)
4. जयनारायण व्यास वि.वि., डॉ. चन्द्रशेखर 98280 82560  
जोधपुर (राज.)
5. अखिल भारतीय दर्शन परिषद्, प्रो. एस.पी.दुबे 092291 32699  
जबलपुर (म.प्र.)
6. बनारस हिन्दू वि.वि., डॉ. विजय कुमार जैन 094502 40359  
वाराणसी (उ.प्र.)
7. तीर्थঙ्कर वर्द्धमान वि.वि., डॉ. आर. के. मित्तल 098379 33666  
मुरादाबाद (उ.प्र.)
8. सिंधानिया वि.वि. पचेरी बड़ी, प्रो. योगेश कुमार शर्मा 99826 09201  
झुंझुनु (राज.) 94143 47157

9. जोधपुर राष्ट्रीय वि.वि., जोधपुर (राज.)	डॉ. प्रदीप कुमार डे	93515 90734
10. गुजरात वि.वि., अहमदाबाद (गुज.)	डॉ. दिलीप चारण	098251 48840
11. श्रीधर वि.वि., पिलानी (राज.)	डॉ. श्याम सुन्दर पुरोहित	96172 00650
12. आर.सी.एस.एस. कॉलेज, वीहट (बिहार)	डॉ. विद्यासागर सिंह	099737 47234
13. लखनऊ वि.वि., लखनऊ (उ.प्र.)	डॉ. अमरजीत यादव	094157 74470
14. मोहनलाल सुखाड़िया वि.वि., उदयपुर (राज.)	लायब्रेरियन	
15. विक्रम वि.वि., उज्जैन(म.प्र.)	डॉ. बीरबाला छाजेड़	
16. एन.एम.आर. इंजी. कॉलेज, हैदराबाद (आ.प्र.)	श्री किरण कुमार जैन (वैज्ञानिक)	095021 62631
17. मुम्बई विश्व विद्यालय, मुम्बई (महा.)		
18. जम्मु विश्व विद्यालय (जम्मु-काश्मीर)		
19. कोलाहान यूनिवर्सिटी, चायवास, जमशेदपुर (करीम सिटी कॉलेज लायब्रेरी)	प्रो. अशरफ बिहारी	
20. पंजाबी वि.वि. पटियाला (पंजाब)		
21. पंजाब वि.वि. चंडीगढ़ (पंजाब, हरिं.)		
22. आनंदा वि.वि. विशाखापट्टनम् (आ.प्र.)		
23. MDSD गर्ल्स कॉलेज, अम्बाला सिटी सार्वजनिक पुस्तकालय में आचार्य श्री के साहित्य		
1. राष्ट्रीय गाँधी संग्रहालय, राजधानी, नई दिल्ली	प्रो. अनिलदत्त मिश्रा लायब्रेरी, डायरेक्टर	
2. सार्वजनिक पुस्तकालय गुलाबबाग, उदयपुर (राज.)		

Potal Address :- "G-8" Multan Kunj, Bhagat Ki Kothi Extension, Jodhpur-342003  
(Raj.)  
Contact No. : - 09829650702 (M), E-mail : Sohantater@yahoo.co.in

## आज कल नी बगडेली शिक्षा

(रचनाकार - गोपाल कृष्ण सेवक)

आज कल स्कूल मय उंदू सीस्टम साले  
मास्टर नी वेल्यू खुटी सौरं वाली साले।  
डॉन गीरी, फोन गीरी, दादा गीरी साले  
रेशमीयानू रुतु म्युजिक हीरी-हीरी साले।  
घोडाई हेली साले ने भणाई कम साले  
बोस गीरी, भाई गिरी, नेता गिरी साले।  
स्कूल ने खूणे-खूणे टेरी-रीजम साले।  
एवु आपडे इण्डिया में एज्युकेशन साले।  
आज-कल .....।  
मास्टर नी .....।  
आपडी तो पाठशाला मस्ती नी पाठशाला  
स्कुले हें पेले वाली पण मास्टर ने हें पेले वाला  
सुरो-सूरी डस पेरे, आज काल फैशन वाला  
स्कूल मय जुता जडे सीन हारा पिक्सर वाला  
संस्कार हारा मरीग्या है दाढ़े-दाढ़े श्रवण वाला  
भाई हरका भरोसा ना थई रया है भाजी पाला  
बुटीरी, सूटीरी, फूटीरी साले  
एवु आपडे इण्डिया मय एज्यूकेशन साले  
आज-काल .....।  
आजकाल मौसम मोबाइल नु साले  
राते-राते रिलायन्स न हवारे हच साले  
एयरटेल वालो रोज नवी स्कीम आले  
वडाफोन वालो सीम बगर पैसे आले।  
डाकोमो नी सीम लाईफ टाईम साले  
आईडिया नी तर्ज माते आपडू भारत साले।  
हिरो गीरी, मुन्ना गीरी, सर्कीट गीरी साले  
एवु आपडे इण्डिया मय हीरी-हीरी साले।  
आजे तमने एडवाइज आलू, हुदरी जाजु काले  
आपडू भारत वालु भारत वगडी जाएगा काले  
शब्दार्थ :  
उंदू - उल्टा, खुटी - खतम होना, रुतु - रोता हुआ, हीरी हीरी-गली गली, घोडाई  
- मटर गस्ती, खूणे खूणे - कौने कौने, टेरीरिजम-आतंकवाद, पण-परन्तु, जुवा-देखने  
मिलना, राते राते-रात रात भर, बगर पैसे-मुफ्त में, आपडू - अपना, वालु-प्यारा,  
जाजु-जाना, वगडी-बीगडना, भाजी पाला - बदनाम होना।

## आ. कनकनन्दी के अध्ययन-अध्यापन के कुछ विषय

आर्चा श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव ने अभी तक (1) भाषा (14 भाषा), (2) व्याकरण (3) गणित (4) विज्ञान (5) दर्शन (6) धर्म (7) तर्क-न्याय (8) आयुर्वेद (9) मनोविज्ञान (10) पुराण (11) इतिहास (12) कथा साहित्य (13) राजनीति (14) कानून-न्याय (15) शिक्षा-मनोविज्ञान (16) स्वप्न (17) शक्ति (18) सामुद्रिक शास्त्र (बॉडी-लैंगवेज) (19) मंत्र (20) समाज शास्त्र (21) संविधान (22) शोधपूर्ण साहित्य (23) विभिन्न पत्र-पत्रिकायें (24) वैज्ञानिक टी.वी. चैनल (25) कोष आदि का अध्ययन-अध्यापन के साथ-साथ इन विषय सम्बन्धी शोधपूर्ण लेख, शास्त्र भी लिखे हैं और लिख रहे हैं तथा लिखने की भावना है। विस्तार भय से यहाँ केवल विधाओं तथा आनुमानिक प्रतिशक का ही उल्लेख किया गया है।

- (1) देश-विदेश की 14 भाषा-ज्ञान तथा कुछ नये भाषा-ज्ञान के प्रयास।
- (2) उपरोक्त भाषा सम्बन्धी अधिकांश भाषा विषयक व्याकरण ज्ञान और भी व्याकरण-ज्ञान के लिए प्रयास।
- (3) लौकिक गणित के साथ-साथ अलौकिक गणित ज्ञान में रुचि तथा और भी अधिक गणित ज्ञान की जिज्ञासा।
- (4) प्रायः विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में रुचि तथा और भी अधिक विज्ञान को जानने की जिज्ञासा।
- (5) प्रायः भारत के सम्पूर्ण दर्शनों तथा विदेशी दर्शनों का अध्ययन तथा आगे भी प्रयास।
- (6) दि. जैन ग्रन्थों के प्रायः 85% से 90%, श्वे. जैन ग्रन्थों के प्रायः 70% से 75%, वैदिक ग्रन्थों के प्रायः 50% से 60%, बौद्ध ग्रन्थों के 70% से 75% का अध्ययन के साथ-साथ आगे के अध्ययन के लिए प्रयास।
- (7) जैन-जैनेतर कतिपय तर्क-न्याय-अनेकान्त-स्याद्वाद् शास्त्रों के अध्ययन। अभी विशेषतः अनेकान्त-स्याद्वाद् सम्बन्धी विशेष अनुसन्धानात्मक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अध्ययन-अध्यापन-लेखन सतत प्रवाहमान।
- (8) आयुर्वेद-चिकित्सा-स्वास्थ्य विज्ञान की दृष्टि से दि.जैन ग्रन्थ कल्याणकारक, वैदिक ग्रन्थ-चरक, सुश्रुत, योगरत्नाकार, माधव निदान,

- बौद्ध ग्रन्थ-अष्टाङ्ग हृदय, प्राकृतिक चिकित्सा, भोजन चिकित्सा तथा विभिन्न चिकित्साओं के कर्तिपय साहित्यों के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक चिकित्सा, योग चिकित्सा आदि के कुछ ग्रन्थों के अध्ययन आचार्य श्री ने किया है; और अभी भी शोधपूर्ण तुलनात्मक दृष्टि से सनम्र प्रयासरत हैं।
- (9) विभिन्न विधाओं के प्राचीन एवं आधुनिक मनोविज्ञान की अनेक शाखा प्रशाखाओं का अध्ययन तथा अभी भी प्रयत्नशील।
  - (10) दि.जैन, श्वे.जैन, वैदिक, बौद्ध के अनेक पुराणों का अध्ययन।
  - (11) विविध प्रकार के इतिहासों का अध्ययन।
  - (12) देश-विदेश की धार्मिक-नैतिक-राजनैतिक-काल्पनिक, वैज्ञानिक कथाओं का अध्ययन।
  - (13) प्राचीन जैन, वैदिक राजनीति ग्रन्थों के साथ-साथ देश-विदेशों की राजनीतियों का अध्ययन हुआ है और अभी भी चालू है।
  - (14) प्राचीन जैन, वैदिक न्याय (कानूनी) ग्रन्थों के साथ-साथ देश-विदेशों के कानूनी साहित्य का अध्ययन हुआ है और अभी भी चालू है।
  - (15) देश-विदेशों की प्राचीन एवं आधुनिक शिक्षा पद्धतियों का अध्ययन के साथ-साथ इस सम्बन्धी शोधपूर्ण-तुलनात्मक-समीक्षात्मक अध्ययन सतत प्रवाहमान है।
  - (16) दि.जैन, श्वे.जैन, वैदिक, आयुर्वेदिक, आधुनिक मनोवैज्ञानिक स्वप्न साहित्यों का अध्ययन साहित्य एवं प्रकृति से सतत प्रवाहमान है।
  - (17) जैन-जैनेतर-आधुनिक वैज्ञानिक शकुन (पूर्वभास, पूर्वनुमान) सम्बन्धी विषयों का अध्ययन साहित्य एवं प्रकृति से सतत प्रवाहमान है।
  - (18) जैन, हिन्दू, बौद्धों के कुछ ग्रन्थ, आधुनिक देश-विदेशों के कुछ सामुद्रिक शास्त्रों का अध्ययन हुआ है और हो रहा है।
  - (19) धार्मिक, मनोवैज्ञानिक एवं आधुनिक दृष्टि से मंत्र के बारे में अध्ययन।
  - (20) कुछ प्राचीन एवं आधुनिक समाज साहित्यों का अध्ययन, धार्मिक-सामाजिक-मनोवैज्ञानिक दृष्टि से।
  - (21) भारत तथा कुछ विदेशी संविधानों का अध्ययन चालू।

- (22) धर्म, विज्ञान, स्वास्थ्य, मनोविज्ञान, दर्शन, इतिहास, पर्यावरण सुरक्षा, राजनीति, कानून, तर्क, परम्परा, रीति-रिवाज, भाषा, गणित, पूजा-आराधना, योगध्यान आदि शोधपूर्ण समीक्षात्मक अनेक साहित्यों का अध्ययन हुआ है और हो रहा है।
  - (23) विभिन्न दैनिक, साप्ताहिक, मासिक आदि विधाओं की पत्र-पत्रिकाओं का सतत अध्ययन।
  - (24) विशेषतः पाश्चात्य देशों में विविध ज्ञन-विज्ञान-इतिहास-धर्म-परम्परादि सम्बन्धी शोधपूर्ण विषयों को (1) डिस्कवरी (2) नेशनल ज्योग्राफी (3) हिस्ट्री (4) एनिमल प्लेनेट जैसे विदेशी टी.वी. प्रोग्रामों का विशेष अध्ययन।
  - (25) विभिन्न भाषा, धर्म, विज्ञान, इतिहास सम्बन्धी कोषों का सामान्य आलम्बन।
- ### अभी विशेष अध्ययन-अध्यापन-लेखन-प्रचार-
- आधुनिक नवीन वैज्ञानिक अनुसन्धान, स्वप्न, शकुन (पूर्वभास), मानव इतिहास, मानव-विज्ञान, भारतीय-आध्यात्मिक-संस्कृति-परम्परा, मानव, स्वास्थ्य, राजनीति, कानून का अध्ययन-लेखन; भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति का भारतीय विश्वविद्यालयों से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रचार-प्रसार के माध्यम से विश्व-मैत्री-विश्व शान्ति की स्थापना। धर्म को आध्यात्मिक-विज्ञानमय एवं विज्ञान को आध्यात्मिक धर्ममय बनाना और इससे अभी की भावनायें एवं भावी भावनाओं को क्रियान्वयन के सोडेश्य विचार।
- ### भावी भावनायें
- भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति तथा विशेषतः जैन ज्ञान-विज्ञान-अध्यात्म** को आधुनिक वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में तथा इससे परे सिद्ध करके इसे स्व-पर-विश्वकल्पाण के लिए देश-विदेश की प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्चतम शिक्षा विज्ञान, कानून, राजनीति, समाज व्यवस्था, स्वास्थ्य, पर्यावरण सुरक्षा आदि में प्रयोग में लाकर सर्वजीव हित, सर्वजीव सुख, निरस्त्रीकरण, विश्व-शान्ति की स्थापना आचार्य श्री कनकनन्दी जी के परम, सर्वोच्च लक्ष्य है। स्वयं को परम सत्य साम्य सुख रूप परिणमन करना तथा अखिल जीव जगत् भी ऐसी साम्यअवस्था को प्राप्त करें ऐसी महती मंगलमयी विश्वकल्पाण की पवित्र भावना है “सर्वेऽपि सुखिनःसन्तु”।

## साक्षरता-ज्ञान एवं सच्चा-ज्ञान की उपलब्धियाँ

(साक्षरता से भौतिकता-सभ्यता-विनाश तो सच्चा ज्ञान से शान्ति-निर्माण तथा निर्वाण)

- आचार्य कनकनन्दी

साक्षरता (शिक्षा-पढ़ाई-परीक्षा-परिणाम-डिग्री-प्रमाणपत्र) की चमक चकाचौंध में आज मानव तथा विशेषतः भारतीय इतने चौंधिया गये हैं कि उन्हें यथार्थ ज्ञान (नैतिक ज्ञान, सर्वोदयी शिक्षा, आध्यात्मिक ज्ञान) का परिज्ञान ही नहीं हो रहा है। साक्षरता केवल जानकारियों का मस्तिष्क में संग्रह/रटन्त विद्या है तो सच्चा ज्ञान सत्य-तथ्य का परिज्ञान-अनुभव-आचरण। साक्षरता का आधार पुस्तक है तो सच्चा ज्ञान का आधार आत्म विश्लेषण, आत्म परिज्ञान, ध्यान, आत्मानुसंधान। शिक्षा के लिए पढ़नी पड़ती है तो ज्ञान के लिए आत्म-जागृति की आवश्यकता है। शिक्षा एकांगी, संकीर्ण, भौतिक है तो ज्ञान बहुआयामी, बहुउद्देश्यीय। शिक्षा की सीमा होती है तो ज्ञान का अनन्त होता है। शिक्षा शिक्षक से ग्रहण किया जाता है तो ज्ञान आध्यात्मिक गुरु से प्राप्त होता है। शिक्षा अनेक प्रकार की होती है तो आत्मज्ञान एक होने पर भी उसमें समस्त शिक्षाएँ एक कण भर मात्र है। शिक्षा में तथा शिक्षा से अहङ्कार, संकीर्णता, स्वार्थपरता आदि होती है तो आत्मज्ञान से इन सबकी निवृत्ति होती है। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावादि के कारण शिक्षा में परिवर्तन होता है तो आत्मज्ञान शाश्वतिक अपरिवर्तनशील है। शिक्षा बौद्धिक है तो आत्मज्ञान आत्मिक है। शिक्षा ग्रहण की जाती है तो ज्ञान प्रगट होता है। शिक्षा भौतिक सुख-सुविधा-साधन बढ़ाती है तो ज्ञान चित्त की पवित्रता-एकाग्रता-शान्ति को बढ़ाता है। शिक्षा का बोझ-तनाव-दुरुपयोग होता है तो ज्ञान से शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक सुख-शान्ति-संवृद्धि होती है। शिक्षा से व्यक्ति विशिष्ट (सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि-प्रभुत्व सम्पन्न-असामाजिक-पृथकत्ववादी) होता है तो ज्ञान से व्यक्ति उपरोक्त विशेषणों से रहित सरल-सहज-सादा जीवन-उच्च विचार-उदार पुरुषाणां वसुधैव कुटुम्बकम् वाला होता है। शिक्षा से कुप्रवृत्ति भी होती है परन्तु ज्ञान से कुप्रवृत्ति से निवृत्ति तथा सुप्रवृत्ति में प्रवृत्ति होती है। साक्षरता से विनम्रता कम अहंवृत्ति अधिक होती है। क्योंकि शिक्षा बाहर से थोपी जाती है जिससे आन्तरिक परिवर्तन नहीं होता है। आत्मज्ञान आन्तरिक प्रक्रिया है जिससे आत्मा में गरिमामय गुणों का सञ्चार होता है, जिससे ज्ञानी, विनम्र, सत्यग्राही, दयालु, कोमल होते हैं। शिक्षा से व्यक्ति साक्षर, शिक्षित, बुद्धिजीवी, सभ्य, वर्चस्व, सामाजिक

प्रतिष्ठा वाला होता है तो ज्ञान से जीव, ज्ञानी, सुसंस्कृत, सदाचारी, अध्यात्म सम्पन्न, पूजनीय, श्रद्धास्पद होता है। शिक्षित तो चावकि जैसे पढ़े-लिखे होते हैं तो ज्ञानी तीर्थङ्कर, केवली, गणधर, साधु-सन्त जैसे होते हैं।

शब्दब्रह्म/शब्दज्ञान साधन है तो परमब्रह्म/आत्मज्ञान/सत्यज्ञान साध्य-लक्ष्य-प्राप्य (प्राप्त करने योग्य) है। यथार्थ ज्ञान के लिए साक्षरता (भाषा-व्याकरण-गणित-कला-विज्ञान) की आवश्यकता होती है या हो भी सकती है परन्तु यथार्थ ज्ञान के बिना साक्षरता राक्षस प्रवृत्ति के लिए भी कारण बन सकती है परन्तु यथार्थ ज्ञान के बिना साक्षरता राक्षस प्रवृत्ति के लिए भी कारण बन सकती है। जहाँ साक्षरता की अन्तिम सीमा है, वहाँ से ज्ञान प्रारम्भ होता है। लौकिक शिक्षा के सर्वोच्च प्रोफेसर्स, विद्वान्, लेखक, व्याख्याता, वैज्ञानिक को भी आत्मज्ञान के लिए A,B,C, से प्रारम्भ करना पड़ता है। शिक्षा माया-मोह-भौतिकता, संसार-प्रपञ्च की होने से इससे सभ्यता का विकास के साथ-साथ विनाश होता है तो ज्ञान सत्य-आत्मा-अमृत-अनन्त होने से इससे सभ्यता-संस्कृति-आध्यात्मिकता-सुख-शान्ति का विकास होता है किन्तु पुनः पतन नहीं होता है। क्योंकि यह विकास भौतिकता तथा भौतिक आर्कषण के परे होता है।

शिक्षा मनुष्यप्रजाति द्वारा आविष्कृत प्रणाली है जिससे मानवीय सभ्यता का विकास हो। ज्ञान मानव का स्व-प्राकृतिक-शुद्ध स्वरूप है जो कि आनन्दघन-सच्चिदानन्द-सत्यम् शिवम् सुन्दरम् है। शिक्षा भेद-भाव उत्पन्न करती है तो ज्ञान भेद-विज्ञान उत्पन्न करता है। जिससे शिक्षा से अशान्ति होती है तो ज्ञान से विश्वशान्ति होती है। शिक्षा सामान्य है तो ज्ञान असामान्य होता है। शिक्षा उत्थ्रृंखल, उद्घण्ड, स्वार्थी, अधिकारवादी बनाती है जिससे शिक्षित व्यक्ति भ्रष्टाचारी, लड़ाकू, अतङ्कवादी, तानाशाही, युद्ध पिपासु बनता है तो ज्ञानी प्रत्येक जीव को अपना समान मानता है इसलिए ज्ञानी विश्वमैत्री-विश्वशान्ति का भाव-व्यवहार करता है। अतः शिक्षा से व्यक्ति नौकरशाह से तानाशाह बनता है तो ज्ञान से जीव मिथुक, मिथु, ज्ञानवान्-प्रजावान्-भगवान् बनता है।

शिक्षा का विस्मरण भी होता है क्योंकि इसमें बाहर की जानकारी बाहर से दी जाती है किन्तु ज्ञान अविस्मरणीय-अविनाशी है क्योंकि ज्ञान जीव का स्व-शुद्ध-स्वरूप है। शिक्षा संसार से मेल खाती है क्योंकि शिक्षा में सांसारिक विषय होता है। ज्ञान संसार से मेल नहीं खाता है। संसार में लिप्त नहीं करता

है। जिस प्रकार पानी के कारण मिट्टी पङ्क-मल-कीचड़ बन जाती है तथापि वह पङ्क मिट्टीमय ही रहती है किन्तु पङ्क से उत्पन्न होने वाला पङ्कज-कमल मिट्टीमय नहीं होता है। शिक्षा ने शिक्षित/साक्षर/सभ्य व्यक्ति दिये हैं तो ज्ञान ने भगवान् दिया है।

शिक्षित को भीड़, सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि-प्रभुत्व-मान-अभिमान पसन्द होता है तो ज्ञानी इन सब से निर्लिप्त होता है; सांसारिक दिखावा-आडम्बर-दम्भ, मोह-माया से रहित होने के कारण सांसारिक दिखावा दृष्टि से वे अजीव, पागल, पिछड़ा, मूर्ख, अव्यवहारिक दिखाई देते हैं। उनके चिन्तन, उद्देश्य, कथन, व्यवहार, दूसरे से भिन्न होने से उन्हें लोग न समझ पाते हैं, न ही सही मानते हैं अपितु उनका निरादर से लेकर अनुचित-व्यवहार तक करते हैं। तथापि ज्ञानी एकाकी, निस्पृह, सहिष्णु, समताधारी होकर वित्तेष्णा, पुत्रेष्णा, लोकेष्णा से दूर होकर अनन्त आन्तरिक जगत् में अनेक आध्यात्मिक-वैज्ञानिक आविष्कार करते हैं। इसके कारण ही तो वे उपरोक्त भाव-व्यवहार करते हैं। क्योंकि यह आविष्कार लौकिक शिक्षा, साधन, यन्त्र आदि से सम्भव ही नहीं है। उनके इन आविष्कारों से ही तो संसार में संस्कृति, सदाचार, विश्व मैत्री, विश्वशान्ति का प्रचार-प्रसार होता है। उनके बिना शिक्षित, सभ्य, भौतिक सत्ता-सम्पत्ति सम्पन्न मानव भी संस्कृति आदि का अविष्कार नहीं कर पाता तथा संसार में यत् किञ्चित् भी शान्ति सम्भव नहीं होती। शिक्षा से भौतिकता, सभ्यतादि का विकास हुआ तो ज्ञान-ज्ञानी से अशान्त संसार में शान्ति की खोज हुई। तीर्थङ्कर केवली, गणधर, आचार्य, उपाध्याय, साधु, बुद्ध, ऋषि, अवतारी पुरुष, ईसा मसीह आदि ज्ञानी महात्मा ही हैं जिन्होंने स्व-आत्मज्ञान द्वारा आविष्कृत विषयों को ही संसार को दिया और उनके अनुयायी भक्तों ने उसे धरोहर रूप में प्राप्त किया और अभी तक यत् किञ्चित् प्रवाहमान् रूप से गतिशील है। उनकी ही संस्कृति-विरासत रूप में जैन, वैदिक, बौद्ध, ईसाई आदि धर्म रूप में प्रवाहमान् है। उस प्रवाहमान् ज्ञान के बिना वर्तमान में जैन, वैदिक, बौद्ध, ईसाई आदि के पास धार्मिक विरासत क्या है? जैसे मूल के बिना वृक्ष के पत्र-फूल-फल आदि सम्भव नहीं है उसी प्रकार स्व-स्वधर्म के मूलज्ञानी पुरुषों के बिना उनकी सम्प्रदाय, परम्परा, रीति-रिवाज सम्भव नहीं है। इस दृष्टि से ऐसे ज्ञानी पुरुषों के बिना मानव समाज प्राण रहित शरीर के समान है अर्थात् शब्द है। शब्द को बाहर कितना ही सजाओ, संवारो तथापि उसमें चेतना, शान्ति, सम्वृद्धि सम्भव नहीं है उसी प्रकार ज्ञान-ज्ञानी के बिना मानव समाज की

दशा-दिशा-आशा है। केवल ज्ञानियों ने आध्यात्मिक सांस्कृतिक का ही शोध-बोध-प्रचार-प्रसार नहीं किया है अपितु सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान-गणित-कला-वाणिज्य-भाषा, सभ्यता आदि का भी प्रत्यक्ष परोक्ष रूप में किया है। इस दृष्टि शिक्षा के भी जनक ज्ञानी ही है। इसके उदाहरण के रूप में आदि तीर्थङ्कर ऋषभदेव ने गृहस्थावस्था में असि (युद्ध कौशल), मसि (अङ्ग-अक्षर शिक्षा), कृषि, वाणिज्य, शिल्प, सेवा की शिक्षा दी तो सर्वज्ञ अवस्था में आत्म तत्त्व से लेकर विश्व तत्त्व के बारे में समवशरण (विश्व धर्म सभा) में प्रबोधन दिया। अतः शिक्षा केवल एक मानव जीवन के निर्वाह के लिए है तो ज्ञान जीवन निर्वाह-निर्माण-निर्वाण के लिए है अर्थात् शिक्षा केवल एक मानव जीवन के भौतिक सुख-समृद्धि के लिए है तो ज्ञान शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक सुख-समृद्धि के लिए वह भी वर्तमान जीवन से लेकर भविष्यत् अनन्तकाल के लिए। इसलिए तो सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि से युक्त भी जैन धर्म के तीर्थङ्कर, महात्मा बुद्ध, वैदिक धर्म के अनेक ऋषि सर्व सन्यास व्रतधारण करके आत्म-ज्ञान के लिए साधना की। शिक्षा -सम्पत्ति से भले मानव सुख शान्ति प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील होता है। तथापि यह प्रयत्न अन्ततोगत्वा दुःख-पतन के लिए ही कारण बनता है। रावण, कंस, हिटलर, मुसोलिन, सद्गम हुसैन, सिकन्दर आदि इसके लिए प्रसिद्ध उदाहरण है। इसलिए ज्ञानी पुरुषों ने कहा है- ‘‘जो राजेश्वरी सो नरकेशरी’’ अर्थात् जो राज भोगते हुए मरता है वह नरक जाता है। इतना ही नहीं ज्ञान-रहित होकर राज, वैभव, भोग रहित व्यक्ति भी नारकी के समान है तो ज्ञान सहित राज, वैभव, भोग सहित व्यक्ति भी सुखी होता है। इसलिए ज्ञानी को सभ्य, शिक्षित, वस्त्रालङ्घार युक्त होना जरूरी नहीं है अपितु कथञ्चित् वे असभ्य, मूर्ख, असामाजिक जैसे लग सकते हैं तथा नग्न भी हो सकते हैं।

अशिक्षित ही संस्कार, संस्कृति, मातृभाषा, परम्परा, प्रकृति, प्राकृतिक जीवन शैली, पर्यावरण की सुरक्षा कर सकता है या करता है तो शिक्षित ही इससे विपरीत करके स्वयं को श्रेष्ठ-ज्येष्ठ मानकर मनमाना भाव-व्यवहार करके राक्षस बनता है। शिक्षा का महत्व वर्तमान के भौतिक जीवन में होने से वह अधिक लोकप्रिय भी है। वर्तमान की शिक्षा वैज्ञानिक उपकरण, डिग्रीयाँ, योग्यता के प्रमाण-पत्र, सामाजिक प्रतिष्ठा, नौकरियाँ (सेवा), साहित्य लेखन में सहयोगी बनती है इसलिए यह शिक्षा अभी केवल आवश्यक साधन नहीं है परन्तु अनिवार्य साध्य हो गई है। अतः अभी शिक्षा मोह-ममता-आसक्ति-तृष्णा-फैशन-व्यसन-सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि-प्रतिष्ठा से लेकर

तनाव-आत्महत्या की पर्याय बन रही है। (विश्वेश्वर शर्मा के लेख से प्रेरित)

उपरोक्त वर्णन से सिद्ध होता है कि शिक्षा प्रवृत्ति है तो ज्ञान निवृत्ति है, शिक्षा लोभवृत्ति है तो ज्ञान त्यागवृत्ति, शिक्षा काम प्रवृत्ति है तो ज्ञान योगवृत्ति, शिक्षा सूचना मस्तिष्क में भरती है तो ज्ञान शुचिता लाती है, शिक्षा तनाव-जटिलता देती है तो ज्ञान सरलता-स्वतन्त्रता देता है। ज्ञान शाश्वतिक, सहज-सरल, आनन्दमय है तो शिक्षा नश्वर, संकीर्ण, अपारदर्शी, तनावदात्री है। आत्मज्ञान के समकक्ष शिक्षा का योगदान मानव जगत् के लिए बहुत नगण्य है। शिक्षा की समाप्ति के बाद व्यक्ति स्वयं को दूसरों से महाज्ञानी मानकर ठहर जाता है तो ज्ञानी सर्वज्ञ बनने तक सतत गतिशील रहता है। शिक्षा में असफल होने पर व्यक्ति तनाव, उदासीन से आत्महत्या तक करता है तो ज्ञानी मान-अपमान, हानि-लाभ, सुख-दुःख में साम्यभावी होकर आत्म विकास करता है। महान् दार्शनिक जे.कृष्णमूर्ति के शब्दों में-

एक बात जो सुरक्षित होने के भाव में आड़े आती है, वह है तुलना। जब आपकी तुलना किसी दूसरे से की जाती है, आपकी पढाई के बारे में, खेल-कूद के बारे में अथवा रूप या चेहरे के बारे में, तब आप व्यग्रता, घबराहट और अनिश्चितता के भाव से भर जाते हैं, इसलिए यह नितान्त आवश्यक है कि हमारे विद्यालयों में तुलना का अहसास, यह अङ्क या श्रेणी देना और सबसे पहले तो परीक्षा का भूत समाप्त किया जाय। जब स्वतन्त्रता रहती है, प्रसन्नता रहती है, कुछ दिलचस्पी बनी रहती है, तब आप बेहतर अध्ययन कर पाते हैं। आप सब जानते हैं कि जब कोई खेल खेल रहे होते हैं, कोई नाट्य कार्यक्रम कर रहे होते हैं, चहलकदमी के लिए बाहर जाते हैं, किसी नदी को निहार रहे होते हैं, प्रसन्नचित् रहते हैं, तब खूब स्वस्थ रहते हैं, तब आप अधिक सरलता से सीख लेते हैं। परन्तु जब तुलना, श्रेणी, परीक्षा का भय सामने आ खड़ा हो, तब आप न उतना अच्छा सीख पाते हैं, न उतना अच्छा अध्ययन कर पाते हैं। अभिभावक चाहते हैं कि आप आगे जा पाएं। किसी की इसमें रुचि नहीं है कि आप विद्यालय से निर्भय प्रज्ञावान् व्यक्ति बनकर निकलें।

ऐसी शिक्षा के लिए अभिभावक, शिक्षा-तन्त्र, शिक्षक, समाज, सरकार, कानून तथा शिक्षार्थी भी प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से यथायोग्य दोषी हैं, उत्तरदायी हैं। अतः शिक्षा को ज्ञानमय भी बनाने के लिए इन सब को समुचित समन्वयक प्रयास करना आवश्यक है, अनिवार्य है, विधेय है ज्ञानी बनने के

लिए विशेषतः ज्ञानार्थी, ज्ञानीगुरु (आध्यात्मिक गुरु), अभिभावक, समाज, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव, सरकार, कानून भी उत्तरदायी हैं। इनमें से भी अधिक महत्वपूर्ण भूमिका ज्ञानार्थी, ज्ञानीगुरु, अभिभावक, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की रहती है।

## Jain Philosophy and Modern Physics-I

Prof Narayan Lal Kachhara

55, Ravindra Nagar, Udaipur 313001, Rajasthan, India

Jain Philosophy and Science Study Center, Udaipur

### Abstract

Jain philosophy does not accept any Creator God; it puts forward an alternative theory for existence of both the living and non-living world. According to Jain philosophy the cosmos comprises of six kinds of independent and distinct substances, *jiva* (sentient substance), *pudgala* (energy and matter), *akasa* (space), *kala* (time), *dharmaстikaya* (agent for motion) and *adharmaстikaya* (agent for rest). All the six substances are eternal, co-exist and accommodate each other and, though mixed, maintain their separate identity. Jain philosophy describes the attributes of the substances, their modes and qualities. A substance is capable of eternal continuous existence through infinite succession of origination and cessation, preserving its basic nature.

The characteristic attribute of *pudgala* is that it possesses the properties that are sense perceptible (in the existing state or its mode). The ultimate indivisible unit of *pudgala* is called *paramanu*, which is the constituent of all energy and matter. *Akasa* (space) is the container of all other substances; it is boundless/infinite, eternal and indivisible unit and non-physical. The other five substances are confined to a tiny part of *akasa* called *loka* (the universe). *Kala* substance is also eternal; it defines the duration, change, motion, newness and oldness of substances. *Dharmaстikaya* and *adharmaстikaya* are single individual and homogeneous continuums pervading the whole *loka* (only).

The paper deals with the general description of *pudgala* and some details of the other four non-living and formless substances and their comparison with the concepts of modern physics.

Key words: Jain philosophy, Substance (Reality), Six Substances

## रहस्य के रहस्य

-आचार्य कनकनन्दी

(1) यथा वाचक है तो वाच्य है, प्रतिबिम्ब है तो विम्ब है, प्रतिध्वनि है तो ध्वनि है, ज्ञान है तो ज्ञेय है/ज्ञेय है तो ज्ञान है तथा कुछ भी परम महानता-श्रेष्ठता-विकास-उन्नति-ज्ञान-सुख-शान्ति-आध्यात्मिकता आदि है तो उसे कोई अवश्य प्राप्त किया हो, कर रहा हो या करेगा। यदि ऐसा नहीं है तो उसका अस्तित्व ही नहीं है। असत्य है/मिथ्या है।

(2) यदि किसी के मन में पवित्र भाव दृढ़ता से सतत उत्पन्न होते हैं तो वह अवश्य उस भावित लक्ष्य को प्राप्त करेगा ही। जहाँ सपना है, वहाँ साकार है, जहाँ पवित्र भाव है, वहाँ सद्भाव (होना, प्राप्ति) है।

(3) भले बाह्य भौतिक उपलब्धि के लिए बाह्य धन, जन की आवश्यकता अनिवार्य हो या अत्यधिक हो अतः उसकी प्राप्ति करने के लिए बाह्य में (शारीरिक-भौतिक-वाचनिक आदि) अधिक जुगाड़-संग्रह, दौड़-धूप, जोड़-तोड़, तनाव-शरीर श्रम अधिक करना पड़ता है तथापि आत्मरिक आध्यात्मिक उपलब्धियों (आत्म-विश्वास, आत्म-ज्ञान, आत्म-सुख, आत्म-शक्ति आदि) के लिए इन सबकी आवश्यकता कम है या नहीं चाहिए अथवा पूर्णतः त्याग की अनिवार्यता है। अतः अन्तरङ्ग उपलब्धियाँ सरल-सहज-स्थायी हैं तथापि दुर्लभ है; बाह्य उपलब्धियाँ कठिन-श्रमसाध्य-अस्थायी हैं तथापि सुलभ है तो भी मोही-अज्ञानी व्यक्ति बाह्य उपलब्धियों को ही चाहता है, प्राप्त करना चाहता है किन्तु आध्यात्म महापुरुष नहीं।

(4) प्रत्येक जीव सुख चाहता है क्योंकि सुख उसका मूल स्वभाव है। आत्मिक सुख जीव का स्वभाव है तो भौतिक सुख विभाव है। ऐसा ही आत्मानुभव (स्वात्मलीनता) स्वभाव है तो अहङ्कार विभाव; सिद्धि स्वभाव तो प्रसिद्धि विभाव; आत्मवैभव (आत्मविश्वास-ज्ञान-सुख-वीर्य) स्वभाव है तो सांसारिक वैभव विभाव है। ऐसी परिस्थिति में भी जैसा कि आँख स्वयं को नहीं देखती है किन्तु बाह्य वस्तु को देखती है वैसा ही मोही जीव स्वयं को/स्वभाव को त्यागकर बाह्य/विभाव को प्राप्त करना चाहता है अतः वह दुःखी होता है।

(5) आधुनिक भौतिक विज्ञान केवल जड़ पदार्थ की कुछ स्थूलशक्ति

के कारण/प्रयोग से इतना चमत्कार कर रहा है तो अमूर्तिक-आध्यात्मिक-चैतन्य-चमत्कार की सम्पूर्ण अनन्तशक्ति की कल्पना तो मानव मस्तिष्क से परे है।

(6) यथा सूर्य-रश्मि के सम्बन्ध से कमल खिलता है, कुमुदनी नहीं, तथा योग्य द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को प्राप्त करके योग्य व्यक्ति महान् कार्य करता है अयोग्य नहीं।

(7) दिशा-दशा के कारण जिस प्रकार सूर्य किरण विभिन्न रङ्ग (रंगङ्ग) में दिखाई देती है उसी प्रकार भावना-लक्ष्य के कारण पदार्थ/सत्य अलग-अलग रूप से अनुभव में आता है/दिखाई देता है। परम-भावना-परम-ज्ञान से ही पदार्थ सत्य का सम्पूर्ण अनुभव होता है।

(8) अनन्त अमूर्तिक आकाश चक्षु से सीमित तथा नीला दिखाई देता है वैसा ही इन्द्रिय, मन-यन्त्र से अनन्त सत्य भी सीमित-अयथार्थ दिखाई देता है। शुद्ध चेतना शक्ति अनन्त होने से शुद्ध चेतना ही पूर्ण सत्य को समग्रता से जानती है।

(9) अनादि अनन्त काल से जीव अनन्त भावों में भौतिक कर्मबन्ध से भौतिक शरीर-सम्पत्ति-भोग-उपभोग को भोगता हुआ इतना संस्कारित-अभ्यस्त होने से जीव इन भौतिक शरीरादि को ही स्वरूप मानकर उनके संरक्षण-संवर्धन-उपार्जन-भोग-उपभोग में ही अस्त-व्यस्त-मस्त-संत्रस्त होता है।

(10) मोही-अज्ञानी जीव तो दूसरों को/संसार को सुधार करके, भगवान् को प्रसन्न करके सुखी होना चाहता है परन्तु निर्मोही-ज्ञानी स्वयं को सुधार करके तथा दूसरों को कष्ट न पहुँचाकर सुखी हाता है।

(11) जिस प्रकार कि आकाश शब्द में तथा दृश्यमान नील गुम्बदाकार खाली जगह आकाश नहीं है उसी प्रकार शब्द, पद, भौतिक प्रतीक, स्थान, बाह्य धार्मिक क्रिया-काण्ड, पर्व-त्यौहार, आदि में आध्यात्मिक-धर्म नहीं हैं किन्तु जिस प्रकार अमूर्तिक आकाश अनन्त सर्वव्यापी है उसी प्रकार आध्यात्मिक धर्म अनन्त भाव की पवित्रता है।

(12) जैसा कि योग्य वट बीज में हजारों टन का वट वृक्ष शक्ति रूप में, सुप्त-गुप्त रूप में विद्यमान है वैसा ही भाव-बीज में विशाल भावी

योजनाएँ-उपलब्धियाँ शक्ति रूप में, सुप्त रूप में विद्यमान रहती है, योग्य द्रव्य-क्षेत्र-कालादि प्राप्त करते हुए प्रगट होती जाती है।

(13) बीज बोये बिना केवल जमीन खोदना, जल सिंचना, खाद देना, बाढ़ लगाना आदि से ही जैसा कि फल प्राप्त नहीं होता है वैसा ही पवित्र आध्यात्मिक-भाव-व्यवहार के बिना केवल बाह्य समय-साधन-श्रम से आत्मोपलब्धि रूप मोक्ष की प्राप्ति संभव नहीं होता है।

(14) विज्ञान के चमत्कार से भौतिक चकाचौंध सम्भव है किन्तु चैतन्य चमत्कार से आत्मशान्ति से लेकर विश्वशान्ति सम्भव है।

(15) गोबर का कीड़ा (गोबरिल) जिस प्रकार गोबर के लिए परिश्रम करता है, लड़ता है उसी प्रकार मोही-रागी-अज्ञानी-भौतिक-वैभव के लिए परिश्रम करता है, पाप करता है।

(16) एक सत्य के समक्ष लाखों-करोड़ों असत्य भी मिथ्या है, हेय है, त्यजनीय है उसी प्रकार एक आत्मा के समक्ष प्रचुर भी भौतिक उपलब्धियाँ मिथ्या है, हेय है, त्यजनीय है।

(17) भाव से भाग्य (कर्म) का निर्माण होता है तथा भाग्य से सुख-दुःख, हानि-लाभ, सफलता-असफलता, जन्म-मृत्यु आदि प्राप्त होते हैं अतः जीव स्वयं, स्वयं का भाग्य निर्माता तथा सुख-दुःखादि का प्रदाता है।

(18) विश्वकल्याण के भाव-व्यवहार करते हुए दूसरों के दोषों को ग्रहण नहीं करना तथा दूसरों के कारण स्वयं में दोष उत्पन्न नहीं करना स्व-पर-विश्वकल्याण है। क्योंकि विश्व के प्रत्येक जीव तो पवित्र-निर्दोष-शान्त हो नहीं सकता है ऐसी परिस्थिति में दूसरों के दोषों को ग्रहण नहीं करना तथा दूसरों के कारण स्वयं दोषी नहीं होना स्वयं की तरफ से ही विश्व-कल्याण है। यथा-पृथ्वी से तो पूर्णतः कांटा, कङ्कर आदि दूर नहीं हो सकते हैं तथापि स्वयं ही उससे बचना, स्वयं की तरफ से पृथ्वी को निष्कष्टक, कङ्कर रहित बनाना है। इसे ही कहते हैं- “आप भला तो जग भला”, “आदहिदं कादवं यदि चेत् परहिदं कादवं”, “उद्धरयेत् आत्मनमात्मनः न आत्मनः असवादयेत्” स्व-पर-विश्व कल्याण।

## क्या साक्षर अन्धभक्त नहीं होते हैं?

-आचार्य कनकनन्दी

(केवल साक्षर होना, पढ़ा-लिखा होना, डिग्रीधारी होना, आधुनिकता का दिखावा करना, आधुनिक वैज्ञानिक यंत्रों, उपकरणों का प्रयोग करना, पाश्चात्य अपसंस्कृति या अभिनेता अथवा विज्ञापन की वस्तुओं, खान-पान-पोशाक-प्रसाधन सामग्रियों का प्रयोग करना, अंग्रेजी में लिखना-पढ़ना-बोलना आदि से ही कोई शिक्षित, सभ्य, आधुनिक, वैज्ञानिक, ज्ञानी, प्रगतिशील, उदार, सनम्र सत्यग्राही अन्धभक्त, (अन्धश्रद्धालु, अन्धानुकरण, अकल बिना नकल न करने वाले) न होकर सत्य-तथ्य-पथ्य को ही स्वीकार करने वाले नहीं हो जाते हैं।)

वस्तुतः मानव चैतन्य तत्त्व होने से मानव का यथार्थ से सर्वांगीण विकास चैतन्य तत्त्व के विकास से ही सम्भव है, जैसा कि बीज के विकास से ही वृक्ष बनता है; वृक्ष के मूल को खाद-पानी आदि मिलने पर वृक्ष पल्लवित-पुष्पित-फलप्रद बनता है वैसा ही चैतन्य के विकास से ही किये गए शिक्षा, संस्कार, सदाचार, संस्कृति, कला आदि मानव के सुख-शान्ति-वैभव के लिए कारण बनते हैं। अन्यथा जिस प्रकार चैतन्य रहित मानव के शरीर को कितना ही खिलाओ, पिलाओ, सजाओ, संवारो तथापि उसका विकास नहीं होता, उसे सुख-शान्ति नहीं मिलती है उसी प्रकार चैतन्य विकास के बिना केवल बाह्य साक्षरता आदि से मानव का यथार्थ विकास नहीं होता है। सामान्य व्यक्ति से लेकर सरकार, शिक्षातन्त्र के विचार-व्यवहार है कि साक्षरता से ही अन्धविश्वास, पिछड़ापन, गरीबी, भ्रष्टाचार, सामाजिक विषमता, दहेज-हत्या, दहेज-प्रथा, बलि प्रथा, व्यसन आदि दूर होंगे तथा सादा जीवन, उच्च विचार, राष्ट्रीयता, देशभक्ति, मातृ-पितृ-भक्त-सेवक, परोपकारी, सुख-शान्तिमय-समृद्ध जीवन जीने वाले होंगे। परन्तु कुछ अपवाद को छोड़कर प्रायोगिक रूप से इससे विपरीत पाये जाते हैं। इन सबका सविस्तृत वर्णन मैंने मेरी (1) शिक्षा संस्कृति एवं नारी गरिमा (2) सर्वोदय तथा संकीर्ण शिक्षा के स्वरूप एवं परिणाम आदि कृति में किया है अतः प्रस्तुत लघु लेख में केवल “साक्षरों के अन्धभक्त” विशेषण के सम्बन्ध में कुछ दिग्दर्शन निम्न में प्रस्तुत कर रहा हूँ।

(1) साक्षरों की धार्मिक अन्धभक्ति - अनेक साक्षर होते हैं, जो

धर्म के नाम पर संकीर्ण-कटूर-भेदभाव-कूरता-हिंसा-आतङ्कवाद-बलि-आत्महत्या-मिथ्या/अहितकारी क्रियाकाण्ड आदि करते हैं। ऐसे कार्य निरक्षरों से भी कुछ साक्षर अधिक मात्रा में करते हैं।

**(2) साक्षरों की व्यक्ति विशेष-अन्धभक्ति** - अधिकांश साक्षरी-व्यक्ति हीरो-हीरोइन, पाश्चात्य व्यक्ति, नेता, खिलाड़ी, धनी, फैशनी, व्यसनी आदि अयोग्य, अनादर्श, भ्रष्टों के अन्धभक्त होते हैं। भले कुछ निरक्षरी व्यक्ति सच्चे या काल्पनिक अथवा मिथ्या भगवान् या देवी-देवताओं में कुछ आध्यात्मिक, दिव्य, अलौकिक विशेष शक्ति-गुणों के कारण या उनमें आरोपित कर के उनके भक्त बनते हैं जिससे उनके गुण स्वयं प्रगट हो या उन गुणों के कारण स्वयं की वक्ता या समवृद्धि हो परन्तु उनके साक्षरी तो उपरोक्त हीरो-हीरोइन (अभिनेता-अभिनेत्री) आदि के अन्धभक्त बनकर उनके केवल वेश-भूषा, फैशन-व्यसन, माणा, चाल-चलन, गोजन-पान, एक्टिंग, डॉयलाग आदि का ही अन्धानुकरण नहीं करते हैं अपितु उनके नकल करते हुए चोरी, डकैती, हत्या, बलात्कार, झगड़ा-कलह, तलाक, पारिवारिक विघटन, प्रेम विवाह, अनैतिक यौन सम्बन्ध से लेकर आत्महत्या तक कर लेते हैं। इतना ही नहीं उनके मन्दिर-मूर्ति बनाकर पूजा-पाठ-आरती आदि करते हैं। कुछ निरक्षरों जो धर्म के नाम पर कुछ धार्मिक क्रियाकाण्ड करते हैं जिसे अन्धश्रद्धा/अन्धभक्ति/अन्धानुकरण कहा जाता है उनमें से भी कुछ में आदर्श/लाभ है। यथा-वृक्ष-पूजा, नदी-पूजा, पशु-पूजा, समुद्र-पूजा आदि से उन वृक्ष आदि की सुरक्षा होती है, पर्यावरण की सुरक्षा होती है परन्तु उपरोक्त साक्षरों के अन्धभक्ति पूर्ण अन्धानुकरण से न उन अन्धभक्तों के किसी प्रकार के शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, आध्यात्मिक लाभ होता है न ही दूसरों को लाभ होता है। इससे तो शारीरिक-मानसिक-सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक-पर्यावरणीय-सांस्कृतिक-आध्यात्मिक-अपसंस्कृति/प्रदूषण ही उत्पन्न होते हैं, फूलते-फलते हैं। इन साक्षरों (अन्धभक्तों) में सामान्य साक्षरों से लेकर उच्च साक्षर तथा नेता, मन्त्री, सरकार तक पाये जाते हैं। ऐसे व्यक्ति तो स्व-स्वार्थ के लिए गुण्डे, आतङ्कवादी, हत्यारे, चोर, डाकू, तस्कर, लुटेरे, स्मगलर, मिलावट करने वाले, भ्रष्टाचारी, देशद्रोही आदि के भी अन्धभक्त होते हैं।

**(3) फैशन-व्यसन आदि के अन्धानुकरण** - अनके साक्षर व्यक्ति स्वयं को आधुनिक, प्रगतिशील, सम्पन्न, प्रतिष्ठित, सामाजिक सिद्ध करने के लिए दूसरों का अन्धानुकरण करते हुए या हीरो-हीरोइन आदि के द्वारा

विज्ञापन किये गए फैशन-व्यसन आदि का सेवन करते हैं। जिसके कारण वे अन्धभक्त मद्य, मांस, अण्डा, मछली, बिड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, हेरोइन, हिंसात्मक साबुन, शैम्पू, नेलपॉलिश, लिपिस्टिक, अश्लील वेश-भूषा, हिंसात्मक-अशुद्ध-रोगकारक भोजन-पेय आदि का सेवन करते हैं।

आदर्श के अनुकरण करने वाले सच्चे ज्ञानी तो हिताहित विवेक, संयम, अनुशासन के कारण सच्चा-अच्छा को नीर-धीर विवेक से ग्रहण करते हैं तो कुछ निरक्षरी धर्म, पाप, भगवान्, समाज, कानून आदि के डर से उपर्युक्त अन्धानुकरण कम करते हैं किन्तु अधिकांश साक्षर व्यक्ति में न ज्ञानी के समान गुण होते हैं न ही निरक्षरी के समान डर होता है अतः वे निःदर-अज्ञानी होकर पूर्वोक्त अन्धानुकरण करते हैं।

तीर्थङ्कर भगवान्, गणधर, आचार्य, महात्मा बुद्ध, महात्मा गांधी, विवेकानन्द, विनोबा भावे आदि महान् शिक्षा शास्त्रियों के अनुसार शिक्षा उसे कहते हैं जिससे सत्य का परिज्ञान हो, आत्मविश्वास जगे, अन्धविश्वास दूर हो, शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक स्वास्थ्य एवं विकास हो, स्व-पर विश्वकल्पणा हो, शान्ति मिले, मित्रता फैले, आचरण शुद्ध हो, आत्मविशुद्धि हो, मोक्ष प्राप्त हो। परन्तु वर्तमान की साक्षरी शिक्षा उपर्युक्त गुणों से रहित केवल व्यापारिक, भौतिक, रटन्त, डिग्री के लिए, नौकरी, सामाजिक प्रतिष्ठाविवाह आदि के लिए होने से केवल वर्तमान की शिक्षा से हर उत्तम कार्य का सम्पादन होगा ऐसा सोचना भी गलत है। क्योंकि गलत साधन, उद्देश्य, साधना से सही लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सकता है। निम्न में महापुरुषों के शिक्षा सम्बन्धी सिद्धान्त प्रस्तुत है।

जेण तच्च विबुज्जेज्ज जेण चित्त णिरुज्जदि।

जेण अत्ता विसुज्जेज्ज तं णाणं जिणसासणे॥ (भ.महावीर)

जिससे तत्त्व का बोध होता है, जिससे मन का निरोध होता है, जिससे आत्मा शुद्ध होता है जिनशासन में उसका नाम ज्ञान (शिक्षा) है। जिसके द्वारा जीव राग से विरक्त होता है, जिसके द्वारा मोक्ष में राग करता है, जिसके द्वारा मैत्री को भावित करता है, महावीर का शासन (भगवान् की शिक्षा) में वह ज्ञान (विद्या) कहा गया है।

सभी पापों के न करना, पुण्यों का सञ्चय करना, अपने चित्त को परिशुद्ध करना-यह बुद्धों की शिक्षा है।- महा. बुद्ध, धर्मापद पु.सं 60

जिनके अज्ञान का आत्म-ज्ञान द्वारा नाश हो गया है, उनका वह सूर्य के समान, प्रकाशमय ज्ञान परमतत्त्व का दर्शन कराता है। - नारायण कृष्ण

मनुष्य में पूर्व से विद्यमान सम्पूर्णताओं को बाहर लाना ही शिक्षा है-स्वामी विवेकानन्द। रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार - 'सर्वोच्च शिक्षा वह है जो केवल सूचनायें ही नहीं देती अपितु हमारे जीवन और सम्पूर्ण सृष्टि में तादात्म्य स्थापित करती है। शिक्षा दर्शन की गतिशील पक्ष है - जान ढी बी।

### सदुदेश्य की पूर्ति = शान्ति की प्राप्ति के सूत्र

- आचार्य कनकनन्दी

- \* जैसा कि अलग-अलग बिन्दुओं से भी रेखा नहीं बनती है, वैसा ही सदुदेश्य, विश्वास, ज्ञान, पुरुषार्थ आदि अलग-अलग है/समन्वय नहीं है तो सद-उद्देश्य की पूर्ति एवं शान्ति की प्राप्ति सम्भव नहीं है।
- \* जैसा कि बिन्दुओं के समन्वय/जोड़ने में दिशा/डिग्री में परिवर्तन होने से रेखा सरल/90° वाली रेखा नहीं बनती है, वैसा ही सदुदेश्य, आत्मविश्वास, सम्यक्ज्ञान, सत्पुरुषार्थ का सम्यक् समन्वय नहीं होता है तो सदुदेश्य की पूर्ति एवं शान्ति की प्राप्ति नहीं होती है। अतः आत्मविश्वास, सच्चाज्ञान, सही पुरुषार्थ का सम्यक् समन्वय से ही सदुदेश्य की पूर्ति एवं शान्ति की प्राप्ति के वैशिक-सार्वभौम सूत्र हैं।

### प्रयोग से परिवर्तन न कि पढाई से

बदलाव पढाई से नहीं आएगा, यह आएगा प्रयोग से। तेज गुप्तसा आ रहा है, कुछ मिनट के लम्बा श्वास ले, क्रोध शांत हो जाएगा। आज शिक्षा जगत् में कुछ अंधकार-सा व्याप्त है। आगे जो पढ़ाया जा रहा है, उससे विद्यार्थी के जीवन का निर्माण नहीं हो पा रहा है। पढ़ने वाले का हित नहीं हो रहा है। धन करने की कला तो आ जाती है, किन्तु जीवन का हित नहीं सध रहा। समाचार पत्रों में आया कि अमुक कक्षा का रिजल्ट निकला और अनुरोधी छात्र या छात्रा ने आत्महत्या कर ली। आखिर आदमी मरने की बात क्यों सोच लेता है? उसे ज्ञान नहीं है कि मरने के बाद क्या होगा? होना तो यह चाहिए कि शिक्षा से जीवन ऐसा बने कि मरने की बात कभी स्वप्न में भी न आए। हर आदमी जीना चाहता है, लेकिन आवेश में वह मरने की बात सोच लेता है। आजकल आत्महत्या की बात बहुत ज्यादा देखते में आ रही है। शहर हो या गांव, आत्महत्या के समाचार रोज़ पढ़ने को मिलते हैं। इसके लिए तरीके भी बहुत खोज लिए गए हैं। पहले लोग आत्महत्या के लिए कुएं, बांदी या रेल की पटरी की शरण लेते थे। अब शहरी में बिजली का कर्ट लगा लेते हैं, छत पर टंगा पंखा भी उनकी मदद कर देता है। कीटनाशी दवाएं बहुत सहयोग कर रही हैं। संपन्न परिवार है तो बंदूक या पिस्तौल से काम बन जाता है और कुछ नहीं तो मिट्टी का तेल और माचिस तो घर में सुलभ है ही। और जहाँ तक हत्या की बात है, पति पत्नि का गला घोंट देता है, पत्नी पति को जहर दे देती है, सास बहू को तेल छिक कर माचिस दिखा देती है।

इस तरह की सूचनाएं और समाचार बताते हैं कि समाज अच्छा नहीं है। वह गलत दिशा में जा रहा है। स्वस्थ समाज में इस तरह की घटनाएं नहीं हो सकतीं। हत्या करना पाप है आत्महत्या करना धोर पाप है, पर ऐसा होता जाता है। इसका कारण आवेश पर कंट्रोल करना सिखाया नहीं जाता। आवेश पर नियंत्रण कैसे करें? धार्मिक लोग कीर्तन-भजन करते हैं, उपासना स्थल में जाते हैं, दान-पूण्य करते हैं, किन्तु धर में उसका कुछ भी असर देखने को नहीं मिलता। आचार्य महाप्रज्ञ

## इंगलैण्ड में जैनधर्म की प्रभावना

(ऑक्सफोर्ड वि.वि. में उद्बोधन) डॉ. नारायणलाल कछारा  
 (डॉ. नारायणलाल कछारा जी आचार्य श्री कनकनन्दीजी गुरुदेव से प्रायः 10-11 वर्षों से वैज्ञानिक आध्यात्मिक जैन धर्म के विविध विषयों को आधुनिक वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करके तत्सम्बन्धी अनेक शोधपूर्ण साहित्यों की रचना (हिन्दी एवं अंग्रेजी) में कर रहे हैं; अमेरिका दो बार, लन्दन एक बार, विश्व धर्म सभा आस्ट्रेलिया एक बार, भारत के विभिन्न विश्वविद्यालय एवं वैज्ञानिक संगोष्ठियों में जाकर धर्म की प्रभावना करने के उपलक्ष्य में आचार्य श्री कनकनन्दी जी (संसंघ) के आशीर्वाद से उन्हें 'जैन ज्ञान-विज्ञान मनीषी' एवं 'विश्व धर्म प्रभाकर' उपाधि से अलूक्त किया गया है। कछारा जी आचार्य श्री द्वारा आशीर्वाद प्राप्त धर्म-दर्शन सेवा संस्थान के सचिव भी हैं।)

विज्ञान और धर्म के बीच सम्बन्धों को अन्तर्राष्ट्रीय और धार्मिक विविधता के परिप्रेक्ष्य में समझने और उसमें अनुसंधान करने हेतु वर्ष 2002 में इन्टरनेशनल सोसायटी फॉर साइंस एण्ड रिलीजन (International Society for science and religion) की स्थापना हुई। संस्था का मुख्यालय केम्ब्रिज इंगलैण्ड में है। विभिन्न धार्मिक पृष्ठभूमि वाले प्रतिभावान वैज्ञानिक इस संस्था के सदस्य हैं, परन्तु जैन धर्म का प्रतिनिधित्व अभी तक नहीं है। केवल योग्य विद्वानों को ही आमंत्रण से सदस्यता दी जाती है। वर्तमान में विभिन्न देशों के लगभग 140 सदस्य हैं, भारत से 4 सदस्य हैं।

विज्ञान और धर्म के अध्ययन और अनुसंधान के लिए ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय इंगलैण्ड में वर्ष 1985 में इआन रेमसे केन्द्र की स्थापना हुई। इस केन्द्र और ISSR के संयुक्त तत्वावधान में जुलाई 7 से 10, 2010 को ऑक्सफोर्ड में "GOD AND PHYSICS" विषय पर एक कानफ्रेन्स का आयोजन किया जा रहा है। इसमें विद्वानों द्वारा लगभग 50 शोधपत्र प्रस्तुत किये जायेंगे।

इस प्रकार के आयोजन में जैन दर्शन पर प्रथम बार मुझे 'जैनदर्शन और आधुनिक भौतिक शास्त्र' विषय पर शोध-पत्र प्रस्तुत करने को आमन्त्रित किया गया है। शोध-पत्र का संक्षेप पृ.2 पर दिया गया है, इसमें विद्वानों को लोक में षट् द्रव्यों की व्यवस्था से अवगत कराया जायेगा।

## आचार्य श्री के साहित्य सम्बन्धी जैन वर्ल्ड का ई मेल

Re : Acharya kanaknandi ji books

From : jain world (jainworld@gmail.com)

You may not know this sender. Mark as safe Mark as junk

Sent : 09 January 2010 01:57 AM

To : jinendra vanawat (j...vanawat@hotmail.com)

Jinendra Ji

As I had informed you earlier, these documents can not be opened.  
Please send document in PDF formats.

We are always eager to post books of acharya kanaknandji on  
JainWorld.

Vinod

On Sat, Dec 5, 2009 at 3:19 AM, Jinendra vanawat

<j...vanawat@hotmail.com> wrote

pls find enclosed books of acharya kanaknandji

jinendra vanawat

udaipur

09414470986

Re: Projection Of Gurudev Acharyashri Kanaknandiji Books on Jainworld Website.

Mon, 18 January, 2010 10:05:33 PM

From: jain world <jainworld@gmail.com>

Add to Contacts

To : sohan tater<sohan\_tater@yahoo.co.in>

I am a great follower of Gurudev Kanaknandiji and his Literature is  
exceptionally good.

I had a fortune of reading most of it.

+++

We are happy to host his books etc on Jain World.

We need material in PDF format for non-English and word format for English.

In the past the material was sent in a format Jain World team can not open  
here.

Please send material in PDF for us to process it here.

Regards,

Vinod

## धर्मप्रभावना हेतु ज्ञान-उपकरण का उपयोग

(हमारे गुरु आचार्य श्री कनकनन्दीजी क्यों करते हैं  
वैज्ञानिक ज्ञानोपकरणों का प्रयोग)

- डॉ. नारायणलाल कछारा

(डॉ. नारायणलाल कछारा जी आचार्य श्री कनकनन्दीजी गुरुदेव से प्रायः 10-11 वर्षों से वैज्ञानिक आध्यात्मिक जैन धर्म के विविध विषयों को आधुनिक वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करके तत्सम्बन्धी अनेक शोधपूर्ण साहित्यों की रचना (हिन्दी एवं अंग्रेजी) में कर रहे हैं; अमेरिका दो बार, लंदन एक बार, विश्व धर्म सभा आस्ट्रेलिया एक बार, भारत के विभिन्न विश्वविद्यालय एवं वैज्ञानिक संगोष्ठियों में जाकर धर्म की प्रभावना करने के उपलक्ष्य में आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा स्थापित दोनों संस्था की ओर से तथा आ.श्री कनकनन्दी जी (संसंघ) के आशीर्वाद से उन्हें 'जैन ज्ञान-विज्ञान मनीषी' एवं 'विश्व धर्म प्रभाकर' उपाधि से अल्कृत किया गया है। कछारा जी आचार्य श्री द्वारा आशीर्वाद प्राप्त धर्म-दर्शन सेवा संस्थान के सचिव भी हैं।)

धर्म की प्रभावना हेतु भगवान् महावीर ने चतुर्विधि संघ की स्थापना की। जैन धर्म के प्रवर्तन में साधु-साधियों की महत्वपूर्ण भूमिका है। वे अपने आत्म-कल्याण के साथ-साथ जिनवाणी की सुरक्षित रखने और उनके उपदेश को श्रावक वर्ग तक पहुँचाने में सतत क्रियशील रहते हैं। श्रमणों और श्रावकों के बीच पावन सम्बन्ध है, दोनों धर्म साधन के लिए परस्पर निर्भर करते हैं। ऐसा देखा गया है कि श्रमणों और श्रावकों का व्यवहार सामाजिक व्यवस्था पर भी निर्भर करता है, इसी कारण अरिहन्त भगवान् ने समय काल परिस्थिति के अनुसार धर्म साधन की भिन्न-भिन्न व्यवस्थाएँ दीं। प्रथम तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव के समय सामाजिक व्यवस्था का प्रारम्भ हुआ, जो भगवान् अजितनाथ के काल तक बदल गया। भगवान् अजितनाथ ने अपने अनुयायियों के लिए जो व्यवस्था दी वह भगवान् पार्श्वनाथ के समय तक लगभग वैसी ही चलती रही, अर्थात् इस अवधि में सामाजिक व्यवस्था में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। भगवान् पार्श्वनाथ के बाद सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन हुआ और भगवान् महावीर ने चार महाव्रतों की जगह पाँच महाव्रतों का प्रावधान किया। भगवान् महावीर के बाद सामाजिक व्यवस्था में तेजी से

परिवर्तन हुआ है जिसने मनुष्य की कार्यशैली और शक्ति को प्रभावित किया है। पिछली 3-4 शताब्दियों में हुई भौतिक प्रगति ने और पिछली शताब्दी से प्रारम्भ हुए जीवन मूल्यों में हास ने समस्त सामाजिक परिदृश्य को ही बदल दिया है। इस परिवर्तन से श्रमण तथा श्रावक, अचूते नहीं रहे हैं।

पिछले कुछ समय से पत्र-पत्रिकाओं में साधु वर्ग में शिथिलाचार चर्चा का विषय रहा है। चूँकि साधु-साध्वी हमारे मार्गदर्शक हैं, उनका आचरण हमारे आदर्शों को प्रभावित करता है। परन्तु यह भी सच है कि श्रमण और श्रावक दोनों ही वर्ग सामाजिक व्यवस्था के अङ्ग हैं और उनका उससे अप्रभावित रहना कठिन है। फिर भी धर्म व्यवस्था को सुचारू और प्रभावी रूप से चलाने के लिए दोनों ही वर्गों के व्यवहार पक्ष पर सम्यक् विचार आवश्यक है। श्रमण वर्ग ज्ञान का उपासक है और उन्हें ज्ञान उपकरणों की भी आवश्यकता होती है। प्राचीन काल में शास्त्र ही ज्ञान उपकरण थे। आज के युग में पेन, पेन्सिल, कागज, पत्र-पत्रिकाएँ व ग्रन्थों के अतिरिक्त टी.वी., कम्प्यूटर आदि भी ज्ञान के साधन बन गये हैं। क्या इनका उपयोग श्रमणों के लिए उचित है, इस प्रश्न पर हम विचार करेंगे। चूँकि सभी उपकरण विद्युत द्वारा संचालित होते हैं, पहले विद्युत की स्थिति पर विचार करना होगा।

बहुत से साधु विद्युत् को सचित्त मानते हैं। प्रो. मुनि महेन्द्र कुमार ने अपनी पुस्तक “क्या विद्युत् (इलेक्ट्रिसिटी) सचित्त तेजकाय है?” में व्यवस्था दी की विद्युत् सचित्त नहीं है। यही तथ्य पुद्गल के गुणों के अवलोकन से स्पष्ट होता है। परमाणु पुद्गल में दो स्पर्श होते हैं, शीत और उष्ण में से एक तथा स्निग्ध और रुक्ष में से एक। विद्वानों ने स्निग्ध और रुक्ष स्पर्श को आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में धन और ऋण विद्युत् माना है। अतः पुद्गल परमाणु में दो गुण अनिवार्य रूप से पाये जाते हैं, ताप और विद्युत्। परमाणु गति भी करता है। अनेक परमाणु मिलकर बन्ध प्रक्रिया से स्कन्ध की रचना करते हैं और एक स्कन्ध विघटित होकर मूल परमाणु अवस्था को भी प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार पुद्गल के चार मूल सिद्धान्त, ताप, विद्युत्, गति और बन्ध (या अबन्ध) प्रतिपादित होते हैं। आधुनिक युग में विद्युत् का उत्पादन इन्हीं चार सिद्धान्तों पर आधारित है। अतः यह सिद्ध है कि विद्युत् (इलेक्ट्रिसिटी) पुद्गल का गुण है, न कि जीव का। विद्युत् को सचित्त मानना सही नहीं है।

आज अधिकांश साधु-साध्वी माइक का उपयोग कर रहे हैं, विजली के

प्रकाश में कार्य करते हैं, उनके प्रवचन टेप-कैसेट और सी.डी. पर उपलब्ध हैं और टी.वी. पर प्रसारित हो रहे हैं, यह सब समयानुकूल ही है। कुछ साधु-साध्वी इससे सहमत नहीं हैं। इतिहास देखने से ज्ञात होता है कि व्यवस्था परिवर्तन का विरोध भी होता रहा है। कुछ वर्ष पहले जब प्रथम बार शास्त्र के प्रेस प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ हुआ तब बहुत वाद-विवाद हुआ। ध्वला और जय ध्वला ग्रन्थों को भी भट्टारक जी प्रकाशन के लिए नहीं दे रहे थे क्योंकि प्रेस में छपने से ग्रन्थ अपवित्र हो जायेंगे। आज भी वे साधु जो विद्युत् को सचित्त मानते हैं वे भी पत्र पत्रिकाएँ और ग्रन्थ छपवा रहे हैं, यह सब कार्य विद्युत् से ही होता है। यदि ऐसे साधु माइक का नहीं करें तो यह उनकी व्यक्तिगत नीति ही कही जायगी, सैद्धान्तिक नहीं। विद्युत् उत्पादन में हिंसा होती है, यह सच है। परन्तु उसके उपयोग से बचना असंभव सा है। वस्त्र निर्माण, ग्रन्थों की छपाई, चश्मों की बनाई, पात्र निर्माण, अन्न उत्पादन आदि कार्य विद्युत् के बिना नहीं होते हैं। हाँ, विद्युत् का उपभोग (खर्च) कम से कम हो, यह प्रयास सभी को करना चाहिए। इसके लिए आवश्यक-अनावश्यक का चिन्तन करना हमारा कर्तव्य है।

कुछ साधुओं ने कम्प्यूटर का उपयोग करना प्रारम्भ कर दिया है। आचार्य श्री सुविधिसागर जी ने अपने लेपटॉप पर सभी जैन शास्त्रों को स्कैन कर डी.वी.डी. पर उपलब्ध करा दिया जो अब इन्टरनेट पर भी उपलब्ध है। फलस्वरूप ये शास्त्र विद्वानों और सामान्यजनों को सुलभ हो गये हैं। आचार्य कनकनन्दी जी ने अपनी पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं में लिखा है कि वे कम्प्यूटर, टी.वी., प्रोजेक्टर और मोबाइल का उपयोग कर रहे हैं। उनका कहना है—“प्राचीन काल में कागज, फाउन्टेन पेन, पेन्सिल, प्रेस में छपे हुए ग्रन्थ, माईक आदि का प्रयोग नहीं करते थे। वे उस समय के उपकरण प्रयोग में लाते थे। आधुनिक उपकरण उस समय में नहीं थे। अभी प्राचीन उपकरण अनुपलब्ध है। अतः वर्तमान में औषधि रूप से चश्मा, तो ज्ञान-उपकरण रूप से पेन आदि प्रयोग में लाते हैं। अभी यदि प्राचीन काल के भी साधु होते तो क्या वे भी ये उपकरण प्रयोग नहीं करते? इसी प्रकार स्वास्थ्य के लिए आधुनिक योग्य उपकरण प्राकृतिक चिकित्सा के रूप में अथवा रोग परीक्षण वैज्ञानिक यन्त्रों से आँख-आँपरेशन आदि या ज्ञानार्जन, धर्म-प्रभावना के लिए आधुनिक उपकरण (टी.वी., इन्टरनेट, ई-मेल, मोबाइल आदि) का प्रयोग यथायोग्य रूप से उत्सर्ग-अपवाद की मित्रता (समन्वय) से करना समय की

मांग है। नहीं तो न शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक स्वास्थ्य सन्तुलित रह पायेगा, न ही समुचित साधना होगी तथा धर्म प्रभावना भी देश-विदेश में व्यापक रूप से नहीं होगी। आहार-विहार-निहार, मन्दिर, मूर्ति, धर्मशाला निर्माण, पञ्च कल्याणक, तीर्थयात्रा, मुनिसंघ दर्शन यात्रा, गौशाला, विद्यालय, चिकित्सालय, छात्रावास, कुँआ निर्माण, आहार-दान, पूजा आदि से जो हिंसा है, दोष लगता है तथापि उद्देश्य सही होने पर वह हिंसा अधिक दोष और अपराधमय नहीं है, उसी प्रकार आधुनिक उपकरण आदि के प्रयोग में भी है।” वे आगे कहते हैं कि “जैन धर्म को वैज्ञानिक कहकर थोथा घमण्ड करने वाले भी न जैन धर्म के वैज्ञानिक गहन सत्य-तथ्य को जानते हैं न ही जैन धर्म को वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करके प्रचार-प्रसार करने के लिए जो वैज्ञानिक टी.वी. प्रोग्राम देखते हैं, वैज्ञानिक उपकरणों का यथायोग्य सदुपयोग करते हैं, उनकी कटु आलोचना, विरोध करके स्वयं तो ज्ञानावरणीय कर्म, पापकर्म बाँधते हैं तथा जैन धर्म की प्रभावना में विध्न डालकर मिथ्यात्वकर्म का बन्ध करते हैं।” यह सब उनकी अनाधिकार कुचेष्टा है। ऐसी परिस्थिति में सच्चे धीर-वीर-गम्भीर-निर्भीक होकर आचार्य समन्तभद्र, भट्टाकलझूँदेव, लोहाचार्य, आचार्य जिनसेन, वीरसेन स्वामी, आचार्य कुमुदेन्दु आदि के समान अदम्य साहसपूर्ण पुरुषार्थ से आत्मकल्याण को मुख्य करके प्रगति के पथ पर आगे ही बढ़ते जाना चाहिए।” आचार्य कनकनन्दीजी ने यह भी कहा कि “मेरे उपर्युक्त वर्णन से मनमानी अर्थ निकालकर किसे भी (साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका, गृहस्थ) स्वेच्छाचार/शिथिलाचार करने के लिए प्रेरित नहीं किया गया है। जो करेगा उसके अनुसार फल वह भोगेगा। मेरे इन सब वर्णन से संक्षिप्ततः निहितार्थ यह है कि द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-शक्ति-भक्ति के अनुसार विवशता बिना विश्वासपूर्वक, पवित्र, सरल-सहज भाव से सब स्व-पर-विश्व कल्याण करें, न कि धर्मान्धिता-कटूता-ईर्ष्या-द्वेष-दिखावा से धर्म का आचरण करें, न ही दूसरों को नवकोटि से बाधा पहुँचायें।”

आचार्य कनकनन्दीजी ने प्रायः भारत के सम्पूर्ण दर्शनों तथा विदेशी दर्शनों का अध्ययन किया है, तथा आगे भी प्रयासरत रहेंगे; विशेषतः वे पाश्चात्य देशों में विविध ज्ञान-विज्ञान-इतिहास-धर्म-परम्परादि सम्बन्धी शोधपूर्ण विषयों को (1) डिस्कवरी (2) नेशनल ज्योग्राफी (3) हिस्ट्री (4) एनिमल प्लेनेट जैसे विदेशी टी.वी. प्रोग्रामों का अध्ययन किया है और इससे अर्जित ज्ञान को

अपनी पुस्तकों में स्थान दिया है एवं कर रहे हैं। इस सब कारणों से आचार्य श्री कनकनन्दीजी ने अभी तक शोधपूर्ण 187 ग्रन्थों की रचना की है, सैकड़ों साधु-सन्तों एवं हमारे जैसे अनेक प्रोफेसर एवं वैज्ञानिकों को अध्ययन एवं अध्यापन करा रहे हैं, 11 राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी तथा 32 धर्म-दर्शन-विज्ञान प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन हुआ है, अभी तक भारत के 11 प्रदेशों के 27 विश्वविद्यालयों में शोधकार्य हेतु “आचार्य कनकनन्दी साहित्य कक्ष” की स्थापना हो चुकी है और प्रायः भारत के 100 विश्वविद्यालयों में होने की सम्भावना है। आचार्य श्री के साहित्य को यू.जी.सी. से भी मान्यता प्राप्त है जिस पर मुस्लिम, दि., श्वे.जैन, हिन्दू आदि विद्यार्थी से लेकर वैज्ञानिक तक शोध कर रहे हैं। हम जैसे उनके वैज्ञानिक शिष्य उनके ज्ञान व उद्देश्य को देश-विदेश में प्रचारित कर रहे हैं। विदेश के अनेक वेबसाइट में आ.श्री के साहित्य को वे निःशुल्क प्रसारित कर रहे हैं। इन सब दृष्टि से आ.श्री के वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग उचित, लाभप्रद एवं समयोचित है। आ. श्री के इन सब कार्यक्रम एवं भावना के कारण हमारे जैसे उनके देश-विदेश के शिष्य स्वेच्छा से इन सब उपकरणों की व्यवस्था कर रहे हैं, इसके लिए आचार्य श्री न किसी को बोलते हैं, न रूपया पैसा, चन्दा-चिट्ठा करते हैं। आचार्य श्री के संघ में न गाड़ी, न चौका, न नौकर आदि हैं। वे तो उपर्युक्त सम्पूर्ण साहित्य प्रकाशन एवं अन्य कार्यों के लिए किसी भी प्रकार से धन की मांग नहीं करते हैं। उन्होंने 22 वर्ष पहले सम्मेद शिखरजी में प्रतिज्ञा ही ले ली थी कि मैं इन सब धार्मिक कार्यों के लिए भी न ही याचना करूंगा, न ही दबाव डालूंगा। संघ में ज्ञानोपकरण, शौचोपकरण एवं संयमोपकरण को छोड़कर अन्य किसी भी प्रकार के उपकरण न तो संघ में रखते हैं, न ही सही मानते हैं, न ही मन्दिर, मठ, धर्मशाला, मूर्ति, गिरि, विधान, पञ्चकल्याणक आदि करते हैं; स्वेच्छा से यदि कोई करते हैं तो उसके लिए मार्गदर्शन, आशीर्वाद देने की छूट है।

ज्ञान उपकरण के समान एक अन्य प्रश्न वाहन उपयोग का है जिसमें अधिक हिंसा होती है। यह हिंसा ईंधन के जलने और वाहन के चलने से होती

है। वाहन के उपयोग पर कृत, कारित, अनुमोदना के आधार पर विचार होना चाहिए। वाहन का उपयोग कई प्रकार से हो रहा है। 1. वर्तमान में कुछ साधु अक्षमता या स्वास्थ्य के कारण हाथ-गाढ़ी से यात्रा करते हैं। 2. शास्त्र, ज्ञानोपकरण, आहारोपकरण और साधन आदि के परिवहन के लिए कुछ वर्षों पहले तक इस प्रकार का उपयोग नहीं होता था परन्तु अब इसका प्रचलन बढ़ता जा रहा है। 3. पूजा, विधान धर्म समारोह आदि में माल परिवहन और दर्शनार्थी की यात्रा के लिए इस प्रकार का उपयोग आजकल सबसे अधिक हो रहा है। 4. मन्दिर, धर्मशाला, चिकित्सालय, विद्यालय, छात्रावास आदि के निर्माण हेतु यह उपयोग परम्परा से चल रहा है, परन्तु इसमें भी अब वृद्धि हो रही है। 5. बीमार होने पर कुछ श्वेताम्बर साधु कार या हवाई जहाज से यात्रा करते हैं। 6. आजकल कुछ पञ्चकल्याणक, प्राण प्रतिष्ठा आदि उत्सवों पर हैलीकोप्टर से पुष्पवर्षा की जा रही है। हैलीकोप्टर के उड़ान के कारण प्रदूषण एवं हिंसा होती है। आचार्य कनकनन्दी जी ने शास्त्र सम्मत तर्क प्रस्तुत करते हुए आधुनिक ज्ञान उपकरण के साधु द्वारा प्रयोग को उचित और ज्ञानवर्द्धक माना है। यह एक नई परम्परा है। यह तथा वाहन प्रयोग शिथिलाचार का विषय नहीं बने एवं मर्यादा और आचार संहिता का उल्लंघन न हो, इसके लिए आचार्यगणों द्वारा यथायोग्य नियम बनाना समीचीन होगा।

\*\*\*



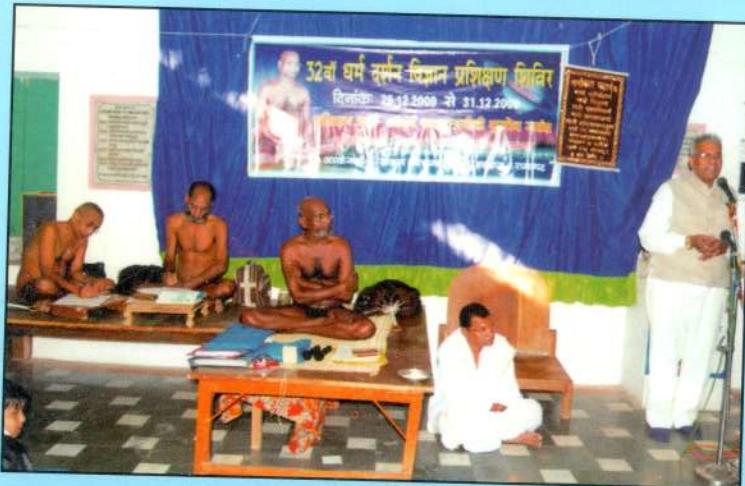
आ. कनकनन्दी से शिक्षा तथा विश्वशान्ति सम्बन्धि चर्चा करते हुए डॉ. शरदचन्द्र पुरोहित (पूर्व निर्देशक रा.मा. शिक्षा बोर्ड तथा अभी यूनिसेफ के मानद कार्यकर्ता)। (साधुतीर्थ पाड़वा-2008)



11वीं वैज्ञानिक संगोष्ठी में आ. कनकनन्दी के साहित्यों का विमोचन करते हुए आ. श्री द्वारा आशीर्वाद प्राप्त दोनों संस्थानों के कार्यकर्ता तथा नवीन कार्यकर्ता दीपेश तथा मणिभद्र जैन। (गुरुभक्त सांस्कृतिक ग्राम-रामगढ़)



पांचवी विश्व धर्म संसद में आ. कनकनन्दी के प्रतिनिधित्व के रूप में डॉ. कच्छारा ने भाग लिया। विभिन्न देशों से आये कुछ जैन प्रतिनिधि श्री प्रवीण शाह, डॉ. धीरज शाह, डॉ. कच्छारा, श्री विनोद कपाशी, श्रीमती कपाशी, श्री गिरिश शाह, श्री सोहनलाल गांधी, श्री संजय जैन  
(मेलबोर्न – आस्ट्रेलिया)



32वां शिविर में भारत के विभिन्न 11 प्रदेशों के 26 विश्वविद्यालयों में 'आ. कनकनन्दी साहित्य कक्ष' की स्थापना तथा शोधकार्य के बारे में उद्बोधन देते हुए डॉ. प्रो. तातोड। तातोडजी आ. महाप्रज्ञ के भक्त तथा आ. कनकनन्दी द्वारा आशीर्वाद प्राप्त संस्थान के संरक्षक है।